पोद्दार रामावतार अरुण कृत महाभारती में काव्य, मनोविज्ञान, संस्कृति एवं दर्शन एक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की
पी-एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक
डॉ0 वेदप्रकाश द्विवेदी
रीडर/अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अतर्रा-बाँदा

शोधकर्ता
कपिल कुमार अग्निहोत्री
एम0ए0, बी0एड0

2002
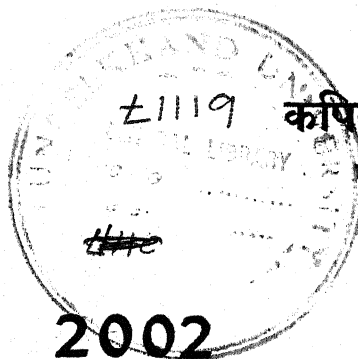
शोध केन्द्र
अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा (बाँदा)

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री कपिल कुमार अग्निहोत्री ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की शोध समिति द्वारा स्वीकृति विषय " पोद्दार रामावतार अरुण कृत महाभारती में काव्य, मनोविज्ञान, संस्कृति एवं दर्शन - एक अध्ययन" पर मेरे निर्देशन में अथक परिश्रम, तन्मयता, लगन तथा अध्यवसाय से पूर्ण किया है।

इस शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री किसी अन्य उपाय हेतु किसी भी विश्वविद्यालय में प्रयोग नहीं की गयी है।

यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के शोध अध्यादेश के प्रत्येक उपबन्धों की पूर्ति करता है। परिनियमावली में विहित प्रावधान के अनुसार इन्होनें अपनी उपस्थिति पूर्ण की है। समस्त दृष्टिकोणों से उपयुक्तता के आधार पर मैं मूल्यांकन हेतु संस्तुति करता हूँ।

(डॉ0 वेद प्रकाश द्विवेदी)
रीडर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा
बाँदा

अपारे काव्य संसारे में कविरेव प्रजापति में कवि, आलोचक आचार्य, सूक्तिकार ने काव्य के अनुशसन विश्लेषण हेतु मापदण्ड ही नहीं घोषित किया अपितु दिक् कालजयी रचनाओं के रचनाधर्मिता पर भी प्रकाश डाला है, जो काव्य हृदयस्थ अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यंजना करता है। उसकी रस प्रेषलता को किसी के अनुसंशन की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि ऐसा काव्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब ही नहीं होता, अपितु उसमें मानव और प्रकृति का रागात्मक सम्बन्ध अनुस्यूत रहता है। कहना नहीं होगा कि यांत्रिकता, भौतिकवादी विचारधारा और उपभोक्तावाद के कारण आज महाकाव्यों का युग नहीं रहा फिर भी बिहार निवासी 'रामावतार पोद्दार' अरूण ने बाणाम्बरी, महाभारती, अरूण रामायण जैसे अनेंक रस सिद्ध प्रबन्धकाव्यों का प्रणयन कर अपनी सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक दृष्टि का विस्तृत फलक प्रस्तुत किया है।

महाभारती उनका ऐसा ही प्रवन्धकाव्य है। जिसमें वैदिक काल से लेकर पौराणिक युगीन घटनाओं के रूप में निहित सांस्कृतिक, राष्ट्रवाद, सामाजिक समरसता और दार्शनिक मनोभावों का चित्रांकन सफलतापूर्वक हुआ है। शोध दिशा में युग, धारा विशेष प्रवृत्ति, काव्य विशेष या शास्त्रीय मापदण्ड के अनुसार शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये जाते हैं। साहित्य और समाज के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के कारण काव्य, मनोविज्ञान, संस्कृति एवं दर्शन की दृष्टि से अध्ययन इधर बहुत हुए हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन भी इसी दिशा की एक कड़ी है। महाभारती पोद्दार जी की भारतीय शक्ति और सौन्दर्य एवं साधना का महाकाव्य है। अतः उक्त मानदण्डों के आधार पर मैंने शोध प्रबन्ध को चार खण्डों में बाँट कर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है।

प्रथम खण्ड काव्य शास्त्रीय विवेचन से सम्बद्ध है, इसमें चार अध्याय है। प्रथम अध्याय काव्य की कथावस्तु से सम्बन्धित है। मैंने महाभारती की आधिकारिक कथा प्रस्तुत करते हुए देवजाति के सुंषानगरी का वैभव, प्रलय, तत्पश्चात् मानव सृष्टि का उद्भव, विकास, अगस्त्य, लोपामुद्रा, विश्वामित्र, शम्बरी एवं रोहिणी, पुरूरवा-उर्वशी, विश्वामित्र-मेनका, वसिष्ठ और विश्वामित्र के द्वन्द्व, दुष्यन्त-शकुन्तला का प्रणय प्रसंग एवं भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर गणमंत्र की स्थापना हेतु विश्वामित्र की कथा का उल्लेख कर तन्य

निमिष्ट कथाओं के मूल श्रोत विभिन्न पुराणों का उल्लेख कर कवि की मौलिक उद्भावना का विश्लेषण किया है। यहाँ यह कहा गया है कि इस काव्य की रचना के मूल प्रेरक डॉ0 ख़र्न थे जिनकी यह संकल्पना थी कि यदि कालिदास मात्र एक ही ग्रन्थ लिखते तो उसका स्वरूप कैसा होता। महाभारती का प्रणयन इसी जिज्ञासा का प्रत्युत्तर है। काव्य के नामकरण और केन्द्रीय कथा के मूल में कालिदास के रघुवंश की अवधारणा का उल्लेख भी यथाअवसर हुआ है।

द्वितीय अध्याय में महाभारती की पात्र योजना पर प्रकाश डाला गया है प्रारम्भ में पात्र शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ प्राचीन एवं आधुनिक आचार्यो की एतद्विषयक धारणाएँ चरित्र व्यक्तित्व एवं उसके प्रकार तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रचलित त्रिआयामी अवधारणा का संक्षेप में उल्लेख कर काव्य क्षेत्र में प्रथम वार आलोच्य काव्य के पुरुष–स्त्री पात्रों के बाह्य एवं आन्तरिक रूप, गुण, कर्म, सौन्दर्य और उनकी विशिष्टताओं का सोदाहरण विवेचन किया है। मुख्य रूप से अगस्त्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र, पुरूरवा, रोहिणी, लोपामुद्रा, मेनका, शकुन्तला इत्यादि पात्रों का चरित्र प्रस्तुत कर कवि पोद्दार की एतद्विषयक विशेषताओं का उल्लेख है।

तृतीय अध्याय आलोच्य काव्य में रस एवं भाव–विवेचन से सम्बन्धित है। कहा गया है कि कथा और चरित्र के बाद रस ही ऐसा तत्व है जिससे पाठ्क आकृष्ट होकर अपने हृदय को मुक्त कर ब्रह्मानन्द सहोदर, रस रूप आनन्द की प्राप्ति करते हैं। रस के कारक रूपों में विभाव, अनुभाव; संचारी भाव से सम्वन्धित कवि की सचेतनता का सैद्धान्ति एवं व्यवहारिक निर्दशन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। श्रृंगार इसका अंगीरस है, वीर सहायक होकर आया है जिसमें युद्धवीर और धर्मवीर की भी यथास्थान चर्चा है। महाभारती में प्राप्त रसों के उदाहरण देकर अनुभाव एवं संचारी भावों का व्यवहारिक दृष्टि से उल्लेख किया गया है।

इस खण्ड का चतुर्थ और अन्तिम अध्याय महाभारती की भाषिक संरचना का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, यहाँ भाषा के सर्वमान्य भाषिक प्रतिमानों के साथ ही कवि प्रयुक्त तत्सम् प्रधान संस्कृत, प्रत्यय, संधि, समास और उपसर्गो से निर्मित कर स्वरूप प्रस्तुत कर वैदग्धभंगी भणित के रूप में प्रयुक्त संवाद–योजना का स्वरूप, विश्लेषण किया गया है। महाभारती में प्रयुक्त शब्द और अर्थ अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत कर कहा गया

है कि कवि ने अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, निदर्शना सहित सभी प्रमुख अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। अपवाद स्वरूप कुछ स्थलों को छोड़ दिया जाये तो कवि की उत्पत्ति यह है कि स्वाभाविक और अनायास रूप में प्रयुक्त अलंकार काव्य शोभा बढ़ाने के श्रेष्ठ कारक तत्व हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में वैदर्भी, गौणी, पांचाली, अभिधा, लक्षण, व्यंजना, ओज, प्रसाद, माधुर्य गुणों के लक्षण उदाहरण देकर यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया है कि प्रसाद और माधुर्य गुण प्रधान रचना है। प्रलय और युद्ध के वर्णन में ओज का सफल प्रयोग कवि कर सकता है। महाभारती में प्राप्त छन्द 22 से लेकर 32 मात्राओं के हैं जिनका शास्त्रीय विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि कवि छन्द प्रयोग में लक्षणानुधावन का अधिक समर्थक नहीं है। उसने लयात्मकता, गत्यात्मकता और प्रवाहमयता का विशेष ध्यान रखा है। अन्त में महाभारती के शैली रूप में प्रयुक्त काव्य रूप निर्धारण हेतु, महाकाव्य की पौरषत्य एवं पाश्चात्य अवधारणाओं के निकर्षण के परिप्रेक्ष्य में यह कहा गया है कि आधुनिक युगीन महाकाव्य की मान्यताओं के लिए जीवन्त, उदात्त कथावस्तु युगीन समस्याओं को चित्रित करने वाले उदात्त पात्र रसों का हृदयावर्जक रूप में प्रयोग तथा आधुनिक सन्दर्भो की अभिव्यंजना में समर्थ मायिक प्रतिमान और भावों की विवृत्ति हेतु अलंकार, गुण, दोष, रीति, छन्द आदि की दृष्टि से यह आधुनिक युगीन महाकाव्य है।

द्वितीय खण्ड मनोविज्ञान से सम्बन्धित है। इस अध्ययन हेतु तीन अध्याय प्रयुक्त हैं। प्रथम अध्याय मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक स्वरूप व विश्लेषण से सम्बन्धित है। कहा गया है कि भारत वर्ष की चिन्तन मनीषा में अन्यमय कोश से लेकर आनन्दमय कोश तक की यात्रा का उल्लेख किया है। शरीरस्थ मन, बुद्धि, चित, अहंकार का स्वरूप विश्लेषण क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के परिप्रेक्ष्य में सांख्य, प्रणीत तत्वों के साथ भारतीय दर्शन में मन के स्वरूप का निर्धारण किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य विचारक फ्रायड, मैकडूल, प्रभृति मनोविश्लेषकों के एतद्सम्बन्धी विचारों के उदाहरण देकर मन की वृत्तियाँ उल्लिखित की गयी हैं।

द्वितीय अध्याय में महाभारती में प्राप्त मानव की मूल वृत्तियों का सोदाहरण विवेचन किया गया है, इन वृत्तियों में आत्म रक्षा, आत्म विस्तार, भय, काम, युयुत्सा, परिवार वृद्धि संवेगो का विवेचन सैद्धान्तिक भित्ति पर किया गया है।

द्वितीय खण्ड के अन्तिम अध्याय में मानव चरित्र एवं व्यक्तित्व के मूल में निहित

कारक तत्वों की चर्चा कर इड, इगो, सुपर इगो तथा चेतन, अवचेतन, अचेतन मस्तिष्क के क्रिया-कलापों द्वन्द्वों का सोदाहरण विश्लेषण उपस्थित किया गया है। गणमन्त्र के उद्‌भावक प्रतिस्ठापक विश्वामित्र का शम्वरी के साथ प्रेम, अन्तर्द्वन्द्व पुरूरवा-उर्वशी के प्रणय् प्रसंगो के प्रख्यात नृत्यरता, उर्वशी का आन्तरिक द्वन्द्व, वशिष्ठ-विश्वामित्र युद्ध के पश्चात् पराजित क्षात्र तेज से सम्पन्न विश्वामित्र का मनस्ताप, अन्तर्द्वन्द्व एवं वहिर्द्वन्द्व या चेतन, अचेतन, संघर्ष रूप में विश्लेषण किया गया है। सुर-असुर संघर्ष प्रलय के पश्चात् मानवीय जिजीविषा और अन्तिम अध्याय में वैज्ञानिक प्रगति सीमा सम्भावना और सामर्थ्य के रूप में मानव की उच्च महत्वाकाँक्षा को देखा गया है।

तृतीय खण्ड महाभारती का सांस्कृतिक विश्लेषण से सम्वन्धित है। इस खण्ड में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय संस्कृति और उसके तत्वों से सम्वन्धित है। सृष्टि विकास, संरक्षण, पोषण, मानव की विभिन्न अभिवृत्तियाँ उसके क्रिया कलाप वाह्य आचरण, और आन्तरिक चिन्तन और संस्कृति सभ्यता, कहे जाते हैं। शोधकर्ता ने भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के एतद् सम्वन्धी अवधारणाओं को प्रस्तुत कर यह निष्कर्ष निकाला है, कि साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है और इन चित्तवृत्तियों के मूल में सामाजिक रहन-सहन, रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ, अन्ध विश्वास, राजनीतिक अवस्था का विशेष महत्व होता है।

द्वितीय अध्याय में आलोच्य काव्य में प्राप्त सांस्कृतिक तत्वों में संस्कार, विवाह, नामकरण, वेदाध्यन, सहित नगर, आश्रम, प्रकृति, राज्य पद्धति निरूपण, नर-नारियों की सामाजिक दशा स्थिति और आर्थिक दशा का मूल्यांकन कर देखा गया है, कि महाभारती में वैदिक युगीन संस्कृति, पौराणिक युगीन सभ्यता और आधुनिक युगीन भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्र की अवधारणा और उसकी समस्याओं का निरूपण सर्वथा नई दृष्टि से हुआ है।

इस शोध प्रबन्ध का चतुर्थ और अन्तिम खण्ड काव्य में प्राप्त दार्शनिक तत्वों का अध्ययन विश्लेषण है। इस खण्ड को चार अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय दर्शन के स्वरूप को चित्रित करता है यहाँ कहा गया है कि जीव, अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश तक की यात्रा सम्पन्न करता है। उस समय उसकी जिज्ञासा होती है कि वह कौन है? कहाँ से आया है? कहाँ जायेगा? उसका स्वरूप क्या है? और अन्त में उसकी परिणति क्या होगी? इन्हीं चिन्तन हेतु दर्शन और उसके विभिन्न विभाग हुए

हैं। मैंने भारतीय और पाश्चात्य दार्शनिकों की परिभाषाएँ उद्धृत कर दार्शनिक तत्वों के रूप में ब्रह्म, जीव, जगत्, माया और मोक्ष का स्वरूप संक्षेप में उपस्थित किया है।

इस खण्ड का द्वितीय अध्याय में ब्रह्म एवं जीव के स्वरूप का निर्धारण किया गया है। वैदिक उपनिषद्, ब्रह्म सूक्त, गीतोक्त ब्रह्म एवं जीव स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में महाभारती के ब्रह्म रूप का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि पोद्दार सगुण ब्रह्म की अपेक्षा निर्गुण ब्रह्म, यज्ञ, शक्ति, ब्रह्म, विष्णु और शिव दृष्टि समन्वित जिस ब्रह्म का वर्णन आलोच्य काव्य में मिलता है वह अज, अव्यय, सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता और उसकी भावमयी स्थिति का हृदयावर्जक निरूपण महाभारती में हुआ है। जीव के स्वरूप का उल्लेख करते हुए यह देखा गया है कि जीव जिजीविषा और उसकी महत्वाकाँक्षा सर्वोपरि है। अपने विकास की जय यात्रा में उसने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया है।

तृतीय अध्याय आलोच्य काव्य में जगत् एवं माया के वर्णन से सम्बन्धित है। जगत् एवं माया के सैद्धान्तिक विवेचन के लिए वैदिक औपनिषद्, गीता, ब्रह्म सूक्त के कुछ उदाहरण देकर महाभारती में प्राप्त इनके स्वरूप की चर्चा की गयी है। देवसभ्यता और उसके विनाश के पश्चात् मानव सभ्यता और जगत् का विकासात्मक स्वरूप का उल्लेख कवि ने किया है। यह सृष्टि मूल प्रकृति है जो ब्रह्म के निर्देश पर बनती बिगड़ती है। इसी जगत् में रहने वाला जीव मायिक साधनाओं– काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, जड़, जग्वडाल में वँधकर अपना उत्थान भूल जाता है। तभी उसमें दुःख, दीनता, नैराश्य का प्रादुर्भाव होता है।

अन्तिम और चतुर्थ अध्याय आलोच्य काव्य में प्राप्त मोक्ष स्वरूप और उसके साध नों से सम्बन्धित है प्रारम्भ में मोक्ष की दार्शनिक परिकल्पना, सारूप्य सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, आदि की चर्चा की गयी है। तदुपरान्त महाभारती में मोक्ष स्वरूप का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि आरम्भ में स्वर्ग लोक की प्राप्ति अमरता, अमृत की प्राप्ति से मोक्ष की परिकल्पना का जन्म हुआ और इस हेतु विधि निषेध के कारण स्वर्ग–नर्क की कल्पना और बाद में शरीर में ही सदेह या विदेह मोक्ष की अवधारणा विकसित हुई है। स्वरूप अवस्थित, ब्रह्मानन्द प्राप्ति समाधिस्थ आत्मा आत्मसाक्षात्कार, कुण्डली जागरण आदि उसके विविध स्वरूप महाभारती में मिलते हैं। देहारान्तर अन्य लोक गमन सिद्धि प्राप्त में ही मोक्ष स्वरूप को देखा गया है। इस हेतु महाभारतीकार ने प्राक्तन आचार्यो द्वारा कथित कर्म, ज्ञान, योग, हठयोग और मुक्ति मार्ग की संक्षिप्त चर्चा की है किन्तु

व्यवहारिक उदाहरणों को देखकर ऐसा लगता है, कि कवि कर्म, ज्ञान, और योग को विशेष महत्ता देना चाहता है क्योंकि ज्ञान योग आधुनिक, वैज्ञानिक प्रगति के अनुकूल भी पड़ेगा।

सारांश यह है कि महाभारती के काव्य स्वरूप मनोविज्ञान की व्यवहारिक व्याख्या सांस्कृतिक और दार्शनिक तत्वों से उसका अध्ययन समीक्षा क्षेत्र में समिन्वति प्रयास है।

इस शोध प्रबन्ध के पूर्ण करने में मुझे डॉ0 वेद प्रकाश द्विवेदी, रीडर अध्यक्ष अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा का अभूतपूर्व निर्देशन, सहयोग एवं मार्गदर्शन मिला है। काव्य, मनोविज्ञान, संस्कृति एवं दर्शन के गूढ़ रहस्यों के प्रतिफलित स्थलों की खोज मैं उनके निर्देशन के अभाव में नहीं पहचान सकता था। शोधकर्ता हृदय से उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है। मुझे गुरूदेव की तन्मयता देखकर प्राचीन गुरूकुल पद्धति का स्मरण हो आया जिसमें गुरू-शिष्य के सम्बन्धों का ज्ञान हुआ -

झुक चरणों में अपने गुरू के हर शिष्य अमर हो जाता है

जैसे सागर में पत्थर मोती बन जाता है।

इस शोध प्रबन्ध के लिए मुझे जिन विभागीय प्राध्यापक, गुरुओं तथा विशिष्ट विद्वानों का परामर्श प्राप्त हुआ है उनके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ। डॉ0 गीर्वाण दत्त मिश्र, डॉ0 शशिकान्त अग्निहोत्री, डॉ0 महाबीर सिंह, श्री गया प्रसाद यादव (सनेही) एवं डॉ0 श्रीमती गीता द्विवेदी हिन्दी विभाग एवं डॉ0 विशम्भर दयाल अवस्थी, डी0लिट् सेवानिवृत्त एवं डॉ0 ओंकार त्रिपाठी तथा डॉ0 ओंकार मिश्र, डॉ0 दिनेश गर्ग तथा सहपाठी एवं सहअध्यापक श्री कालीचरन बाजपेई एवं श्री पुष्पेन्द्र द्विवेदी का मैं हृदय से स्मरण करता हूँ। जिन्होंने मुझे समय-समय पर कार्य के प्रति उत्साहित किया।

यह शोध कार्य नहीं पूरा होता यदि वयस मित्र श्री राजेश सिंह का सक्रिय सहयोग न मिलता एवं श्री अखिलेश कुमार द्विवेदी तथा शिवराजेश्वर के प्रति अपना आभार किन शब्दों में व्यक्त करूँ क्योंकि इन्होंने रात-दिन एक कर इस शोध प्रबन्ध का टंकण कर यथा समय मुझे जमा करने हेतु प्रेरित किया।

मैं अपने पूज्य पिता श्री संत कुमार अग्निहोत्री एवं माता श्रीमती सुधा अग्निहोत्री तथा अग्रज श्री राजेन्द्र कुमार अग्निहोत्री एवं श्री उमेश कुमार अग्निहोत्री का श्रृद्धा आदर पूर्वक स्मरण करता हूँ। उन्हीं के सक्रिय सहयोग और आशीर्वाद स्वरूप यह कार्य अपना आकार ले सका है। मैं अपनी भाभी जी श्रीमती ज्योति अग्निहोत्री एवं श्रीमती नीतू अग्निहोत्री का विशेष आदर से स्मरण करता हूँ जिन्होंने मुझे शोध के जटिल प्रसंग आने

पर मुझे प्रेरणा प्रदान करती थीं। इन्होंने मुझे इन पंक्तियों से प्रेरित किया –

वह पथ क्या पथिक कुशलता का?
जिस पथ पर बिखरे शूल न हों
नाविक की धैर्य कुशलता क्या?
यदि धाराएँ प्रतिकूल न हों।

मैं अपने प्रिय भतीजे चि0 अर्जुन अग्निहोत्री का विशेष स्मरण करता हूँ जिसने मुझे कभी इस कार्य में व्यवधान नहीं उत्पन्न किया जो कि मेरे लिए प्रत्यक्ष सहयोग से कहीं ज्यादा बढ़कर है।

मैं विशेष रूप से श्री दीपक गुरुदेव एवं सुश्री अर्चना गुरुदेव को स्मरण करता हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर कार्य को शीघ्रता से करने की प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं। एवं भविष्य के प्रति इसकी उपयोगिता के लिए बताते रहे हैं।

मैं विशेष रूप से सुश्री आरती जी का उल्लेख अवश्य करना चाहूँगा। जिन्होंने मेरे इस शोध कार्य को पूरा करने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य को पूर्ण करने में मदद की और व्याकरण सम्बन्धी दोष तथा मुख्य रूप से उच्चारण सम्बन्धी दोषों को दूर करने में मेरी विशेष रूप से मदद की है। मैं इनका आत्मा से स्मरण करता हूँ इनसे मुझे भविष्य में यही विश्वास है कि यह मेरा मार्गदर्शन करेंगी और मेरे जीवन पथ को हमेशा आगे बढ़ाने में अपना सहयोग करेंगी मेरे पास इनका आभार व्यक्त करने के लिए हिन्दी शब्द कोश के शब्द भी कम पड जायेंगे।

अन्त में इस शोध प्रबन्ध में जिन ग्रन्थों से सन्दर्भ लिए गये हैं तथा वाचिक रूप में जिनसे मुझे सहायता प्राप्त हुई है। उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

भवदीय

कपिल कुमार अग्निहोत्री

(कपिल कुमार अग्निहोत्री)
एम0ए0, बी0एड0
नरैनी रोड, अतर्रा (बाँदा)
फोन : 05191-247607, 245216

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड : काव्य - विवेचन

द्वितीय खण्ड : मनोविज्ञान

तृतीय खण्ड : संस्कृति

चतुर्थ खण्ड : दर्शन

प्रथम खण्ड : काव्य विवेचन

प्रथम अध्याय
महाभारती की कथा वस्तु

द्वितीय अध्याय
महाभारती की पात्र–योजना

तृतीय अध्याय
महाभारती में रस एवं भाव–विवेचन

चतुर्थ अध्याय
महाभारती में भाषा–संरचना
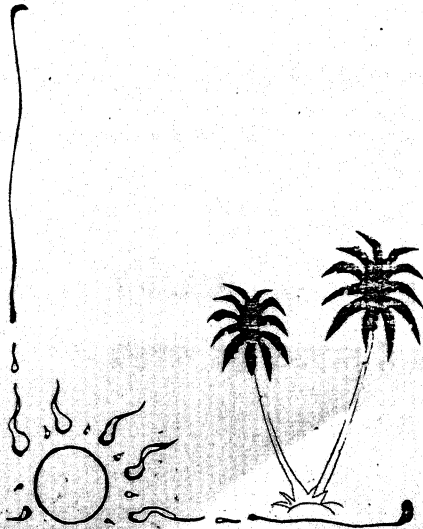
हृदय की रागात्मक अनुभुतियाँ तरलावास्था में काव्य रूपों में प्रकट होती हैं ये अनुभूतियाँ मानव के शेष सृष्टि से रागात्मक सन्धि का विस्तार है। अतः कविता एक तरफ मानवीय जीवन की महत यशोगाथा है, उसके जय-पराजय, उत्थान-पतन, हर्ष-विषाद की अभिव्यंजना है। साथ ही उसमें प्राकृतिक सौन्दर्य की विविध प्रतिछवियाँ रूपायित होती हैं, तो दूसरी तरफ इस शेष सृष्टि में निरन्तर अबाध गति से चलने वाले क्रिया व्यापार में लयात्मकता देख जिज्ञासा और उसके कारणों की खोज के रूप में दर्शन उसका आधार वनता है।

यह काव्य युगीन परिस्थितियों के अनुरूप जनता के चित्र वृत्त्यियों को मुखरित करता चलता है। अतः काव्य धारा का समग्र विकास और उसका अध्ययन विश्लेषणं एक साथ दुष्कर कार्य है। बोध सौन्दर्य एवं अध्ययन सारल्य के लिए के लिए उसे हम कुछ काल खण्डों में बाँट लेते हैं। इसी दृष्टि पथ को सामने रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्येतिहास को चार कालों में विभक्त किया था।

आधुनिक काव्य धारा के विकास क्रम को स्पष्ट करनें के लिए कहीं व्यक्ति तो कहीं प्रवृत्ति को आधार बनाया गया है। इसीलिए उसके नामकरण में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद इत्यादि नाम बहुप्रचलित हैं।

कथा के आधार पर काव्य को दो भागों में विभक्त किया गया है- प्रबन्ध काव्य एवं मुक्तक काव्य।

प्रवन्ध वह काव्य है जिसमें आद्यान्त एक कथा चलती है, कथासूत्र की निरन्तरता उसकी विशिष्टता है कहना नहीं होगा इसे ही भारतीय प्राचीन आचार्यो ने प्राचीन वस्तु कहा है। इसे हम कथावस्तु कथानक या अंग्रेजी पर्याय के रूप में प्लाट कहते हैं। कथावस्तु इस प्रकार के काव्यों का मेरूदण्ड है, जिस पर आधारित छोटी मोटी घटनायें या क्रिया व्यापार विकासित होकर मूलकथा को प्रौढ़ या पुष्ट करते हैं। भारतीय आचार्यो ने कथावस्तु को तीन भागों में बाँटा है :-

1.प्रख्यात 2. उत्पाद्य 3. मिश्रित

प्रख्यात वह कथवस्तु है जो परम्परित रूप से मिथक रूप से अथवा पुराणों पुरोक्त

घ्टनाओं का पुंजीभूत रूप है। पाश्चात्य विचारकों में अरस्तु ने ऐसे ही दिव्य एवं अलौकिक पात्रों की जीवन्त गाथा को काव्य का विषय बनाने को पर जोर दिया। इस कथानक के मोटे तौर पर दो भाग किए जा सकते हैं- 1.अधिकारिक कथा 2. प्रसांगिक कथा । जो फल का भोक्ता या नायक होता है उसकी कथा अधिकारिक कथा कहलाती है। एवं कथा में प्रयुक्त अन्य पात्रो की घटनाऐं प्रसांगिक कथायें हैं, पाश्चात्य विचारकों का अभिमत है कि कथा में औत्सुक्य विस्तार चरमसीमा और संहार होना चाहिए तदनुरूप छोटी-छोटी ऐसी घटनओं का चयन साहित्यकार या कथाकार को करना चाहिए जिसमें पात्रों की विश्वसनीयता वनी रहे।

पोद्दार रामावतार बिहार प्रान्त के निवासी हैं, महाभारती उनका ऐसा ही प्रवन्ध काव्य है, जिसमें भारतीय शक्ति, सौन्दर्य और साधना के साथ आर्यावर्त के पौराणिक पात्रों की यशोगाथा उपनिबद्ध है। प्रस्तुत काव्य के प्रेरणा स्रोत के रूप में कवि ने स्वयं जर्मनी के साहित्य मित्र डा0 फिल खुर्त्त खर्न का उल्लेख किया है। जिन्होने ये कल्पना की, कि यदि कालिदास ने एक ग्रन्थ की रचना की होती तो वह किस रूप में दिखाई देता। यह जिज्ञासा कवि के लिए चुनौती बन गयी। कवि ने लिखा है कि कालीदास की समस्त रचनाऐं सुरभित सराज मंगल के समान प्रधान है सूर्य की सप्त रश्मियाँ सी उनकी प्रबन्ध चेतना में सुनिश्चित लक्ष्य की अपूर्व क्षमता है।

कवि के चिन्तन प्रक्रिया की पृष्ठ भूमि् में कभी वाल्मीकि को देखता और कभी तुलसीदास को पर अर्ध्यमुकुलित मानस में इतनी प्राकृतिक शक्ति कहाँ कि एक पौढ़ विदेशी आर्य मित्र की साहित्यिक इच्छा अंशतः भी पूर्ण हो सके। (1)

छायावाद के पाश्चात् कामायनी जैसा कोई प्रकृति काव्य नहीं लिखा जा सका, इस कमी को भी पूरा करने के लिए यत्किंचित प्रयास रामावतार पौद्दार ने किया है। महाभारती उनका ऐसा ही महाकाव्य है, जिसमें भावनायें वाल्मीकि तुलसी और प्रसाद की और उसका शिल्प विधान छायावादी युग से आप्लावित है।

यहाँ हम महाभारती के सर्गानुसार कथा लिखकर विश्लेषण के रूप में कथा के स्रोत और मौलिक उद्भावनाओं की समीक्षा अन्त में करगें।

---

(1) महाभारती, दृष्टि पृ0 15-16

प्रथम सर्ग

इस सर्ग में प्रलय की भयंकरता का वर्णन किया गया है, जिसका प्रभाव सभी चर अचर जीवों में पड़ता है। प्रलय के पश्चात प्रकृति पुनः नवीव रूप में प्रस्फुटित होती है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओं और राक्षसों के वीच युद्ध का खेल हो रहा था।

प्रलय के पश्चात् प्रकृति में नये सिरे से अंकुरण होता है, जिससे चारों ओर प्रसन्नता का महौल प्रतीत होता है। शरद् ऋतु के आने पर सर्वत्र बर्फ ही बर्फ दिखायी देती है। सूर्योदय के पश्चात् प्रकृति के सौन्दर्य श्री में वृद्धि होने लगी सभी का मन प्रफुल्लित हो गया।

सुख और दुख के दोनो दृश्य देखकर मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ, कि कौन हो तुम जो इस प्रकार के परिवर्तन के जनक हो? प्रश्न किसने किया? प्रश्न करने वाला स्वयं उत्तरहीन हो गया। स्वनिर्मित भूमि पर देवता अप्सराओं के साथ बिहार करनें लगे। लेकिन इन्द्र देवताओं के इस विलास को देखकर क्रोधित हो गये जिसके कारण उसके नृत्योल्लास में विघ्न उपस्थित हुआ।

देवताओं के स्वच्छन्दता पूर्ण आचरण से प्रकृति ने पुनः उग्र रूप धारण किया, पशु-पक्षी सभी इस विप्लव से भयभीत हो गये। देवताओं का सानन्द निवास इस पृथ्वी पर असम्भव हो गया, जिसके कारण सभी देवता और अप्सराएं इन्द्र के आदेश पर भूलोक से प्रस्थान कर गयें। लेकिन एक देवता भूमि से अधिक मोह होने के कारण दुःखी तथा क्रोधित हैं, किन्तु इस भूमि में अकेले रहना कैसे सम्भव है? तभी एक देव कन्या शिला पर वैठी हुई दिखाई दी उसी समय प्रचण्ड तूफान आया और देवता शीघ्र ही देवपुर के लिए प्रस्थान कर गये। ज्यों हिम तरंग ऊपर उठी सुर-असुर का संवाद समाप्त हो गया। वह (देवता) अकेला खड़ा मन में ही प्रश्न कर रहा था कि तुम कौन हो तथा पुरूष का जीवन नारी मिलन से ही पूर्ण होता है। हम दोनो को मिलकर ही इन प्राकृतिक विपत्तियों का सामना करना चाहिए। प्रकृति ने इस धरती को अपनी अपार सम्पदा प्रदान की है, लेकिन मनुष्य यह नहीं जानता है कि यह संसार निस्सार है, इस पृथ्वी का इतिहास कितना दुखःद है। सप्त सिन्धु प्रदेश तक वह तरूण युवक नाव से प्रस्थान कर गया, जहाँ चारों तरफ प्रसन्नता है धीरे-धीरे नवीन सृष्टि का निर्माण हुआ।

इस संसार का निर्माण चेतना रूपी वीज से होता है, सुरलोक से आवाज आयी कि रूको पृथ्वी पुत्र अभी सदेह सुरलोक नहीं आ सकते आत्मा के अभ्युत्थान से ही मानव नरेन्द्र वन सकता है।

यह सव देखकर एक क्रान्तदर्शी कवि का मन लिखने के लिए व्याकुल हुआ, कवि ने ऐसी कल्पना की, कि देवताओं का जीवन बुढ़ापे और मृत्यु से हीन है लेकिन कवि का मन सुरलोक के वर्णन में ज्यादा नहीं लगा वह भूलोक के विषय में ज्यादा सोचता था। देवता स्वच्छन्द क्रीड़ा में संलग्न थे लेकिन एक रात वहाँ भी प्रलय हो गयी। मैं अकेला इस भूलोक पर रह गया। आज मैं विस्तृत वंश को देखकर कितना ख़ुशी हूँ मैं इस जगत जननी भू को प्रणाम करता हूँ क्योंकि तुम्ही इस सृष्टि का पालन करने वाली हो। इस धरती पर मनुष्य का पूर्ण विनाश कभी नहीं हो सकता।

असुरों के आगमन के डर से देव लोक में कोलाहल मचा हुआ है। इन्द्र को अपने सिंहासन का भय सता रहा है एकदिन मनुष्य अवश्य सदेह सुरलोक तक आ जायेगा। हे इन्द्र सावधान। जिस देवता ने मनुष्य की रचना की, उसे बार-बार जन्म लेने का वरदान दिया उसको मैंने शाप दिया कि तुन्हारी गति त्रिशंकु के समान होगी। एकदिन इस पृथ्वी पर भी स्वर्ग की सृष्टि होगी लेकिन अभी नहीं क्योंकि मनुष्य अभी भोग विलास में लगा हुआ है।

द्वितीय सर्ग

समुद्र मन्थन के समय उत्पन्न हुई उर्वशी एकदिन एकान्त में पुरानी स्मृतियों को ताजा कर रही थी। बसन्त ऋतु की प्रकृति अपने यौवन से दशों दिशाओं को सुगन्धित कर रही थी। उसी समय एक अप्सरा ने शिव और कामदेव की कथा सुनाई। कार्तिकेय के जन्म के पश्चात देवताओं की विनती पर माता को नवजात शिशु से बिछड़ना पड़ा और कार्तिकेय के नेतृत्व में देवताओं को विजय मिली। राक्षसों और देवताओं का आपस में कई वार संग्राम हुआ।

उर्वशी पौराणिक घटनाओं को ताजा कर रही थी, उसी में अपने अतीत को खोज रही थी। इन्द्र ने भविष्य वाणी की थी कि मेनका की पुत्री जब किसी बच्चे को जन्म देगी तभी कवि का अंश जन्म लेगा। और इस भू पर भरत के नाम से प्रसिद्ध होगा।

उर्वशी अपनी यादों को पुनः रम्भा को सुनाती है। मेरे अन्दर काम की भावनायें उमंगे ले रही थी और मैं अपनी ही सुन्दरता पर मुग्ध थी। एकदिन मैं घूमने के लिए अकेले निकल पड़ी सन्ध्या के समय मैं विचरण कर ही रही थी, कि अचानक कोलाहल सुनाई पड़ा और थोड़ी ही देर में सामने एक दैत्याकार राक्षस दिखायी पड़ा जिससे शरीर डर से काँपने लगा। मुझे यह आभास होने लगा कि इस भू पर मेरी सहायता करने वाला कोई नहीं है तथा यह पृथ्वी वीरों से खाली है तभी अचानक रथ के चलने की आवाज आयी तथा तत्काल वाणों की वर्षा से घायल असुर आकाश मार्ग से भागा।

हे सखि अव आगे की मधुर आत्म-व्यथा मत पूछों वह प्रेम तो पृथ्वी लोक की स्त्रियाँ ही अनुभव कर सकती हैं वह अतिथि पुरूरवा थे, जो मर्यादित दृष्टि से मेरी ओर देख रहे थे। देखते ही देखते हम दोनों प्रेम-वन्धन में वँध गये और मैं उनकी भुजाओं में सिमट गयी।

हे इन्द्रदेव! मुझे क्षमा करना मैं साधारण मानवी स्त्री बन गयी, और भू आर्कषण के कारण मेरा कौमार्य हरण हो गया। जब मै उनसे विछुड़ने लगी तब उनकी आँखों में आँसू थे तथा मैं शर्मिन्दगी के साथ देवलोक पहुँच गयी।

एकदिन देवलोक में नाच-गान का पूर्वाभ्यास हो रहा था मेरे असंतुलित नृत्य से मुनि ने मुझे रोका और वहीं मेरा पुरूरवा का गुप्त प्रेम प्रकट हो गया और मैं कुछ न बोल सकी, इन्द्राणी पद भी न प्राप्त कर सकी कि वह दिन शुभ था या अशुभ। हे रम्भे! मेरे उत्तर से मुनि स्तब्ध रह गये और अपनी शिक्षा पर पश्चाताप करते हुए मुझे पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देकर तपस्या के लिए भू लोक चले आये। मैं क्षमा माँगती रही लेकिन वह नहीं रूके। जब प्रसव का समय समीप आया तव मैं भू लोक पुनः गयी और भटकते-भटकते भरत मुनि के आश्रम में ही पुत्र का जन्म हुआ। गुरूदेव ने कठिन मेहनत से उसका पालन-पोषण किया। जव मैं पुरूरवा से मिली तो प्रसन्न हो गयी।

तृतीय सर्ग

इस सर्ग में वशिष्ठ जी ने अपने विद्यार्थियों को शिक्षा दे रहें हैं एक सभ्य समाज और असभ्य समाज के बीच अन्तर को बताया है तथा एक संस्कारी मनुष्य और एक

असंस्कारी मनुष्य के कार्यो के अन्तर को स्पष्ट किया है। वशिष्ठ जी ने अपने शिष्यों को समाज की तत्कालीन दशा की जानकारी देते हैं तथा मनुष्य को अपने मन को नियंत्रण में रखने की शिक्षा भी दी है तथा समाज में शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा समाज के लिए अभिशाप है।

ज्ञान का कभी अन्त नहीं है तथा मूल रूप से मनुष्य एक ही है, रूप में भिन्नता है। पूर्व जन्म के संस्कार अगले जन्म में अज्ञात रूप में प्रकट होते हैं। आत्म तप से वैयक्तिक सिद्धि होती है। कर्म के तप से लोक का विकास होता है। मनुष्य की अन्तिम इच्छा मोक्ष की होती है। मात्र प्रसिद्धि से उसके कर्मो का आँकलन नहीं होता जिसको साधना से होता प्यार, वह कभी आत्म प्रचार नहीं करता।

उसी समय दूत ने बताया कि आर्यो पर आक्रमण हो गया लेकिन ऐसा क्यों हो गया। राजा का कर्तव्य है कि दूत का सम्मान करे। युद्ध को तुम यज्ञ समझो और प्रजापति से कहना कि कभी शक्ति का घमण्ड न करे।

एक पीढ़ी से ही दूसरी पीढ़ी का विकास होता है मनुष्य संस्कारों के द्वारा बहुत ज्ञान अर्जित करने के बाद भी युद्ध से मुँह नहीं मोड़ता है। कष्ट में ही सुख छिपा रहता है और सुख में दुःख छिपा रहता है। आत्मानुशासन से ही मनुष्य का उत्थान होता है।

जब-जव देवताओं या मनुष्यों ने महातामसी प्रवृत्ति को अपनाया तब-तब उनका विनाश हुआ है। फिर मनु का जलप्लावन से संघर्ष तत्पश्चात् जीवन जीने के लिए संघर्ष और पुनः अपने देश अर्थात् आर्य देश का वर्णन किया है।

चतुर्थ सर्ग

इस सर्ग में विश्वामित्र के बाल्यकाल तथा उनकी शिक्षाओं का और शम्बरी के साथ विवाह का वर्णन किया गया है तथा विश्वामित्र के त्याग और बलिदान का समाज के प्रति अपनाये गये आदर्श का वर्णन किया गया है।

विश्वामित्र को सर्वप्रथम विश्वामित्र नाम से लोपामुद्रा नें पुकारा था। ऋषि ऋचीक के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की थी। बचपन से ही लोपामुद्रा के प्रति विश्वामित्र का अनुराग था। विश्वामित्र ने सामान्य शिष्यों की ही तरह शिक्षा ग्रहण की थी। विभिन्न प्रकार के पहाड़ों जंगलों तथा वहाँ निवास करने वाली सभ्य-असभ्य जातियों का वर्णन किया है।

विश्वामित्र ने सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण के लिए भीष्म-प्रतिज्ञा की थी। लेकिन पार्वती के बिना शिव तपस्या संम्भव नहीं है। अब विश्वामित्र के सामने सिर्फ एक प्रश्न मानव कल्याण का था। हम लोग पर्वतों पर तपस्या करने के लिए चले गये।

डाकुओं का राजा शम्बर अगस्त्य से भयभीत रहता था। ऋषि ने उसके बारे में संक्षिप्त जानकारी दी थी। ऋषि की प्रेरणा से ही मैं मानव मुक्ति के लिए कुछ करने को व्याकुल था। मैंने आत्म सत्य के लिए कठिन तपस्या की थी। शम्वर डाकू वह दुर्ग आज भी मौजूद है जहाँ मुझे वन्दी बनाया गया था, मानव अपने कर्मो से ही देवता या राक्षस बनता है। वहाँ की व्यवस्था को देखकर मेरे मन में एक व्याकुलता थी। मैं सरस्वती से सिर्फ एक ही प्रश्न पूँछूगा कि वह सवको विद्या बल समान रूप से क्यों नहीं देती? क्या ये तेरे सभी पुत्र नहीं हैं?

विश्वामित्र और शम्वरी का विवाह हो गया। सत्य और सुरक्षा हित के लिए विवाह की अनुमति मैंने किसी से नहीं ली । माता से सिर्फ मॉफी माँगा। क्योंकि मेरे अन्दर विश्व हित के लिए अथाह करूणा समाई हुई थी। शम्वर राक्षस ने मुझे वन्दी बना लिया और मैं कुछ न कर सका। मैंने शम्वरी को अपनी आत्मव्यथा वतलायी।

लोपामुद्रा ने बनावटी भेष बनाकर दुर्ग में प्रवेश किया लेकिन शम्वरी से वह वात ज्यादा दिन न छिप सकी और शम्वरी के सैनिक लोपा को मृत्युदण्ड चिल्लाने लगे। मैं व्याकुल हो गया तब शम्बरी ने हम दोनों को बचाया था। लेकिन मुझे मेरा क्षत्रियपन धिक्कार रहा था, कि तेरे ही सामने लोपा को मृत्युदण्ड की बात। अन्दर से मेरी आत्मा ने ललकारा और उसी रात मैंने शम्वर का वध कर दिया।

जब हम लोग अगस्त्य ऋषि के आश्रम में प्रसन्नता पूर्वक पहुँचे तो महर्षि हमे देखकर क्रोधित हो गये और शम्बरी का सिर काटने का आदेश दिया। तव लोपामुद्रा ने वताया कि यह अनर्थ नहीं है यह आपकी पुत्रवधु है, इसी ने मेरे प्राण की रक्षा की है तव ऋषि ने आर्शीवाद दिया। लेकिन एकदिन बहेलिये के तीर से शम्वरी का निधन हो गया रोहिणी से विवाह करनें के वाद ही मेरा दुःख कुछ कम हुआ। विश्वामित्र ने जगत के कल्याण के लिए राजसिहांसन का भी त्याग कर दिया। क्योंकि वह सम्पूर्ण विश्व का मित्र बन गया है।

पंचम सर्ग

ऋषि अगस्त्य अपने अतीत को याद कर रहे हैं कि पुत्री के जाने से मेरे तपस्या में विलम्ब हुआ, लेकिन अब मुझे सोये हुये मानव् को जगाना है। भू-वासियों के चेहरे पर प्रसन्नता देखनी है। ऋषि अगस्त्य को यह पहले से आभास था कि विश्वामित्र और वशिष्ठ में द्वन्द्व चल रहा है और इनमें से किसी एक की भी अगर सक्रिय सहायता करता तो इस पृथ्वी का बहुत नुकसान हो जाता इसलिए अपने उत्तेजित मन को शान्त करता रहा।

किसी समस्या का हल विभाजन नहीं है, मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख हमेशा आते हैं और इन दुखों या सुखों को आपसी सहयोग से घटाया बढ़ाया जा सकता है। श्रेष्ठ संकल्पों से ही श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है। मानवता का भविष्य उज्ज्वल है पृथ्वी पर प्रेम की ध्वजा लहरायेगी।

ऋषि अगस्त्य विंध्य पर्वत पर तपस्या करने के लिए तैयार हो गये। ऋषि प्रकृति के पुनः उद्भव को याद करते हुए कहते हैं कि इसका मैनें पितृवत पालन किया है। मनुष्य अपनी प्रतिभा के बल पर आकाश को छू सकता है। प्रतिभाशाली शिष्य से गुरू का भी ज्ञान बढ़ता है। उस सुरम्य वातावरण में हिंसक प्राणी भी अहिंसक हो गये। ज्ञान के अनुसार सभी जीव अपने-अपने कर्मो में रत हैं। कोई कर्म करने से पहले मन को आगे आना पड़ता है। दक्षिणप्रान्त निवासियों को सुखी सम्पन्न बनाने के लिए ही मैंने साधना की थी। जहाँ अन्धकार था वहाँ प्रकाश की शिक्षा दी गयी थी, लोपामुद्रा द्वारा ही नारी शिक्षा का आरम्भ हुआ। विद्या के निरन्तर विकास से मानव का उत्थान हो गया।

दक्षिण की प्रगति के समाचार जब उत्तर में पहुँचे, अनार्यो के गीत आर्यो के स्वर में गाये जाने लगे। एक हृदय ही दूसरे हृदय को पहचान सकता है मनुष्य के जीवन में सबसे ऊँचा प्रेम भाव है। मानव की सेवा करूण हृदय वाला व्यक्ति ही कर सकता है। मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ इसलिए है क्योंकि वह अपने कर्तव्यों को जानता है कर्तव्य के सामने स्वर्ग का कोई मूल्य नहीं। ऋषि अगस्त्य विंध्य साधना को याद करते हुये कहते हैं, कि पर्वतवासियों ने हम पर तीर कमान से प्रहार किया था, धीरे-धीरे भाषा के द्वारा हमने अपने हृदय एक दूसरे के लिए खोले और लक्ष्य तक आ गये।

हैहय के पुत्र जब दक्षिण में आये थे तब भृगु पुत्रों ने उनको भ्रमित करने की असफल कोशिश की थी ऋषि का कर्म केवल ज्ञानार्जन ही नहीं है, जीवन सफल तभी हैं जब वह कुछ सर्जना करे। बाहरी प्रसन्नता से आन्तरिक प्रसन्नता अधिक मीठी होती है। धीरे-धीरे सभ्यता की सीढ़ियों से मनुष्य स्वर्ग पर चढ़ता है। संस्कृति ही मानव को अमृत पिलाती है। मनुष्य की तृष्णा कभी शान्त नहीं होती।

लोपामुद्रा की कला क्रान्ति चन्द्रमा के समान शीतल है। मनुष्य के जीवन में सौन्दर्य है तो सब कुछ वरन् कुछ नहीं। अगस्त्य ने कहा मैं एक ऋषि की महिमा को भूल गया और सृष्टि की नई मधुरिमा देखता रहा। दूसरों के हितों के लिए अपनी सुधि भी भुला दी। लोपा ने ही कठिन कार्यो को चुना था। अब दक्षिण की प्राकृतिक सुषमा के बीच ही निवास करनें लगे। अभी मेरा संकल्प शेष है यह भी नहीं कह सकता कि सभी कार्यों को मैं ही पूरा करूँगा क्योंकि एक दिन सबकी मृत्यु होनी है। सर्व भूमि हमारी है। हिमालय से सागर तक विश्वामित्र मेरा ही तप कर रहा है, जो अधूरी साधना को पूरी करेगा।

षष्ठ सर्ग

विश्वामित्र गुरू की प्रेरणा से साधना करने के लिए पहाड़ों में चले गये, साधना मार्ग में कुछ व्यवधान भी आये। मुझे अपने शरीर में ब्रम्हाण्ड चक्र का आभास हुआ और ज्योति के दर्शन से मेरा ज्ञान झंकृत हो उठा।

माता के आदेश से मुझे अपनी साधना को बीच में ही स्थगित करना पड़ा और राज्य धर्म ग्रहण कर लिया मैंने अपनी अभिलाषाओं को सबके समक्ष नतमस्तक कर दिया मैंने अपने राज्य में मानवता का धर्म प्रतिष्ठित किया।

एक दिन वशिष्ठ के आश्रम में मैं सेना सहित पहुँच गया, जहाँ ऋषि वशिष्ठ अनिष्ट शान्ति के लिए ध्यान में लीन थे। ऋषि तेज के समक्ष राजा मद मलीन हो गया। ऋषि वशिष्ठ ने सेना सहित भोजन करनें के लिए प्रार्थना की, और हम लोग उनके आग्रह को ठुकरा न सके। भोजन की उन्होनें जो दिव्य व्यवस्था की। प्रत्येक व्यक्ति को इच्छानुसार भोजन सुलभ था, जिसे देखकर हम सभी लोग आश्चर्यचकित थे। विश्वामित्र की जिज्ञासा भोजन के प्रति बढ़ी की वशिष्ठ जी के पास कौन सी सिद्धि थी जिसके कारण यह दिव्य

व्यवस्था हुई।

वशिष्ठ जी ने मुझे कामधेनु गाय दिखाई और बोले इसी से मेरे कठिन कार्य सम्पन्न होते हैं। मैंने ऋषि से उस गाय को माँगा जिससे जनता की आवश्यकता की पूर्ति कर जनता के मन में सामनता की भावना पैदा की जा सके। कामधेनु गाय के बदले में मैं आपको श्रेष्ठ एक लाख गायें दे सकता हूँ समुचित धनराशि तथा आश्रम के लिये सम्पूर्ण खर्च में दूँगा। जिस प्रकार योगी से उसकी सिद्धि अलग नही की जा सकती, उसी प्रकार मुझसे कामधेनु गाय को अलग नहीं किया जा सकता। विश्वामित्र ने निराश होकर वार-वार प्रार्थना की लेकिन वशिष्ठ उनकी पुकार न सुन सके। अब काल की इच्छा से संघर्ष का जन्म हो गया और मैं सैन्य बल से कामधेनु गाय को वशिष्ठ के आश्रम से ले गया। विश्वामित्र और ऋषि वशिष्ठ के बीच भीषण अणु युद्ध जिसमे विश्वामित्र की पराजय हुई वशिष्ठ विजय के क्षण में भी शान्त ध्यान में मग्न थे। आत्मा की अंजलि देकर मैं लौट आया। कामधेनु ने मुझे सुन्दर रथ प्रदान किया। मेरे मन में प्रतिशोध की नयी आशा जगी तथा शिव तप की इच्छा उत्पन्न हुयी। मैं राजपाठ त्यागकर तपस्या में लीन हो गया। कामधेनु गाय मैं अपने लिए नहीं संसार के हित के लिए चाह रहा था। मैं वह धन हूँ जिसका कण-कण भू को अर्पित है मेरा हृदय संसार के लिए खुला है।

हिमालय पहुँचने पर मैंने दिव्यास्त्र प्राप्ति के लिए गुरूमंत्र द्वारा साधना प्रारम्भ कर दी। भगवान शिव ने प्रसन्न होकर मुझे दिव्यास्त्र प्रदान किये। इन्हीं अस्त्रों द्वारा मैंने वशिष्ठ के ऊपर प्रलयंकार प्रहार किया। भीषण युद्ध हुआ लेकिन वशिष्ठ की सिद्धि के सामने मैं हार गया। जीवन में केवल सर्वोत्तम है विशुद्ध अध्यात्मिक बल। अन्तिम प्रयास करना होगा। अंहकार साधना से ही देवत्व ग्रहण किया जा सकता है जीवन से ही जीवन का विकास होता है।

सप्तम सर्ग

विश्वामित्र की तपस्या से देवराज इन्द्र विचलित हो गये। विश्वामित्र के शरीर में मात्र अस्थियाँ शेष बची थीं तथा मन पूर्णतया उनके वश में था। इन्द्र ने विश्वामित्र को साधुवाद देकर देवलोक बुलाया और इन्द्रासन पद देने का सहर्ष उद्गार व्यक्त किया।

क्योंकि नन्दन वन मुझको अच्छा नहीं लगता।

भू सभी रसों और सौन्दर्य से पूर्ण है, इस कर्मस्थली पर सभी की इच्छायें पूर्ण होती हैं। सम्भव है कि स्वर्ग का विघटन हो जाये और नर में ही नारायण की शक्ति का वास हो। इन्द्र देव के सामने यह जटिल समस्या होगी और देवलोक का विनाश सम्भव है। विश्वामित्र और वशिष्ठ में अन्तर है, वशिष्ठ शिष्टाचारी हैं विश्वामित्र में कर्म और प्राणों की बहुलता है। अतः विश्वामित्र की तपस्या को भंग करना बहुत जरूरी है, इसके लिए मर्यादित-अमर्यादित दोनों मार्ग सही हैं। इस समय देवलोक की सुरक्षा प्रथम कर्म है।

इन्द्र की यह बात सुन दिति पुत्र क्रोधित हो गये तथा कहने लगे की रम्भा का प्रयोग अव अनिवार्य हो गया है वे ही तपस्या भंग कर सकती हैं। देवर्षि के मन में द्वन्द्व था क्योंकि वशिष्ठ प्रति स्नेह का भाव और कौशिक के प्रति दुःख था, क्योंकि विश्वामित्र का शासन होने पर मनुष्य अमर हो जायेगें तो कल्पना से परे हो जायेगा। कर्म करना मनुष्य का कर्तव्य है मनुष्य में सुर-असुर दोनो के गुण विद्यमान है।

रम्भा देवलोक से कौशिक के पास चली, लेकिन वीच रास्ते में ही असुर ने उसकी इज्जत पर हमला करके उसका शील भंग कर दिया रम्भा की पुकार देवलोक में भी कोई नहीं सुन रहा था उसका मन दुःख पूर्ण विषाद से युक्त था उसने मुर्च्छित लय से देवताओं का आह्वान किया। भू लोक रम्भा को आकर्षित करनें लगा।

रम्भा भू लोक में आकर विश्वामित्र की खोज करने लगी। विश्वामित्र अपना सम्पूर्ण ध्यान आकाश मार्ग में लगाये थे, तप के कारण उनके मुख मण्डल पर जो प्रकाश था वह नभ तक फैला था। अप्सरा निर्द्वन्द्व भाव से विश्वामित्र के समाधि के समीप नृत्य करने लगी, लेकिन कौशिक की तपस्या पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, दैत्येश चकित हो गया कि मनुष्य में इन्द्र को जीतने की क्षमता है। असुर ने भयंकर उत्पात मचाया लेकिन विश्वामित्र की तपस्थली में सब व्यर्थ था।

रूप और सौन्दर्य तपस्या के आगे नतमस्तक हो गया। रम्भा वापस चली गयी अप्सराओं में खलवली मच गयी। इन्द्रासन पर एक तपस्वी अधिकार कर रहा है, तव मेनका तपस्या भंग करने के लिए तथा मही को पुत्री प्रदान करने के लिए उद्धत हुई।

अष्टम सर्ग

विश्वामित्र साधना की समाधि में बैठे हुये हैं लेकिन उनका मन अर्न्तद्वन्द्व से ग्रस्त है। विश्ववामित्र उस युद्ध को याद कर रहे हैं जिसमें वशिष्ठ से उन्हे पराजय मिली लेकिन उस पराजय में भी जीत मेरी है, क्योंकि मुझे सुषुम्ना प्रगति की पहचान हो गयी है। विश्वामित्र का मन अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त है। यह तपस्या मैं किस लिए कर रहा हूँ? विश्वहित के लिए यह तपस्या की है। विश्वामित्र तीनों कालों का समन्वय करना चाहते हैं।

विश्वामित्र को स्वप्न में वह कवि मिला था, वह कौन था? उसे शाप से मुक्त करना है, उसने भविष्य के विषय में वतलाया था कि तुमसे स्वर्ग की कन्या पैदा होगी। मनुष्य हित से मेरा मोह था, इसी मोह के कारण मैनें देवलोक से विद्रोह किया था। गगन से मुझे इतना मोह क्यों है, क्या मैं नयी सृष्टि की रचना कर सकता हूँ? भूमि की ही तरह आकाश में भी देवताओं और राक्षसों में भी ईर्ष्या पायी जाती है। पृथ्वी भी आकाश का अंग है। आनन्द देह तक सीमित नहीं है। मुझे अपना प्रकाश ही पुकारता है। मनुष्य की सेवा भी अराधना है, दूसरों को चेतना रूपी अमृत देना है, आर्य अनार्य का भेद मिटाना है। लेकिन आज मुझे शरीर से मोह क्यों है, मेरी यादों की परीक्षा क्यों हो रही है। लेकिन मेरा लक्ष्य देवलोक नहीं है। मुझे इन्द्र से कोई भय नहीं है। योग साधना से कभी न बुझने वाली ज्योति अर्जित कर ली है।

उसी रात को मैनें स्वप्न में देखा कि मैं लक्ष्य तक पहुँच रहा हूँ, किन्तु यह तो आत्मगत सुख स्वाद था। उसी समय कोई चण्डाल आ गया और मैं खिन्नता से भर गया। वह कौन था जो चरणों की धूल ले रहा था, योग बल से पहचाना तो यह स्वर्ग का आकांक्षी त्रिशंकु था जो वहुत दुःखी था, क्योंकि वशिष्ठ ने कहा था कि सशरीर स्वर्ग की यात्रा मनुष्य के लिए असम्भव है। वह वशिष्ठ के पुत्र से भी मिला लेकिन सफलता न मिली तथा शाप के कारण चाण्डाल वन गया। त्रिशंकु को अपने अन्तःपुर में कोई नही पहचान पाया है। भगवान में उसका विश्वास नहीं रहा भूख की अग्नि से उसका सम्पूर्ण ज्ञान जल गया। हे! मुनि स्वर्ग की आकांक्षा अभी भी है अव आप ही मुझे शरण दे सकतें हैं। त्रिशंकु की विनती से विश्वामित्र का हृदय द्रवित हो गया, विश्वामित्र ने उसके लिए यज्ञ किया।

जिसके फलस्वरूप अग्नि रेखा स्वर्ग तक खिच गयी जो कि स्वप्न के समान थी। एकाग्रता से वैज्ञानिक विजय प्राप्त हुयी, लेकिन देवताओं ने विकास की उस किरण को वीच में ही रोक दिया।

त्रिशंकु को इन्द्र ने स्वीकार नहीं किया तव मैंने कहा कि सावधान इन्द्र! मैं स्वर्ग पर अग्नि अस्त्र फेंक दूँगा तुन्हे योग की साधना का ज्ञान नहीं, विश्वामित्र स्वयं सूक्ष्म शरीर से इन्द्र लोक पहुँच गये। देवताओं ने कहा कि विधि के काम में बाधा मत डालिये त्रिशंकु का जन्म पुनः होगा तथा चारों तरफ खुशियाँ होगी। त्रिशंकु को स्वर्ग भेजना मन की तो सिद्धि थी विश्वामित्र की यही कामना है कि मानव के हित के लिये सह साधना करें। मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति हो। उपेक्षित लोगो का कल्याण हो, ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति सभी को हो। यक्ष, किन्नर, गरूड, नाग, असुर, सभी ने महासंघर्ष किया था वे भी कभी मनुष्य थे। आज मनुष्य ही मनुष्य की प्रगति में बाधक है युगों से मैं उसके पक्ष में आवाज दे रहा हूँ। अव तो सत्य की क्रान्ति होनी चाहिये। मनुष्य को महाविनाश से स्वयं निकलना है। दुर्भाग्य से स्वयं को लड़ना पड़ेगा। जो विष को पचा ले शिव उसी का नाम है। सत्य की खोज करना ही सबसे बड़ी साधना है। हम सभी मनुष्य एक थे एक हैं इस सत्य को हमें पहचानना चाहिये, वरना मानव की कथा कलंकित ही रहेगी और विषमता का अन्त नहीं होगा। मैं रहूँ या न रहूँ प्रगति अपनी गति से चलती रहे, सभी तरफ खुशियाँ फैलाती रहे। सत्य की स्थापना हो। मानव अभय हो जाये समता की विजय हो, हृदय प्रसन्नता से युक्त हो मैं रहूँ या न रहूँ लेकिन इतिहास में हमेशा रहूँगा मैं। सवका कल्याण हो।

नवम सर्ग

इस सर्ग में मेनका की अद्‌भुत सुन्दरता तथा पृथ्वी में आने से लेकर कन्या रूपी रत्न को जन्म देने तक की कथावस्तु का वर्णन किया गया हैं।

मन रूपी रथ पर सवार होकर मेनका देवलोक से मानवलोक में आती है मेनका पृथ्वी के सुख-दुःख देखकर हिमालय की ओर जाती है, जहाँ उर्वशी ने अपना प्रकाश फैलाया था उसी समय किसी अदृश्य शक्ति ने मेनका से अनेक मन की बाते पूँछी। क्षण भर के पश्चात् उस अदृश्य शक्ति ने अपना परिचय दिया कि मैं मर कर भी अमर हूँ,

मैं विश्वामित्र की पत्नी रोहिणी हूँ। वह मेनका को चेतावनी देती है कि कौशिक की तपस्या भंग करने की कोशिश नहीं करना, अन्यथा मैं तुम्हे भस्म कर दूँगी। मैंने ही रम्भा को यहाँ से जाने के लिये वाध्य किया था। रोहिणी मेनका को अपने अतीत की व्यथा वताती है। लेकिन अभी तक मेरा अन्तिम संस्कार भी नहीं हुआ, अभी मेरे अस्थि पुंजर दुर्घटना स्थल पर पड़े हुऐ हैं। पति की तपस्या तो पूरी हो गयी लेकिन मेरी पूजा अभी भी अधूरी है। अकाल मृत्यु के कारण मैं इधर-उधर भटकती रहती हूँ । लेकिन मैं जानती हूँ कि मेनका इस पृथ्वी से खाली नहीं जायेगी, सम्भव है कि मेरी अभिलाषा भी तुम्ही से पूरी हो जाये रोहिणी चली गयी, मेनका पृथ्वी की नारी की महिमा को भी जान गयी।

मेनका सोचने लगी कि सुरपुर में शेष सब कुछ है, लेकिन त्याग और प्यार सिर्फ भूलोक मे ही है। भूलोक की नारियाँ सच प्रेम की मूर्ति होती हैं जो पति के चरणों में हमेशा पड़ी रहती है, उनका जीवन अनुकरणीय है । कुछ समय पश्चात् इन्द्र की प्रेरणा से उर्वशी पुरूपभेष में मेनका की परीक्षा लेने आती है और विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देकर प्रणय निवेदन की प्रार्थना करती है, विश्वामित्र की जर्जरवस्था तथा अपनी युवा अवस्था की तुलना करती है, लेकिन मेनका उसे पहचान लेती है कि वह पुरूष भेष में नारी है तभी उर्वशी प्रकट होती है और दोनो का मिलन होता है, मेनका सम्पूर्ण श्रंगार करके विश्वामित्र के पास पहुँची विश्वामित्र का जर्जरशरीर देखकर कुछ फूल मेनका विश्वामित्र के मन में फेकती है, लेकिन फूलों की पराजय से मेनका स्तब्ध रह गयी। तब मेनका आत्म मन्दिर में प्रवेश कर गयी। कुछ क्षण के पश्चात् विश्वामित्र का मन चंचल हुआ, नेत्र खोलकर देखा तो वहाँ कोई नहीं था। विश्वामित्र सोचने लगे कि यह कामाग्नि किसने जलायी तथा अपनी तपस्या के प्रति घृणा की भावना जन्मी। धीर-धीरे विश्वामित्र में यौवन का आगमन हो गया। चारों तरफ मौसम में कायाकल्प हो गया। कुछ समय व्यतीत हो गया लेकिन मेनका अभी लक्ष्य तक नहीं पहुँची और व्रम्हर्षि अध
र्नारीश्वर वना रहा। मेनका स्वयं रेगिस्तान की तरह तप रही थी। विश्वामित्र और मेनका का मिलन हो गया क्योंकि विधि का विधान यही था। जवकि इन्द्र यह नहीं चाहता था।

मेनका तपस्या भंग करने के पश्चात् शीघ्र ही सुरपुर न जा सकी और मेनका विश्वामित्र के प्रथम मिलन को भूल नहीं पाई मेनका स्वर्ग लोक को कुछ समय के लिए भूलकर यहीं की प्रेम भावना में रंग गयी। विश्वामित्र का मेनका के प्रति आकर्षण था,

कि वह सम्पूर्ण तपस्या भूलकर कामी पुरुष बन गये। मेनका को कुछ दिन पश्चात् गर्भधारण की अनुभूति हुई। गर्भधारण करने के कारण देवताओं की नीति सफल न हो सकी, क्योंकि मैं आत्म विकल होकर कैसे जाऊँगी इन्द्र जहाँ स्वयं मेरी पूजा करते थे, लेकिन ऋषि के समक्ष मैं हार गयी।

विश्वामित्र को कुछ समय पश्चात् अपने स्वरूप का ज्ञान हुआ, वह वहुत पछतायें उन्हे अपनी तपस्या की निष्फलता से बहुत कष्ट हुआ। अतः हे गायत्री मुझे क्षमा करो। जब मेनका और विश्वामित्र का मायिक आवरण से हट कर परिचय हुआ तब दोनो बहुत शर्मिन्दा हुए। विश्वामित्र ने आत्मा की शक्ति से मेनका को पहचान लिया तब उन्हे ज्ञात हुआ कि सम्वन्ध तो पुराना है। शुक्र शाप के कारण ऐसा हुआ। मुझे इन्द्र से यह आशा न थी, यह इन्द्र की सफलता है या विधि का विधान। हे! ज्योर्तिमय अव तुम मेनका रूप त्याग कर दो तथा मेरे प्राणों में प्रकाश पुनः भर दो, मैं नतमस्तक हूँ। वशिष्ठ की सात्विकता अनुकरणीय है। धीरे-धीरे ऋषि तपस्या में लीन हो गये। कुछ दिन बाद मेनका आँचल में पुत्री लेकर आयी मुनि ने कहाँ मुझे याद नहीं कि यह अपराध कब हो गया मैं इसे लेने में असमर्थ हूँ मुझे कलंकित मत करो।

दशम सर्ग

इस सर्ग में शकुन्तला का कण्व मुनि के आश्रम में पालन पोषण का वर्णन किया गया है, तथा विश्वामित्र का आगमन और शकुन्तला को देखकर आश्चर्य चकित होना तथा उसे आशिर्वाद प्रदान करना। तत्पश्चात् कण्व मुनि की अनुपस्थित में दुष्यन्त का आश्रम में आगमन तथा शकुन्तला द्वारा स्वागत एवं उभय पक्ष द्वारा प्रणय होना और दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला को अगूँठी पहनाना तथा एक निश्चित समय सीमा के बाद वापस आकर शकुन्तला से शादी करनें का वादा करना, लेकिन दुष्यन्त द्वारा वापस न आ पाना और शकुन्तला के चिन्तित होने का वर्णन किया गया है।

इस सर्ग में लोपामुद्रा की अतीत की यादों का तथा व्यक्ति हित की अपेक्षा समाज

हित को प्रधानता दी गयी है, लोपामुद्रा ने कर्म पथ पर कठोर वनने का कारण वताया गया है। शारीरिक पापों को साधना के द्वारा ही शान्त किया जा सकता है, आत्मा की अनुभूति अमृत के समान होती है। सरसता नारी की सिद्धि है, बलवुद्धि पुरूष की विशेषता है। लोपामुद्रा स्वयं साधना से अव मन्त्रों की सृष्टि कर रही है किन्तु लोपामुद्रा अपना अतीत नही भूल पाती। इस संसार में त्याग और निष्काम भाव से किए गये कर्म की ही महत्ता है। संसार में दुख-सुख दोनों के विना मनुष्य का जीवन निरर्थक है। मनुष्यों के वीच विषमता समाप्त हो जाए यही विश्वामित्र का ध्येय है। लोपामुद्रा का जीवन भी मानव कल्याण के लिए समर्पित है। लेकिन कौशिक के प्रति किये गये अपने प्रेम को नहीं भुला पाती। नारी जाति का हृदय अत्यन्त उदार होता है।

लोपामुद्रा स्वयं से प्रश्न पूँछती है कि मैं कौन हूँ, मेरा परम प्रकाश कहाँ है, भूमि पर अभी कितने दिन निवास करना है मेरा संकल्प अभी तक पूर्ण क्यों नहीं हुआ? क्या मुझ पर भी काल का प्रभाव है? लोपमुद्रा स्वयं से प्रश्न करती है कि तुम पुनः नौयवन क्यों वनी मानव धर्म क्यों नहीं निभाती। मानव शरीर धारण करने के पश्चात मनुष्य स्वर्ग की तरह स्वतन्त्र नहीं होता। अच्छे कर्मो के द्वारा मनुष्य महान वनता है, संसार की किन्ही भी चेतन अचेतन दो वस्तुओं में समानता नहीं होती, संसार के सभी मनुष्य एक परिवार के समान है। लोपमुद्रा विरह से ग्रसित है, क्योंकि मनुष्य तो कामभावना को भूल जाता है, किन्तु नारी उसके पश्चात तृप्ति को नहीं भूल पाती। पौढ़ ज्ञान भी आत्म पीड़ा के विना अधूरा है, विरह से ग्रसित होने के पश्चात लोपामुद्रा आशा करती है कि दुःख के पश्चात सुख की प्राप्ति होती है मानवता के स्वप्न वहुत व्यापक हैं जैसे सूर्य की किरणें। वह महा तपस्वी विश्वामित्र धन्य है जिसने अन्धकार का नाश किया आकाश में पहुँचने की इच्छा सभी की होती है, लेकिन वहाँ पहुँचना वहुत ही दुष्कर है। मेनका और विश्वामित्र के सम्वन्ध ों की जानकारी लोपामुद्रा को स्वप्न में हुई थी। उनका अपराध सृष्टि निर्माण के लिए क्षम्य है। संसार में चेतना का नया जन्म प्रतिपल होता है।

द्वादश सर्ग

शकुन्तला दुष्यन्त की अनवरत प्रतीक्षा करने के पश्चात स्वयं राजभवन में पहुँच गई, लेकिन वशिष्ठ के मन में विभिन्न प्रकार के प्रश्न उत्पन्न होने लगे, कि यह कण्व ऋषि

की पुत्री नहीं है। वशिष्ठ ने दुष्यन्त को शकुन्तला को अपनाने से रोका और वह दुःखी हो गये, दुष्यन्त चुप चाप खड़े रहे और शकुन्तला सिसकती रही। दुष्यन्त के हृदय में विचारों की क्रान्ति मची थी तभी उन्हे विशमित्र की याद आयी जिन्हार्ने दुष्यन्त को आखेट की प्रेरणा दी थी। विश्वामित्र ने सभा में कहा कि-शकुन्तला मेरी पुत्री है यह स्वर्ग और पृथ्वी के मिलन से उत्पन्न हुई है कण्व आश्रम में देखकर ही मुझे पितृ कर्तव्य याद आया इसलिए मैंने शिकार खेलने का आग्रह किया था। अतः हे!राजन तुम शकुन्तला को सहर्ष स्वीकार करो।

दुष्यन्त हर्षित हो गये और शकुन्तला को अपना लिया। कुछ समय पश्चात शकुन्तला पुत्रवती हुई राजमहल में खुशियाँ छा गयी। शकुन्तला अपने भरत के लिए विभिन्न प्रकार के सपने देखने लगी। और मन ही मन प्रसन्न होने लगती है। भरत को थोड़ा कष्ट होता तो व्यथित हो जाती। भरत शास्त्र और शस्त्र दोनों विद्या में परागंत हो गया। भरत को मातृभूमि के प्रति बहुत लगाव था, भरत को काल की आकाशवाणी ज्ञात थी। कष्ट के समय कठिन कर्म ही मनुष्य का धर्म है। भरत का संकल्प था कि जब तक पृथ्वी को अकाल से मुक्ति नहीं मिलती तब तक पृथ्वी की सेवा करता रहूँगा। भरत अपनी माँ से आशीर्वाद लेकर कृषक वेश में अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनें के लिए निकल पड़ा।

दो ऋतुएँ बीत चुकी थी ठण्डी का आगमन हो गया, लेकिन भरत का मातृभूमि के प्रति स्नेह कम नहीं हुआ वह पूरे उत्साह के साथ जनता की सेवा करते थे, चारों तरफ जनता भरत के कार्यो की प्रशंसा करती थी एकदिन धर्म और कर्म के विषय में मतभेद हो गया अन्त में जीत कर्म की हुई लेकिन भरत धर्म के विरोधी नहीं हैं।

भरत के कार्यो से चारों तरफ खुशहाली छा गई अकाल मुक्ति मिल गई केवल दक्षिण भाग ही शेष रह गया था पानी की समस्या से राजमहल से एक दूत भरत को वापस बुलानें आता हैं, लेकिन भरत कहतें हैं कि जब तक कार्य पूरा नहीं होगा तब तक वह वापस नहीं आयेगें।

त्रयोदश सर्ग

भरत राजा वन गये हैं लेकिन अभी मानवता का और विश्वामित्र का मंत्र अभी तक पूर्ण नहीं हुआ परन्तु मन लक्ष्य पूर्ति के प्रति लालायित है। शकुन्तला पति का घर

छोड़कर कण्व ऋषि के आश्रम में आ गई। भरत ने कौशिक जी को वचन दिया कि कुछ समय आप प्रतीक्षा करें फिर मेरे शासन में परिवर्तन देखिये। चारों तरफ काव्य, कला, दर्शन, आकाश, धरती सभी में शुभ परिवर्तन की लहर सी आ गयी। वशिष्ठ की आस्था भाग्य पर है उन्हे मानव की मजबूत भुजाओं में विश्वास नहीं है।

वशिष्ठ की आज्ञा से भरत विश्वामित्र के पास ज्ञान अर्जन करनें के लिए गये। विश्वामित्र शकुन्तला से पूछँते हैं कि तुम भावुक होकर दुष्यन्त के यहाँ से क्यों चली आई, सदियों से ही मानव-मानव को छल रहा है। तुमको तो वशिष्ठ ने भी प्रणाम किया है लेकिन मैं तो अभी उनकी ईर्ष्या का पात्र हूँ।

जब विश्वामित्र की यादों की समाधि भंग हुई तो उन्होने भरत से पूँछा कि क्या तुम जनता के कष्टों को दूर कर सकोगे। तो हे! भरत तुम राजा के पद को सफल करो। तथा उनके साथ पुत्रवत व्यवहार करों, तभी तुम्हारा गणतन्त्र सफल होगा। जिस शासन में ज्ञानी का, प्रतिभा का, विज्ञान का सम्मान नहीं होता वह शासन पतनोन्गामी होता है। मनुष्य को कल्पना शील होना चाहिए, अन्यथा उसका मन विकसित नही हो सकता।

विश्वामित्र ने भरत को राजनीतिक विषयों की जानकारी दी, अध्यात्म साधना सबसे उत्तम साधना होती है। मानव उत्थान का मंत्र तभी सफल होगा जब कष्ट नष्ट हो। अतः हे! भरत तुम मानव मात्र की हो सेवा करो। अत्यधिक सुख से मनुष्य की शक्तियाँ मलिन होती हैं जबकि दुःख मनुष्य को माँजता है। ज़िस दिन मेरे विचार पूर्ण सभ्य हो जायेंगे, सरस्वती उस दिन गणतन्त्र की वीणा बजायेगी भरत का संकल्प तो सवल था। किन्तु हृदय अधीर हो रहा था, भरत जागों तुम्हे इस धरती पर बहुत से काम करने हैं दुविधा ठीक नहीं। तुम्हे वशिष्ठ ने यहाँ क्यों भेजा नहीं जान सके, न तुम मुझे अन्तर्दृग से पहचान सके। तुम अपना दायित्व निर्वाह करों।

तुम मे परिवर्तन करनें की शक्ति है, तुम मानव का नेतृत्व करो। मनुष्य को सिर्फ शब्दों का लोभी नहीं कर्मो का लोभी भी होना चाहिये। अतः भरत तुम अव जाओं पिताजी की देखभाल करों।

विश्वामित्र ने क्रिया द्वारा यह जान लिया कि शकुन्तला क्यों पति का घर छोड़कर पिता के घर चली गई शकुन्तला गणमन्त्र की प्रबल समर्थक थी लेकिन वशिष्ठ के संकोच के कारण वह कुछ न कह सकी। लेकिन भावावेश की अधिकता के कारण पति का घर

छोड़ देती है। क्योंकि वह अपने माता पिता का अपमान बर्दाशत नहीं कर पाती। माता पिता की प्रतिज्ञा सुन भरत गणमन्त्र ग्रहण करनें के लिए तैयार हो गये। लेकिन वशिष्ठ और दुष्यन्त क्रोधित हो गयें।

चतुर्दश सर्ग

इस सर्ग में दुष्यन्त का अपने कर्मो के प्रति पश्चाताप का वर्णन किया गया है, जो रूग्णावस्था मे असहाय हो चुके हैं, दुष्यन्त की शासनकाल अवधि गौरवपूर्ण नहीं थी। दुष्यन्त को शकुन्तला द्वारा छोड़कर चले जाने का भी बहुत दुःख है। दुष्यन्त शकुन्तला से माँफी माँगते है। दुष्यन्त का चंचल मस्तिष्क चिन्ताओं के कारण अत्यधिक डरा हुआ है। सत्य सिद्धान्तो का पालन करना तपस्या के समान है। सूर्य के समान जो शासन कर सकें वही सफल हो सकता है। अहंकार के कारण मनुष्य का पुण्य नष्ट होता है।

दुष्यन्त यह आदेश देकर भी मौन था, क्योंकि मैने भी कभी भरत का तिरस्कार किया था, इसलिए आत्मकुंठित था। लेकिन फिर भी शिक्षा दे रहा हूँ जो मेरा अधिकार नहीं है। मैनें अपने अहंकार के कारण अपनी ज्योति बुझा ली। मेरी स्थित मणि से वियुक्त सर्प जैसी है। मै। पूर्वजों के तप को बरकरार नहीं रख सका।

स्वप्न टूटने पर मैंनें अपने आप को शैय्या में पाया वहाँ अब मुझे कोई सहारा देने के लिए नहीं था। भवन भी जेल की तरह प्रतीत हो रहा था। हृदय में जो कालिमा लग गई है। उसे कैसे धोऊँ? यह तो गंगा के द्वारा भी संम्भव नहीं है। दुष्यन्त स्वयं को सम्पूर्ण बुरे विशेषणों से विभूषित बतातें हैं। विश्वामित्र मन्त्र की हत्या मैंने पहले की थी अब उसे कैसे छिपाऊँ? इस भूमि पर अपनी व्यथा मैं किसे सुनाऊँ। विश्वामित्र से क्षमा माँगते हैं। कि पुनः ज्योति पुरूष की तरह जन्म लूँ। मेरी विरह की पीड़ा तथा स्वप्न की पीड़ा का हरण कर लो। लेकिन वह आत्म निवेदन वापस लौट आया।

वह अचानक श्वेत केशी दैव्य कहाँ छिप गया जो मेरे मन के अन्दर चुपचाप प्रवेश कर गया था। उसे समझाता कि अब शान्त हो जाओं और समस्त शैतानी वन्द कर दो।

दुष्यन्त स्वयं को घृणित दृष्टि से देखते हैं कि उस समय मेरा ज्ञान कहाँ गया था जब मैं राजा बना था और चाटुकारों से घिरा हुआ था। और अनगिनत गल्तियाँ की थी जब तक मनुष्य सरलता को नही अपनायेगा, ईर्ष्या, द्वेष अहंकार, का त्याग नहीं करेगा

तब तक शान्ति सम्भव नहीं है। मेरा पालन पोषण राज्य के वातावरण में हुआ था इसलिए ऋषि की समदर्शी दृष्टि से अनभिज्ञ था। समय की मार से कोई नहीं बच सकता मैं भी नहीं बच सका और जो न होना चाहिए वह हुआ। किसी का घर उजाड़ने का दण्ड समान नहीं होता, वही भोग रहा हूँ।

मैं भरत से कहूँगा कि तुम भारत वर्ष को दैहिक और आत्मिक शक्ति प्रदान करो, विश्व को एक सन्तुलित दृष्टि दो। किसी प्रकार की कोई अति न हो पाये। भविष्य ऐसा हो की सभी प्रकार से मानव जीवन सम्पन्न हो। क्योंकि राजा का पद स्थाई नहीं होता भविष्य सभी को एकदिन भतूकाल वना देता है। मानव धर्म अत्यन्त कठिन है और भूतल की तरह कहीं भी समस्या नहीं है। प्रकृति से खिलवाड़ मत करो उसकी भी एक सीमा है। महाभारत का युद्ध किसको सुख प्रदान कर गया? जीतने वाले को या हारने वाले को? किसी को भी नहीं पृथ्वी अकुला उठी। जब विषमता समानता में बदल जायेगी तव सत्य का शासन होगा तभी बन्धुओं में युद्ध रुकेगा। दुष्यन्त ने जो राजनीतिक स्वप्न देखा था, कहीं वह भावी सत्य तो नहीं है। तन की तृप्ति से कठिन है मन की तृप्ति।

दुष्यन्त को अनुभव होने लगा कि क्या मेरी बीमारी घटती जा रही है? मैं पुरानी व्यथायें भूलता जा रहा हूँ। मन में परम शान्ति की अनुभूति होती है, शक्ति की अधिकता से ही राजा दानवी कार्य करता है और अन्धा हो जाता है। द्रौपदी का चीर हरण अन्धे के दरबार में हुआ था, लेकिन वहाँ तो ज्ञानी लोग भी उपस्थित थे। आख़िर उनके खून में हीनता कहाँ से आ गई। धर्म के शिक्षक चीर हरण के समय क्यों नहीं वोले। राज्य के लोभी सिर्फ मृगयों का शिकार नहीं करते ज्ञानियों का भी करते हैं। ज्ञानी भी तो दास होता है सर्पिल दानियों का। आज का मानव दैव्य का अनुगमन कर रहा है। न्याय और अन्याय का स्वर चारों तरफ सुनाई पड़ रहा है। सुखद बात यह है कि जनता अब संगठित होकर बोलती है। मनुष्य शरीर का कम मन का अधिक रोगी है। मैं न तो विश्वामित्र हूँ और न ही वशिष्ठ हूँ, न ही अगस्त्य जिन्हाने अपने कर्मो और मन्त्रों से अद्भुत कार्य किये हैं। मैं व्याकुल दुष्यन्त हूँ जिसकी आशाओं का कोई अन्त नहीं है। ऐसा कोई पन्थ नहीं जो मनुजता निर्माण करे। अशुभ संस्कारों का फल शुभ कहाँ से होगा? हिंसा के द्वारा कोई सभ्यता का निर्माण सम्भव नहीं है। भारत को समन्वित करों दैहिक और आत्मिक शक्तियों से विश्व में एक सन्तुलित जीवन दृष्टि का विकास होगा।

अति सर्वत्र वर्जयते।

पंचदश सर्ग

इस पृथ्वी लोक में चारों ओर खुशिओं की लहरें उठ रहीं थी, हे शारदे! मैं तुम्हे प्रणाम करता हूँ। तुम्हारी सुन्दरता से कोई कोना अछूता नहीं है। जिस प्रकार शरीर में प्राणों का महत्व है उसी प्रकार सृष्टि में तुम्हारा महत्व है। मैं वही विश्वामित्र हूँ जिसका अहंकार तो नष्ट हो गया लेकिन क्षम नहीं नष्ट हो पाया। मैं किस कारण से वशिष्ठ से जीत नहीं सका। इस भू पर मुझसे अधिक त्यागी कौन है। अतः हे! आकाश क्षमा करना मैं तारा नहीं वनना चाहता हूँ। मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ और पृथ्वी में ही मिल जाने की इच्छा रखता हूँ। मैं कभी भी अमर होने का वरदान नहीं माँगूगा। करोड़ों वर्षो तक मानव से रहित थी यह पृथ्वी जिसके कारण इसका सौन्दर्य अधूरा था। किसे पता है कि प्रकृति की सुप्त चेतना कव जागी है। कल्पना के द्वारा मैंने यह सब परिवर्तन देखे। हिमालय की चोटी पर जब प्रथम पुरुष आया होगा तव वह हिमालय कितना प्रसन्न हुआ होगा। मैं वह मनुष्य हूँ जिसके मन में पृथ्वी की समस्या बसी हुई है, मैं क्रान्ति का प्रणेता तथा कर्मो का विश्वासी हूँ तथा विश्व कल्याण की इच्छा का जन्मजात समर्थक हूँ। मेरी महाभारती अपनी धरती पर रहती है।

विश्वामित्र को विश्वास है कि एक दिन मेरा सपना (लोकमंगल) सत्य होगा। मानव की करूणा व्यर्थ नहीं जाती। विश्वामित्र स्वप्न में अपने अन्तिम जीवन की झाँकी देख रहे हैं। स्वप्न में अचानक वशिष्ठ से मिलन होता है तथा भौतिक ईर्ष्या के बन्धन टूट गये। किन्तु इसी समय अगस्त्य ऋषि की आवाज से विश्वामित्र का स्वप्न भंग हुआ तो आकाश में ध्रुवतारा दिखाई दिया। विश्वामित्र को स्मरण आया कि अभी पृथ्वी यज्ञ अपूर्ण है। सिर्फ स्वयं का कल्यांण चाहने वाले ही आत्म पलायन करते हैं। वसिष्ठ के प्रति इस प्रकार का स्वप्न कैसे आया, कहीं जरा अवस्था के कारण भक्ति भाव का उदय तो नहीं था, या कि तपस्या का चरमोत्कर्ष पर होना था। कोई भी काम आरम्भ करने से पहले संकल्प जरूरी है। जीवन में दूसरों का कल्याण करने से अधिक श्रेष्ठ कार्य कोई नहीं। मानव की समस्याओं का अन्त मानव के ही महान न्याय से सम्भव है तथा दलितों का उत्थान स्नेहिल उपायों से होगा। विश्वामित्र की यही इच्छा है कि व्यक्ति सिद्ध की पवित्र सुगन्ध जनता को अर्पित हो। महाभारती का मंत्र सम्पूर्ण विश्व के स्वांसों में झंकृत हो।

एक किरण के द्वारा ही अब तक इतना विकास हुआ है। संस्कारों के बिना कोई वास्तविक मनुष्य नहीं वन सकता। जनता के मन में ईश्वरीय शक्ति का विश्वास है। मन के विज्ञान द्वारा ही मन में नवपरिवर्तन होता है।

विश्वामित्र अपने कार्य के लिए पश्चाताप करते हैं कि मैं इस पृथ्वी को कैसे भूल रहा था, मुझे आकाश ही क्यों सर्वश्रेष्ठ दिखायी दे रहा था। मैं विश्वकल्याण का मंत्र फैलाना चाहता हूँ तथा मेरे विचार इस धरती पर मेरे बाद भी विद्यमान रहे।

चारो तरफ दिन में अन्धकार फैल गया तथा पशु, पक्षी व्याकुल हो गये लेकिन नारी के कंठ से अब भी गीत सुनायी पड रहा था, विश्वामित्र उन्हीं गीतों की ध्वनि की ओर ही चल दिये। रास्ते में अनेंक व्यवधान आये। विश्वामित्र को ऋषि ऋचीक के आश्रम का स्मरण हो आया। हे सरिते! वह नारी का स्वर मैं पुनः सुनना चाहता हूँ, उसे प्रेरणा प्रदान करो। गीति स्वरों को सुनने के लिए विश्वामित्र का मन व्याकुल हो रहा था तथा पुराने स्वरों को याद कर रहा था। ऋषि अगस्त्य के आश्रम में हवन का धुआँ उठ रहा था, हवन वेदी पर ऋषि अगस्त्य और लोपामुद्रा विराजमान थे। यज्ञ के समय में जनता के मन में विस्मय और करूणा का भाव था। अगस्त्य ने शान्त अग्नि कहकर पानी की वर्षा करवायी। जनता के चेहरों में मुस्कान फैल गयी। विश्वामित्र अकेले खड़े उस आत्मप्रज्ज़्वलित झाँकी को देख रहे थे। हिमालय और सागर शान्त भाव से देख रहे थे। एक अकेला हंस (विश्वामित्र) अर्न्तनयनों के द्वारा उड़ रहा था।

उपरोक्त कथा का विश्लेषण करने से हमें यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि भारतवर्ष के अति प्राचीन काल में ऐसे ऋषियों का प्रादुर्भाव हुआ था, जिनके जीवन का महत उद्देश्य भारतीय सांस्कृतिक एकता स्थापित करना था। अतः कवि ने महाभारती शब्द का प्रतीकात्मक प्रयोग कर उसी को केन्द्र बनाकर पौराणिक पत्रों की विकसित कथाओं का सगुम्फन किया है।

कवि ने इस विषय में स्वयं लिखा है कि यह क्या एक ओर तो प्रख्यात कथा है। यह तत्र अपनी कल्पना का उपयोग कर इसे उत्पाद्य रूप प्रस्तुत किया है। कवि ने लिखा है – "अतीत कालीन सरस शब्द सिद्धि के आधार पर मन की कल्पना कलित पुराण पदमुनि शक्ति (मेनका) के सारस्वत शुद्धिकरण से भारतीय साहित्य में एक नवीन

अध्याय जोड़ने का काव्यात्मक प्रयास किया गया है।(1)

यहाँ हम उक्त कथाओं के श्रोतों की संक्षिप्त रूप से चर्चा करेगें- प्रमुख पात्रों के सन्दर्भ में विविध पुराणों में विखरे पड़े हैं। यहाँ संक्षेप में उनका उल्लेख किया जा रहा है -

कथा के स्रोत

अगस्त्य :-

ये एक बड़े प्रभावशाली ऋषि थे और इनके पिता का नाम मित्रवरूण था। ऋग्वेद के अनुसार उर्वशी अप्सरा को देख मित्रवरूण काम पीड़ित हो गये जिसके वीर्यपात हुआ। अगस्त्य का जन्म इसी से हुआ था। श्री सायणाचार्य के भाष्य के अनुसार अगस्त्य की उत्पत्ति एक घड़े से हुई थी इसी से इन्हें मैत्रिवरूणि औवशेय, कुम्भसम्भव, घटोद्भव, कुम्भज आदि नामों से पुकारते हैं। पुराणानुसार इन्होंने एक बार वढ़ते हुए विध्यांचल को लिटा दिया था, जिससे इन्हें विध्यंतुक भी कहते हैं। तारक तथा दूसरे असुरों द्वारा पीड़ित संसार का कष्ट देखकर एक बार यह समुद्र को चुल्लू में भरकर पी गये थे। जिससे इनका नाम 'समुद्र चुलुक' और पीताब्धि में पड़ गया। पुराणों में कही-कहीं इन्हें पुलस्त्य का पुत्र भी कहा गया है। यह वहुत प्रसिद्ध गोत्रकार ऋषि हो गये हैं। जिनकी ऋग्वेद में कई ऋचाएँ मिलती हैं।(2)

उर्वशी -

स्वर्ग की एक विख्यात अप्सरा जिसका जन्म नारायण के उरू से हुआ था। (प्रेमवार्ता की सफलता के लिए इनकी पूजा होती है।) (3) हरिवंश के अनुसार व्रम्हा के शाप से उर्वशी ने मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण किया था। बदारिकाश्रम में पुष्प चुन रही उर्वशी के मनोहर रूप को देखकर मित्र और वरूण का धैर्य जाता रहा। उनके स्खलित वीर्य से अगस्त्य और वसिष्ठ उत्पन्न हुए थे।(4) सत्यधृति के पुत्र शरद्वान का वीर्य

---

(1) महाभारती, दृष्टि पृ0 11
(2) दे0 अगस्त्य, पृ0 3 ← पुराण-कोश
(3) ब्रह्मा 3,6,16
(4) हरिवंश पुराण, भाग 6,18,6,9,13,6 मत्स्य पुराण 20,25,29
विष्णु पुराण 4,5.1.1,12

लावण्यमयी उर्वशी के दर्शन से शरस्तम्व में गिरा। उससे कृप और कृपी का जन्म हुआ।(1) भरत के शाप से यह 55 वर्षो तक अदृश्य लता के रूप में रहीं और पुरुखा इस अवधि में पिशाचयोनि में थे।(2)

यह तीन शर्तो पर -

(1) उसके भेड़ सुरक्षित रहें।

(2) पुरूखा को वह संगम के सिवा नग्न देखें एवं

(3) धृत ही उसका आहार हो। पुरूखा की पत्नी बनकर मृत्युलोक में रहने लगी। इसके गर्भ से पुरूखा के 6 (अगस्त्य के अनुसार 8) पुत्र हुए थे।(3) कुछ वर्षो के उपरान्त गन्धर्वो की चालाकी से एक दिन पश्चात् उर्वशी ने पुरूखा को नग्न देख लिया था, और वह शापमुक्त हो स्वर्ग चली गयीं।(4) एक बार काम पीड़ित उर्वशी ने अर्जुन द्वारा उपेक्षित हो उसको शाप दे दिया था, जिसके कारण उन्हें विराटराज के यहाँ क्लीव रूप में रहना पड़ा था।(5)

यह मार्गशीष मास में सूर्य के रथ में गण के अन्यान्य संगियों के साथ रहती है।(6) यह पूर्व जन्म में एक आभीर कन्या थी जो भीमद्वादसी व्रत करने के कारण उर्वशी हो गयी थी।(7)

दुर्वासा :-

एक मुनि जो अनुसूया के गर्भ से उत्पन्न अत्रि ऋषि के पुत्र थे। यह दत्तात्रेय के छोटे भाई(8) तथा शिव के अंश से उत्पन्न हुए थे।(9) जिसका धर्म में दृढ़ निश्चय

---

(1) भागवत 9,21,35।
(2) मत्स्य पुराण 24,12,33।
(3) भागवत 9,14,16,42
(4) भागवत 9,14,31, ब्रह्म 4,33,18
(5) महाभारत आदि0 74, 68, 75। वन0 43,29,46,16,22,35
मत्स्य पु016,174
(6) भाग0 12,11,41। वायु0पु0 52,18
(7) मत्स्य. 6,9,59
(8) भाग0 6,9,59, वायु0 70,76
(9) भाग0 4,1,33

हो, उसे दुर्वासा कहते हैं। मुनि की पुत्री कंदली से इनका विवाह हुआ था और उस समय के प्रतिज्ञानुसार इन्होंने पत्नी के 100 अपराध करने के पश्चात् इन्होंने पत्नी को जलाकर भस्म कर दिया था। अम्बरीष के मामलों में और्व के शाप के कारण इनका दर्पचूर्ण हुआ और इन्हें अपमानित होना पड़ा था।(1) महाभारत तथा पुराणों में इनकी अनेक कथाएँ दी हुई हैं। इनका नाम किसी वैदिक ग्रन्थ में नहीं मिलता है। ये ब्रह्मवादिनी अबला के भाई थे।(2)

दुष्यन्त :-

विष्णु पुराणानुसार रैम्य और उपदानवी के पुत्र का नाम। महाभारत के अनुसार एक दिन शिकार खेलते-खेलते कण्व ऋषि के आश्रम पर जा पहुँचे। जहाँ मेनका अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला से इनकी भेंट हुई और उससे वहीं गान्धर्व विवाह भी हो गया।(3) इससे उत्पन्न भरत दुष्यन्त का औरस पुत्र था जो वड़ा प्रतापी राजा हुआ। पहले तो दुष्यन्त ने शकुन्तला और भरत को लोकलाज के भय से पत्नी और पुत्र के रूप में ग्रहण करना अस्वीकार किया, परन्तु आकाशवाणी होने पर उन्हें ग्रहण किया। इन्हीं के पुत्र भरत के नाम पर इनके वंशज भारत कहलाये। इस देश का नाम भारतवर्ष ऋषभदेव-पुत्र भरत के नाम से (तेषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत येनेद वर्ष भारतेमिति व्ययादिशन्ति) रखा गया।(4) इसी कथा के आधार पर कवि कालिदास ने *'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'* लिखा था।(5)

पुरूरवा :-

हरवंश तथा अन्य पुराणों के अनुसार देवगुरू बृहस्पति की पत्नी तारा और चन्द्रमा के संयोग से वुध उत्पन्न हुए जो चन्द्रवंश के आदि पुरूष थे। बुध का इला के साथ विवाह

---

(1) भाग0 9,4,35-71 और 9,5,1-22
(2) वायु0 70-76
(3) दे0कण्व
(4) भाग0 1,12,20,9,20,7,22(1-2) मत्स्य पु0 49,10-11
(5) दे0 शकुन्तला (2)

हुआ जिसके गर्भ से पुरूखा उत्पन्न हुए जो वड़े बुद्धिमान, रूपवान और पराक्रमी थे। उर्वशी (अप्सरा) शाववस भूलोक में आयी थी, जिस पर मोहित हो पुरूखा ने विवाह का प्रस्ताव किया और नारद से पुरूखा के रूप रंग को सुनकर उर्वशी भी विवाह के लिए तैयार हो गयी। विवाह हो गया। चिरकाल के अनन्तर उर्वशी की तीन शर्तो में से एक का उल्लंघन होने के कारण एक दिन वह स्वर्ग चली गयी। जिससे राजा वहुत दुःखी रहने लगे। एक दिन कुरूक्षेत्र के अन्तर्गत 'लक्षतीर्थ' में उर्वशी राजा को मिली और शीघ्र ही मिलने की आशा दे चली गयी। उर्वशी के गर्भ से आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रथ, विजय और जय उत्पन्न हुए।(1)

भरत :-

शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न दुष्यन्त के पुत्र जिनका जन्म कण्व ऋषि के आश्रम में हुआ था। यह वड़े प्रतापी तथा चक्रवर्ती राजा हुए जिन्हें विदर्भराज की तीन कन्याएं व्याही थी। इन्होंने मामतेय (ममतापुत्र) दीर्घतमा ऋषि के पौरोहित्य में गंगा-यमुना तट पर 55 अवश्वमेघ और राजसूय यज्ञ किये यह सार्वभौम राजा थे तथा किरात, हूण, यवन आंध्र और सव क्लेच्छ इनके अधीन थे। इस देश का नामकरण इन्हीं के नाम पर हुआ। पुत्र की इच्छा से इन्होंने मरूत्सोम यज्ञ किया और मरूतों ने भरद्वाज को वितथ नाम से भरत के यहाँ अर्पित किया था।(2)

मेनका :-

प्रसिद्ध अप्सरा का नाम जिसे विश्वामित्र की कठोर तपस्या से डरकर इन्द्र ने उनके तप भंग करने के लिए भेजा था। इसी के गर्भ से विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला का जन्म हुआ। यह शकुन्तला को वन में छोड़ कर चली गयी।(3)

---

(1) वायु0, भाग0 9,15,1,17,1 वायु0 9,48
(2) भाग0 9,20,17-35, मत्स्य0 49,11-15, 28-31
(3) भाग0 9,20,13

रति :-

दक्ष प्रजापति की पुत्री और कामदेव की पत्नी। यह दक्ष प्रजापति के शरीर के पसीने से उत्पन्न हुई थी। और संसार की सबसे रूपवती स्त्री मानी गयी है, इसे देखकर देवताओं का मन डोल गया था। इसी से इसका नाम रति पड़ा। शिव के कोपाग्नि से कामदेव के नष्ट हो जाने के पश्चात् इसके ही कारण वह बिना शरीर का या अनंग होकर बने रहे और रति सदैव कामदेव के साथ रहती है।(1)

लोंपामुद्रा :-

अगस्त्य ऋषि की पत्नी का नाम। पुराणानुसार अगस्त्य ऋषि ने वहुत दिनों तक विवाह नहीं किया और व्रह्मचर्य पालन किया था। संतान विहीन होने के कारण इनके पितर इन्हें स्वप्न में अधोमुख लटके दिखाई दिये। कारण जानने पर इन्हें बड़ा दुःख हुआ और विवाह योग्य कोई कन्या न मिलने पर अनेंक प्राणियों के उत्तम-उत्तम अंग लेकर एक कन्या की सृष्टि कर विदर्भ राज को दे दी। बड़ी होने पर इसी लोपामुद्रा कन्या से विदर्भराज की सम्मति ले अगस्त्य ने विवाह किया था। इन्होंने ऋग्वेद प्रथम मंडल, 18, अनुवाक, 179 सूक्त। और 2 मंत्र की व्याख्या की है।(2)

वसिष्ठ :-

एक प्राचीन ऋषि। वेदों से लेकर रामायण, महाभारत, पुराणादि सब ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है। वेदों के अनुसार यह मित्र और वरूण के पुत्र कहे गये हैं। ऋग्वेद के अनुसार कावुल गांधार की तरफ राज्य करने वाले दिवोदास के यह पुरोहित थे। पुराणानुसार सृष्टि के प्रथम कल्प में यह ब्रह्मा के मानस पुत्र ठहरते हैं। इनकी अनेक पत्नियां थीं, जिसमें से कर्दम की पुत्री अरुंधती को वशिष्ठ अधिक चाहते थे। विश्वामित्र तथा राजा निमि से इनका जो झगड़ा हुआ वह अधिक प्रसिद्ध है। व्रह्मा के कहने से यह सूर्यवंश के पुरोहित हुए पर निमि से विवाद के कारण सूर्यवंश की दूसरी शाखाओं का

---

(1) भाग0 3,12,26; 8,7,32; 10,5,4
(2) स्कन्द0 तथा व्रम्हा0

पुरोहित कर्म छोड़ यह अयोध्या के समीप आश्रम बना रहने लगे और अब यह वंश के पुरोहित रह गये। इन्हीं के कारण विश्वामित्र ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए तप करने लगे थे। कहते हैं विश्वामित्र के 100 पुत्रों को वसिष्ठ ने केवल हुंकार से भस्म कर दिया था। यह ऋग्वेद के अनेंक मंत्रों के द्रष्टा थे। वसिष्ठ पुत्र अय स्वर्शोयप युग के प्रजापति थे। (1) और शक्ति नामक इनके पुत्र एक गोत्रकार ऋषि थे।(2)

शकुन्तला :-

महाभारत के अनुसार भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध राजा भरत की माता। यह मेनका अप्सरा तथा विश्वामित्र की पुत्री थीं। जिसे मेनका वन में छोड़ चली गयी और शकुन्त पक्षियों ने इसकी रक्षा की थी, इसी से शकुन्तला नाम पड़ा। यह कण्व ऋषि के आश्रम में पली थीं। और राजा दुष्यन्त को ब्याहीं थी। गांवर्ध विवाह के पश्चात् चिन्ह स्वरूप अपनी अँगूठी दे राजा दुष्यन्त कण्व के आश्रम में शकुन्तला को छोड़कर अपनी राजधानी को चले गये। एक बार शकुन्तला अपने पति के ध्यान में इतनी मग्न थी कि उसे आश्रम में आये दुर्वासा ऋषि का पता ही न चला। जिसे दुर्वासा सहन न कर सके और शकुन्तला को शाप दे दिया। जब शकुन्तला दुष्यन्त के पास गयी तो उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। दुर्भाग्यवश राजा की दी हुई अँगूठी शकुन्तला से नहाने के समय नदी में गिर गयी थी। दुर्वासा के अनुसार अँगूठी देखकर ही शाप का प्रभाव हट सकता था। संयोग से अँगूठी एक मछली निगल गयी थी, जिसे मछुओं नें राजा दुष्यन्त को अर्पण की। अँगूठी देखते ही राजा को सारी बातें याद हो आयीं और शकुन्तला तथा अपने पुत्र को स्वीकार कर लिया। इसका सविस्तार वर्णन महाभारत तथा कालिदास में सविस्तार हुआ है।

रम्भा -

पुराणानुसार इन्द्रसभा की एक प्रसिद्ध अप्सरा का नाम, ज़िसे इंद्र ने विश्वामित्र की तपस्या में विघ्न डालने के लिए भेजा था।(3)

---

(1) मत्स्य0 9,9;
(2) योग वशिष्ठ, वशिष्ठ संहिता।
(3) विष्णु पुराण।

विश्वामित्र :-

पुरूवंशी महाराज गाधि के पुत्र एक प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि जो क्षत्रिय होते हुए भी अपने तपोबल से ब्रह्मर्षियो में परिगणित हुए थे। इनका क्षत्रिय दशा का नाम विश्वरथ था। पर ब्रह्मणत्व करने पर विश्वामित्र के नाम से विख्यात हुए। पुराणानुसार गाधि की सत्यव्रती नाम की पुत्री ऋचीक को व्याही थी। ऋचीक ने अपनी पत्नी और सास के लिए दो अलग-अलग चरू बनाये पर सत्यव्रती की माता ने सत्यव्रती वाला चरू खा लिया और सत्यव्रती ने अपनी माता के निमित्त बना चरू खाया। सत्यव्रती के पुत्र जमदग्नि हुए जो ब्राम्हण होते हुए भी क्षत्रिय गुणों से सम्पन्न थे और महाराजा गाधि की पत्नी से यही विश्वामित्र हुए तो क्षत्रिय कुल में होते हुए भी ब्राम्हणों के सदृश गुण वाले हुए। इनकी पत्नी का नाम सती था।(1) इनके आश्रम में रावण के अनुचर मारीच और सुबाहु वरावर बिघ्न उपस्थित कर यज्ञों को दूषित कर देते थे। अतः यह राम और लक्ष्मण को अयोध्यापति दशरथ से माँग लाये। जिन्होंने ताड़का आदि का वध कर डाला।(2)

रोहिणी :-

दक्ष प्रजापति की पुत्री तथा चन्द्रदेव की पत्नी। 27 नक्षत्रों में से यह चौथा नक्षत्र है। जिसमें 5 तारें हैं जिनकी आकृति रथ की तरह है।(3)

कण्व :-

कश्यप गोत्रोत्पन्न एक तपः प्रभाव सम्पन्न प्राचीन ऋषि जो अप्रतिरथ के पुत्र तथा मेधातिथि के पिता कहे गये हैं। इन्हीं से काण्वायन ब्राम्हणों की उत्पत्ति हुई। यह मेनका अप्सरा द्वारा छोड़ी कन्या शकुन्तला के पालक पिता थे, और इनका आश्रम मलिनी नदी के तीर पर था।(4)

---

(1) विष्णु0 4,7,12-38;
(2) राम चरित मानस बालकाण्ड 205-209,3;
(3) काल्कि पुराण
(4) शकुन्तला, भरत, नन्द प्रयाग, महाभारत आदि। अ0 71,72,73; भाग09,20,6-12; विष्णु0 4,19,5-6।

ऋचीक :-

भृगुवंशीय एक ऋषि। यह और्व ऋषि के पुत्र थे। महाभारत और विष्णु पुराणानुसार विश्वामित्र के पिता गाधि ने वृद्ध होने के कारण इनसे 1000 श्याम वर्ण घोड़े ले अपनी सत्यवती नाम की कन्या का विवाह इनसे कर दिया था। यह मंत्रकृत थे।(1)

त्रिशंकु :-

एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा का नाम। सशरीर स्वर्ग जाने की कामना से त्रिशंकु ने यज्ञ किया था। देवताओं के विरोध के कारण नहीं जा सके थे। विश्वामित्र से भी यही प्रार्थना की थी।(2)

हरिवंश पुराण के अनुसार महाराज त्रथ्यारूण का सत्यव्रत नामक पुत्र बड़ा पराक्रमी था, जिसने एक पराई स्त्री घर में डाल ली थी। इससे पिता के शाप से सत्यव्रत चांडालों के साथ रहने लगा। पास ही वन में विश्वामित्र जी भी तपस्या करते थे। एक बार उस प्रांत में बारह वर्षों तक वृष्टि नहीं हुई, अतः ऋषि की पत्नी ने अपने विचले लड़के को गले में बांधकर 100 गौओं से बेचनें निकली। सत्यव्रत ने उस ऋषि-पुत्र को लेकर पालना आरम्भ किया, तभी से उस लड़के का नाम गालव पड़ा। एक वार त्रत्यव्रत वशिष्ठ की गौ को मारकर विश्वामित्र के पुत्र को खिलाया और स्वयं भी खाया। सत्यव्रत ने तीन महापातक किये -

1. पिता को असंतुष्ट किया।
2. गुरू की गाय मारकर स्वयं खायी।
3. उस गौ मांस को ऋषि पुत्रों को खिलाया। इससे सत्यव्रत का नाम त्रिशंकु पड़ गया। सत्यव्रत ने सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा प्रकट की। विवश्वामित्र ने पहले यह बात मान ली, फिर उन्हें उनके पैत्रक राज्यपर अभिषिक्त किया और स्वयं राजगुरू बन बैठे। कैकेय वंश की सत्यशता नाम की कन्या के गर्भ से सत्यव्रत के पुत्र प्रसिद्ध सत्यव्रती राजा हरिश्चन्द्र ने जन्म लिया

---

(1) भाग0 9,15,5-11; ब्रह्मा0 2, 13,95; 32,104;3,1,95;25,83;
(2) रामायण।

था।(1) तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार त्रिशंकु अनेक वैदिक मंत्रों के ऋषि थे।(2)

मौलिक उद्‌भावनाएँ

आचार्य राजशेखर ने कवि को कल्पक कहकर उसकी प्रतिभा को नवोन्मेषशालिनी बताया है। कवि अपने काव्य संसार का प्रजापति होता है। अपनी कल्पना के द्वारा प्राचीन घटना या पात्रों को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि वे मौलिक लगने लगते हैं। महाभारतीकार पोद्दार रामावतार ने पुराण प्रसिद्ध पात्रों की घटनाओं का चयन इस रूप में किया है कि वे प्राक्तन होते हुए भी नवीन रूप में उपस्थित हुए हैं। आज के ज्ञान विज्ञान और सांस्कृतिक युग में वे प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। इनकी प्रतीकात्मकता और महत्ता के विषय में कवि ने स्वयं लिखा है – "यों तो सभी विख्यात वैदिक ऋषि अपनी-अपनी न्यूनाधिक महिमा से तपस्या सम्पन्न हैं, किन्तु ज्ञान, विज्ञान और कर्म के दीप्त प्रतीक के रूप में वसिष्ठ, अगस्त्य और विश्वामित्र की कालजयी साधना आज भी भारतीय वाङ्मय में आलोक स्तम्भ की भाँति जाज्वल्यमान है। इन तीनों पुराण-सम्मानित महर्षियों के आत्म-समन्वय से मानवता को अपार लाभ हुआ। वेद कालीन ऋषियों में कदाचित् विश्वामित्र ही इतने क्रान्तिकारी थे जो मनुष्यों के भौतिक और आध्यात्मिक विभेद को मिटाने में आजीवन सचेष्ट रहे। वे गणमंत्र के प्रथम विश्व गायक और सर्वप्राण उन्नायक थे। उनकी उदात्त प्रेरणा से ही अगस्त्य ने अलंध्य पौराणिक विंध्याचल का आरोहण किया। कौशिक के सहृदय अनुरोध पर ही ऋचीक ऋषि ने अपने गुरूकुल में अनार्य-प्रवेश की प्रथम अनुमति प्रदान की। किन्तु विशुद्ध आर्यता के संश्लिष्ट संरक्षक मुनि वशिष्ठ ने उस नवीन निर्णय का वैचारिक विरोध किया। वास्तव में वशिष्ठ और विश्वामित्र का विचार-संग्राम साधारण कोटि का नहीं था। दोनों की साश्वत चेतनाएँ भिन्न-भिन्न रूप

---

(1) हरिवंश पुराण

(2) भाग० 9,7,5-7; ब्रह्मा० 3,63,108; वायु० 88,108-13; विष्णु० 4,3,21,

में कार्य-व्यस्त थी। एक समय ऐसा भी आया कि दोनों की क्रियाशील, अतिमानस-ज्योति एक ही ध्यानाकाश में दीख पड़ी, परन्तु विश्वामित्र को मनुष्यता की गण चैतन्य कर्मोपासना के लिए ठोस धरातल पर उतर आना पड़ा।(1)

इसके साथ ही चतुर्दश सर्ग में व्यंजित राजनीतिक, सांस्कृतिक कल्पनाएं कवि की पूर्ण मौलिकता की परिचायक हैं जो आज की युगीन आवश्यकता है। रोहिणी, लोपामुद्रा, अगस्त्य, विश्वामित्र का संकल्प इस काव्य में मौलिक रूप में अभिव्यंजित है। साथ ही काव्य के प्रारम्भ में जिस प्रलय और उससे उत्पन्न प्रकृति का चित्रांकन किया गया है। वह भी पुराण पुरोक्त होने पर भी सर्वथा नूतन मौलिक और आकर्षक वन पड़ा है।

सारांश यह है कि रामावतार पोद्दार ने आधिकारिक कथा के रूप में महाभारती को केन्द्रबिन्दु मानकर उसकी समृद्धि हेतु पुराण पृथित ग्रथित पात्रों से सम्बन्धित कथा को इस रूप में ग्रहण किया है कि वह एक ओर उनकी जीवन गाथा बने तो दूसरी ओर आध्यात्मिक प्रतीक के रूप में अपनी सार्थकता सिद्ध कर सके। जिस प्रकार कालिदास ने रघुवंश में किसी एक व्यक्ति को नायक न बनाकर रघुवंश को केन्द्रबिन्दु रखकर यशस्वी नृपति-गाथा का विस्तार किया है। उसी प्रकार पोद्दार ने वैदिक युगीन महाभारती को केन्द्र बिन्दु रख उसकी गरिमा और उसके सौन्दर्य और ऐतदर्य पात्रों से सम्बन्धित घटनाओं का ऐसा संगुम्फन किया है। जिसमें प्रभु विष्णुता है, प्रांजलता है, कौतुहलता है और पाठ्कों की वैचारिक तृप्ति का साधन भी है। घटनाएं मूल कथा को विकसित करती हुई घटना व्यापार आरोह-अवरोह से युक्त हैं। कवि की कल्पना का चमत्कार निश्चय ही पूर्वोक्त संकल्प को पूर्ण करने में समर्थ है।

---

(1) महाभारती, दृष्टि भूमिका पृ0 11-12;

पात्रावतरण की धारणा एवं वर्गीकरण

संस्कृत की 'पा' धातु के साथ 'ष्ट्र' प्रत्यय करने से पात्र शब्द बनता है। जिसके पुल्लिंग रूप में व्युत्पत्ति परक अर्थ वनेगा। व्यक्ति जो किसी काम या बात के लिए योग्य हो अथवा जो सब प्रकार से अधिकारी हो। साहित्य में पात्र का तात्पर्य काव्य, नाटक, उपन्यास, आदि में घटनाओं के घटक पात्र भी होते हैं।

'महाभारती' महाकाव्य में प्राप्त पात्रों के आन्तरिक और बाह्य क्रिया कलाप शारीरिक गठन और चिन्तन की रूपरेखा के माध्यम से तद्जन्य उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करनें से पूर्व यह समीचीन प्रतीत होता है कि संक्षेप में भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य क्षेत्र में प्रचलित पत्रावधारणा-प्रतिमान पर एक विहंगम दृष्टि डाल लें।

पात्र ही चरित्र कहलाते हैं। साहित्यकार अपने काव्य में जिस संसार की रचना करता है, वह घटनाओं का विस्तार एवं उद्देश्य का प्रतिपालन पात्रों के माध्यम से ही करता है। इससे उसके पात्रों का रूवरूप प्रत्यक्ष गोचर होता है। वात यह है कि मनुष्य अचर नहीं चर है, जड़ नहीं चेतन है, थिर नहीं विकसन शील है, उसका आचरण समाज के अनकूल और प्रतिकूल नैतिक और अनैतिक दोनों प्रकार के होते है। और इन्हीं छन्दों के घात-प्रतिघात से प्रात्र जीवन्त हो उठता है, चरित्र के सन्दर्भ में नाट्य दर्पणकार गुणचन्द्र ने लिखा है- " जिसका अतीत काल में आचरण किया जाता था, वह चरित्र है। अरस्तू इत्यादि पाश्चात्य विचारकों का मन्तव्य है कि मनुष्य जो कुछ है, वही उसका चरित्र है। भारतीय दर्शन में इस सन्दर्भ में एक नई दृष्टि मिलती है, जिसके अनुसार मनुष्य के अन्तरीय गतिमान तत्व तक पहुँचनें के लिए हमें उसके बाहिरन्तर संगठन को देखना होगा। जैसा कि श्रीमद्भागवत गीता के (13/1) क्षेत्रज्ञ प्रकरण से यह बात प्रमाणित होती है कि अन्तःकरण की प्रमुखता ही चरित्र का आधार है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में चरित्र को बहुआयामी कहा गया है। प्रश्नात्मक, भावात्मक, उत्तेजनात्मक आदतों का समिश्रण ही चरित्र है। डा0 शेवक के मतानुसार चरित्र जन्मजात मूल प्रवृत्यात्मक उत्तेजनाओं के निग्रह वाला एक सतत् जाग्रत मनोवैज्ञानिक झुकाव है, जो एक व्यवस्थापक सिद्धान्त के अनुसार चलता है।(1)

---

(1) प्राबलम ऑफ पर्सनालिटी पृष्ठ 117-18

पात्रों के चरित्र चित्रण के पूर्व संक्षेप में व्यक्तित्व की अवधारणा का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा क्योंकि शारीरिक गठ्न और आन्तरिक चिन्तन चरित्र तथा व्यक्तित्व के सूचक होते है। मनो विज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तित्व के अनेक कारक तत्वों का उल्लेख हैं जिसका निष्कर्ष यह है कि व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रिया ही व्यक्तित्व की जननी है। इस सम्बन्ध में डा0 रमाशंकर त्रिपाठी का मंतव्य है कि " व्यक्तित्व मनुष्य के अन्दर रहनें वाली समस्त प्रकट तथा प्रच्छन्न प्रवृत्तियों एवं शक्तियों का प्रतीक होता है, ब्रम्ह रूप इसी का प्रत्यामास रूप होता है, फिर भी लोक के लिए गोचर या दृश्य होता है। इससे यह सूचित होता है कि कोई व्यक्ति अपवनी आन्तरिक प्रवृत्तियों और शक्तियों को कहाँ तक कार्यान्वित तथा विकसित करनें में समर्थ है या हो सका है। (1)

इसी सन्दर्भ में व्यक्ति निरूपण के लिए इड, इगों और सुपर इगों, शारीरिक गठ्न, नाड़ी तन्त्र सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव आनुवांशिकता और पर्यावरण चारित्रिक दृढ़ता और मानसिक दशा का महत्वपूर्ण स्थान है।

कवि सृष्टा व क्रान्ति दर्शी होता है, वह पात्र के शीलस्वभाव, आचार, विचार, आहार, व्यवहार अवस्था और प्रकृति की विभिन्नता का उल्लेख का तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में करता है। पात्र की आधिकारिक और प्रासांगिक कथाओं का वाहक होता है।

अतः साहित्य में पात्र की महत्ता अग्रपांक्तेय है। पाक्तन् काव्य शास्त्रियों ने महाकाव्य की कथा का आधार महान चरित्र को बताया है।(2) भामह, दण्डी, रूद्रट, विश्वनाथ सभी आचार्यो ने महाचरित्र की अवधारणा व्यक्त करते हुये चार प्रकार के नायकों धीरोदान्त, धीरप्रशान्त, धीरललित, धीरोद्धत तथा उनके अलंकारों में शोभा विलास, माधुर्य तेज गम्भीर, ललित औदार्य इत्यादि गुणों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार कथा के आधार पर आधिकारिक नायक, प्रासांगिक नायक, पताका नायक, प्रकरी नायक, अनुनायक, उपनायक, सहनायक, प्रतिनायक की विस्तृत चर्चा काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध है। इसी प्रकार स्वकीया, परकीया, सामान्या मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, धीरा, अधीरा, अभिसारिका,

---

(1). साहित्य में पात्र प्रतिमान और परिरेखन पृष्ठ 23

(2) भामह काव्यालंकार (1/19)

स्वाधीन पतिका, वासंक सज्जा, खण्डिता इत्यादि नायिका-भेदों और उनके अंगज अलंकारों में हाव-भाव हेला इत्यादि का विस्तृत वर्णन हुआ है।

पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र में नायक, नायिकाओं का विवेचन त्रासादी के परिप्रेक्ष्य से प्रारम्भ हुआ है। वहाँ भी अंग विन्यास कौलीन्य और सतगुणों की प्रमुखता दी गई है। खलनायकों की विशेष महत्ता पाश्चात्य साहित्यशास्त्रों में मिलती है। दोनों दृष्टियों का निष्कर्ष यह है कि महाकाव्य का नायक उदात्त गुणोपेत राष्ट्रीय गरिमा से संयुक्त आदर, चरित्रवान सत्शील और शौर्य से सम्पन्न हो जो असत् तथा अमानवीय प्रवृत्तियों का शमन कर सके, और जो जीवन की व्यपकता नयी शारीरिक सजगता तथा सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा कर सके।

पात्रों के चरित्र चित्रणगत शैलियों की संक्षिप्त रूप में चर्चा कर इसी परिप्रेक्ष्य में महाभारती के चरित्र-चित्रण पर प्रकाश डाला जायेगा। भारतीय साहित्यशास्त्र में पात्र के नाम, कुल गोत्र उनकी वृत्तियाँ कायिक, वाचिक, सात्विक आहार चेष्टाओं का जहाँ उल्लेख किया गया है। वहीं पाश्चात्य जगत में भद्रता औचित्य जीवनानुकूलता शारीरिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आयामों के आधर पर तो कहीं अभिमान, तो कहीं व्यक्ति था वर्गीय सिद्धान्त, तो कहीं प्रत्यक्ष परोक्ष चित्रांकन प्रणाली, नामकरण, आकृति, वेशभूषा, क्रिया-प्रतिक्रिया जागृति या स्वप्नावस्था, अन्तः प्रेरणाओं, आवेगाविष्ट आचरण चेतन और अचेतन का अन्तर्द्वन्द, अन्तर्विवाद, मनोविश्लेषण मुक्त आसंग-प्रणाली का प्रयोग हुआ।(1)

आधुनिक हिन्दी काव्य मे 'प्रियवास' से लेकर 'साकेत', 'कामायनी' एवं 'छायावादोत्तर महाकाव्य' में पात्रों के चित्रांकन प्रणाली में बहुत वैविध्य मिलता है। द्विवेदी युग तक के महाकाव्यों में प्राचीन प्रणाली का विशेष उपयोग किया गया, जबकि स्वातन्त्र्योत्तर महाकाव्यों में यह धारणा आधुनिक परिवेश से उत्पन्न मूलों के कारण विकसित मनोवैज्ञानिक प्रणाली की बहुलता रही है। यहाँ महाभारती के प्रमुख स्त्री पुरूषों के नाम परिगणन के आधार पर सूची-प्रस्तुत प्रमुख पात्रों के चरित्र का मूल्यांकन पिछले पृष्ठों में दिये गये भारतीय एवं पाश्चात्य पद्धति के अनुरूप चरित्र चित्रांकन कर रामावतार पोद्दार

---

(1) हिन्दी उपन्यासों में चरित्र चित्रण का विकास, डा० रणवीर रांग्रा (विशेष रूप से दृष्टब्य)

की पात्र-योजना के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालेंगे।

प्रमुख पुरूष निम्न लिखित हैं -

(1) अगस्त्य

(2) दुर्वासा

(3) दुष्यन्त

(4) पुरूरवा

(5) भरत

(6) वशिष्ठ

(7) विश्वामित्र

(8) कण्व

(9) ऋचीक

(10) त्रिशंकु

(11) इन्द्र

प्रमुख स्त्री पात्र निम्न है -

(1) उर्वशी

(2) मेनका

(3) रति

(4) लोपमुद्रा

(5) शकुन्तला

(6) रम्भा

(7) रोहिणी

प्रमुख पुरूष पात्रों का चरित्र-चित्रण

पुरूरवा का चरित्र चित्रण

सामान्य परिचय- प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार देवगुरू बृहस्पति की पत्नी तारा और चन्द्रमा के संयोग से बुद्ध उत्पन्न हुये जो चन्द्र वंश के आदि पुरूष थे। बुद्ध का इला के साथ विवाह हुआ जिसके गर्भ से पुरूरवा उत्पन्न हुए जो बड़े बुद्धिमान, रूपवान, और

पराक्रमी थे। उर्वशी अप्सरा शाप वश भू-लोक में आयी थी, जिस पर मोहित हो पुरूरवा ने विवाह को प्रस्ताव किया और नारद से पुरूरवा के रूप रंग को सुनकर उर्वशी भी विवाह के लिए तैयार हो गई।

आकर्षक व्यक्तित्व के धनी- पुरूरवा आकर्षक व्यक्तित्व के मालिक थे, उर्वशी की उन्होने दनुज से रक्षा की थी। उर्वशी मेनका को बतलाती है कि-'सारथी स्वयं भूपाल। देव सम दिव्य देह'। अन्यत्र प्रसंगों में भी वह पुरूरवा से अत्यधिक प्रभावित हुई है-

सुर शील सबल मैं आर्य भूप को जान गई।

ऊर्जस्वित पौरूष की प्रतिमा पहचान गई।। (1)

युद्धकला में निपुण- पुरूरवा राजसी गुणों से युक्त थे तथा युद्ध कला में पारगंत थे। संध्या समय जव उर्वशी गिरि प्रदेश पर दनुज के अधीन थी, वहाँ उसकी कोई रक्षा करनें वाला नहीं था 'कोई भी नहीं जो हर ले क्रूर क्लेश?' तभी पुरूरवा ने अपनी युद्ध कला से उर्वशी के शील की रक्षा की।

तत्काल बाण-वर्षा-विक्षत नभ-दस्यु दनुज

खिलता हिलग-सा नयन प्रतिक्षित चन्द्राम्बुज

चिल्लाता चील सदृश अम्बर में उड़ा असुर।। (2)

रूप सौन्दर्य का पुजारी- पुरूरवा जहाँ एक ओर आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे और युद्ध कला में निपुण थे, वहीं दूसरी ओर रूप-सौन्दर्य के प्रति भी उनके मन में तीव्र आकर्षण था। उर्वशी के रूप सौन्दर्य से प्रभावित हो उन्होने विवाह का प्रस्ताव रखा, जिसे उर्वशी भी अस्वीकार न कर सकी

बँध गई देव सुन्दरी मनुज भुज में सहर्ष।

विजय शोणित ने किया सुधा का प्रथम स्पर्श।। (3)

उर्वशी स्वयं विचार मन्थन करते हुये कहती है कि पुरूरवा का मेरे प्रति जो आकर्षण था, वह स्वर्ग की पराजय थी या मानव का पतन, वह अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित थी-

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग

(3) महाभारती, द्वितीय सर्ग

झुक गया रूप की लहरों से नृप का विवेक।

मेरी सुन्दरता उतर गई मानव पर।। (1)

करूणा से ओत प्रोत- पुरूरवा न ही सिर्फ रूप सौन्दर्य का पुजारी था, वरन् उनका हृदय अत्यन्त ही उदार व करूणा से ओत प्रोत था। जब उर्वशी भूलोक से स्वर्ग लोक को प्रस्थान करनें लगी तो न सिर्फ उर्वशी की आँखों से आँसू छलछला रहे थे, वरन् पुरूरवा के नेत्रों में भी अश्रु-कण थे-

नर के नयनों में भी नारी-सा मेघ-बिन्दु।

उर की करूणाः वरूणा-विह्वल भावना सिन्धु।। (2)

जब उर्वशी माँ वनील और पुरूरवा से मिली, तब भी पुरूरवा अत्यन्त दुःखी थे, जिसकी पुष्टि उर्वशी के निम्न कथन से होती है-

विरही नृप से जब मिली, खिली मैं श्री समान! (3)

भोग प्रधान प्रवृत्ति- पुरूरवा की प्रवृत्ति भोग प्रधान थी तभी उन्होंने उर्वशी को अपनें पूर्व जीवन के विषय में नहीं वताया :-

क्यों कहा उस समय नहीं कि उर-अवरूद्ध द्वार।

नारी नयनों का अश्रु धार उपहार मिला।। (4)

उर्वशी का यह कथन भी पुरूरवा में संकल्प शक्ति के आभव को प्रकट करता हैः-

अपनें को भूल गया कोई उर्वशी निकट।

हिल गया रूप के झोंके से दृढ़ पौरूष वट।। (5)

उर्वशी को इस वात का दुःख है कि वह पुरूरवा की पत्नी नहीं है, वल्कि प्रिया जो भोग प्रधान प्रवृत्ति का सूचक हैः-

मैं पुरूरवा की प्रिया, नहीं दुखिता भार्या

रोती नित औसी नरीः प्राण बन्धित आर्या

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग

(3) महाभारती, द्वितीय सर्ग

(4) महाभारती, द्वितीय सर्ग

(5) महाभारती, द्वितीय सर्ग

मैं स्वर्ग नर्तकी-सुर गणिका, वह पतिव्रता

वह प्राण वल्लरी किन्तु उर्वशी अमरलता।। (1)

पुरूरवा का रक्षक रूप- पुरूरवा का एक रूप यह भी था कि वह विपत्ति में फसे व्यक्ति की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे, और इसी कारण उन्होने उर्वशी के शील मर्यादा और प्राणों की रक्षा की थी-

"थर-थर-थर कम्पित असुर कदाचित् नर से डर

अब घर्र-घर्र झंझा-झकोर-सा-चक्रस्वर।। " (2)

इसी सहायता के कारण वह पुरूरवा का सम्मान करनें लगी-

परिचय पाते ही मैनें उन्हे किया प्रणाम

सुर शील सवल में आर्य भूप को जान गई

ऊर्जस्वित पौरुष को प्रतिभा पहचान गई।। (3)

अगस्त्य का चरित्र चित्रण

अगस्त्य का सामान्य परिचय- यह एक बड़े प्रभावशाली ऋषि थे और इनके पिता का नाम मित्र वरूण था। ऋग्वेद के अनुसार उर्वशी अप्सरा को देखकर मित्र वरूण काम पीड़ित हो गये, जिससे वीर्यपात हुआ। अगस्त्य का जन्म इसी से हुआ था। श्री सायणाचार्य के भाष्य के अनुसार अगस्त्य की उत्पत्ति एक घड़े से हुई, इसी से इन्हे मैत्रावरूणि, कुम्भसम्भव, घटोद्भव, कुम्भज आदि नामों से पुकारतें हैं। पुराणानुसार इनहोने एक वार वढ़ते हुए विन्ध्यांचल को लिटा दिया था, जिससे उन्हे विन्ध्य गुरू भी कहतें हैं। तारक तथा दूसरे असुरों द्वारा पीड़ित संसार का कष्ट देकर एक बार यह समद्र को चुल्लू में भरकर पी गये थे, जिससे इनाक नाम 'समुद्र चुलुक' भी था। पुराणों में कहीं-कहीं इन्हे पुलस्त्य का पुत्र भी कहा गया है।

दीन दुखियों के सहायक- अगस्त्य ऋषि हमेशा दीन दुखियों की सहायता के लिए तन-मन से तैयार रहते थे और दूसरों को प्रेरित करते थे। एक वार अचानक वाढ़ आ गई

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग

(3) महाभारती, द्वितीय सर्ग

और प्रलय का जैसा दृश्य दिखायी देनें लगा, ऋषियों का सात दिन से भोजन नहीं मिला तब वे अत्यन्त चिन्तित हो गये-

तभी चिन्तित अगस्त्य ने कहा
असह हे! बन्धु काल-आघात
निकालो कामधेनु की ज्योति
सम्हालों जल का हाहाकार
सुनों हे! आत्मनिष्ठ ब्रम्हर्षि!
क्षुधित ऋषियों की करूण पुकार! (1)

अगस्त्य का आकर्षक व्यक्तित्व - अगस्त्य ऋषि स्वस्थ और सुन्दर शरीर तथा आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे उनके शरीर को देखकर भगवान रूद्र की भ्रान्ति होती थी-

स्मरणीय महाविज्ञान-विदग्ध अगस्त्य-स्नेह
कल्पद्रुम-सी उनकी तुषार-केशरी देह
वज्रांग-अंग में ऊर्जस्वित रक्ताम कान्ति
अश्वत्थ-छाँह से उन्हे देखकर रूद्र-भ्रान्ति।। (2)

आदर्श गुरू :- अगस्त्य गुरू के रूप में भी अपना अपना कर्तव्य बखूवी से निभाते हैं अपने शिष्यों को सही मार्गदर्शन प्रदान करतें हैं विश्वामित्र जव साधना की वात करतें हैं तब वह विश्वामित्र का सही मार्गदर्शन करते हुए गुरू के दायित्व का बखूबी निवहि करतें है-

यह शिव-तप सम्भव नहीं शक्ति पार्वती-रहित
यदि भंग हुआ तो होगा भू का अतुल अहित
उत्तर दिशि में आ सकता है अम्बुधि विशाल
टकरा सकता हिम श्रृंगों से जल-व्याघ्र ज्वाल।।(3)

वैज्ञानिक कर्म शक्ति के उन्नायक :- ऋषि अगस्त्य वैज्ञानिक कर्म शक्ति के

---

(1) महाभारती, तृतीय सर्ग पृ0 107
(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 141
(3) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 146

उन्नायक के रूप में चित्रित्र किये गये हैं। वह प्रत्येक कार्य को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं, चाहे वह साधना ही क्यों न हो। इस कथन से इसकी पुष्टि होती है-

नित दस्युराजः शम्बर, अगस्त्य से भय कातर
ऋषि की वैज्ञानिक कर्म शक्ति से वह थर-थर
जो अशिव रीति से करता शिव का अशुभ ध्यान
वह उग्र काल पूजक प्रचण्ड उद्‌दण्ड प्राण।। (1)

क्रोधी महर्षि :- अगस्त्य मुनि कोई भी गलत कर्म होने पर अत्यन्त क्रोधित हो उठते हैं, वे परिस्थितियों से समझौता नहीं करते। जब विश्वामित्र शम्वर का वध करके शम्वरी को अपने साथ ले आते हैं तो उसे देख उग्र हो उठते हैं और तभी शान्त होते हैं जब विश्वामित्र यह बतलातें हैं कि युद्ध में शम्बरी ने हम लोगो की सहायता की थी-

बोले वेः शम्बर-कन्या का काटूँगा सिर,
विश्वस्त विश्वरथ! भ्रान्त चित्त को करो सुस्थिर
अपराधी को लाओ सत्वर मेरे सम्मुख
वध करनें पर ही मिट पायेगा मेरा दुःख।। (2)

लेकिन वास्तविक स्थिति का पता चलनें पर शीघ्र प्रसन्न भी हो जाते हैं-

सदृश्य अगस्त्य ने दिया आत्म-हर्षित प्रसाद
मिट गया सहज सन्देह-भरा क्रोधित विवाद।। (3)

परिवार समर्पित व्यक्त्वि :- ऋषि अगस्त्य समाज सेवा व साधना के साध-साध ा परिवारिक जिम्मेदारी के प्रति भी सचेत है। वे अपनी पुत्री को माँ का प्यार भी देते हैं तथा उसके यथायोग्य शादी के दायित्व को भी पूर्ण करते हैं। क्योकि भारतीय ग्रन्थों में भी मोक्ष प्राप्ति के लिए गृहस्थ आश्रम के दायित्व को निभाने की बात कही गई है। अगस्त्य का यह कथन पितृ दायित्व से युक्त हैं-

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 152
(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 165
(3) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 166

मैं मात्र पिता ही नही, एक माता भी

भार्या-अभाव में स्नेह-भाव-दाता भी।। (1)

दृढ़ प्रतिज्ञ :- महान व्यक्ति हमेशा अपनें वचन और समय के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ होते हैं। इसी प्रकार ऋषि अगस्त्य भी अपनें वचन के पक्के हैं। विश्वामित्र जब मुनि अगस्त्य को विन्ध्यांचल यात्रा सामाप्ति के पश्चात कुछ दिनों रूकनें का और आग्रह करतें हैं, तब वे स्पष्ट कह देते है-

करता न वचन-पालन, वह व्यक्ति नही मैं

बिखरे न लोक मे वह मृत शक्ति नही मैं

लक्षित अनुचिन्तन ही विलम्ब का कारण

विन्ध्याद्रि-श्रृंग पर ध्रुव-निश्चित तप-धारण। (2)

नवीन विचारों से ओत प्रोत :- मुनि अगस्त्य अपनी साधना से अमूल-चूल परिवर्तन लाना चाहते हैं इस पृथ्वी पर वह नवीन विचारों से संकल्पित है। उन विचारों पर वह मूल रूप से अमल करना चाहते हैं-

परिवर्तित पथ पर मरना है नव जीवन

विज्ञान प्रभा का आत्म-अभीष्ट प्रसारण

अर्पित करना है बुद्ध बीज भूतल को

देनी है विष्णु तरंगशिवाम्बुधि जल को। (3)

सत्य समर्थक :- ऋषि अगस्त्य हमेशा सत्य के पक्षधर रहें हैं, सत्य का समर्थन करनें के लिए उन्हें चाहे कितनें कष्ट सहन करने पड़े हों, उन्होंने सत्य से कभी मुँह नही मोड़ा-

सत्योचित विश्वामित्र-पक्षधर मैं भी

भ्रातृत्व-पद्य-परिमल-मिलिन्द मधु में भी। (4)

इसी प्रकार मुनि अगस्त्य कर्म और धर्म के संघर्ष में भी कर्म को सत्य माना और

---

(1) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 172

(2) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 173

(3) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 174

(4) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 176

उसी का समर्थन किया। मुनि अगस्त्य जीवन में हमेशा प्रत्येक असफलता का सामना करनें के लिए सदैव तैयार रहे। कभी भी किसी भी परिस्थित में घबराना नहीं सीखा था उन्होने–

सामंत्य की मैं उतरूँ ने पुनः पर्वत से,
टकरा जाऊ मैं स्वयं अग्नि के रथ से
सामंत्य की यात्रा मेरी रहे अधूरी
कोई करदे आकर अभिलाषा पूरी।। (1)

पितृ रूप में :– मुनि अगस्त्य पुत्री से असीम प्यार करते हैं। पुत्री रोहिणी वन में तपस्या करनें के लिए साथ जानें की जिद्द करती है, मुनि अगस्त्य वन के कष्टों के विषय में बताते हैं और उससे आग्रह करतें है कि पुत्री तुम वन जाने की जिद्द मत करों–

रोहिणी! लौट जा, स्वामी पथ पर जा तू
उठनें वाली झझाओं में मत आ तू
तू एक मात्र तनया मेरी! जा घर जा,
मत आ, मत आ मेरी ममते! तू मत आ।। (2)

घोर तपस्वी रूप में – ऋषि अगस्त्य समस्त संसार के कल्याण के लिए घोर तपस्या की थी, और उनकी तपस्या फलीभूत भी हुई, चारों ओंर खुशी की लहर दौड़ गई। उनकी तपस्या का एक रूप ये भी है–

विन्ध्यांचल का कितना दारूण तप मेरा
घिर गया चतुर्दिक घुप्प्य-घुप्प्य अंधेरा
देखना पड़ा सागर-पथ से भी नग को
विधि कर से गढ़ना पड़ा मनुज हित मग को। (3)

---

(1) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 180
(2) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 180
(3) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 182

अगस्त्य का देश प्रेम – ऋषि अगस्त्य को अपने देश से प्यार था और अपनें देश की भाषा से भी अत्यधिक प्रेम था–

आचार संहिता से ही शक्ति नियन्त्रण
निज भाषा से ही जागत होता जीवन। (1)

प्रेमी रूप में – ऋषि अगस्त्य जीवन में प्रेम को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। जीवन में सबसे ऊँचा स्थान प्रेम को देते है–

उर ही उर को छूता है स्नेह सदन में
सबसे ऊँचा है प्रेम भाव जीवन में। (2)

कर्तव्य पालक :–

ऋषि अगस्त्य जीवन में कर्तव्य को सवसे अधिक महत्व देते हैं। वे उसे स्वर्ग से श्रेष्ठ वताते हैं, कर्तव्य का अधिकारों से अधिक महत्व है, तथा कर्तव्य समझनें और निभाने की शक्ति केवल मानव जीवन में है इसलिए उसका जीवन अन्य से श्रेष्ठ है–

कर्तव्य भूमि से श्रेष्ठ न स्वर्ग–निकेतन
इसलिए महत्तम केवल मानव–जीवन। (3)

कार्यशील व्यक्त्वि :– मुनि अगस्त्य जीवन में सिर्फ ज्ञान को नही, कर्म को भी आवश्यक मानतें हैं। जीवन के लिए सम्पूर्ण विकास के लिए ज्ञान, कर्म, ध्यान सभी की आवश्यकता होती है –

ऋषि कर्म न सीमित मात्र ज्ञान–अर्जन में
होता जीवन चरितार्थ सफल सर्जन में।। (4)

---

(1) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 187
(2) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 189
(3) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 189
(4) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 192

दुष्यन्त का चरित्र-चित्रण

सामान्य परिचय – विष्णु पुराणानुसार रैम्य और उपदानवीं के पुत्र का नाम। महाभारत के अनुसार एकदिन शिकार खेलते-खेलते ये कण्वमुनि के आश्रम जा पहुँचे, जहाँ मेनका अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला से इनकी भेंट हुई और उससे वही गन्धर्व भी हो गया। इससे उत्पन्न भरत दुष्यंत का औरस पुत्र था जो बड़ा प्रतापी राजा हुआ। पहले तो दुष्यंत ने शकुन्तला और भरत को लोक लाज के भय से पत्नी और पुत्र के रूप में अस्वीकार कर दिया। परन्तु आकाशवाणी होने पर ग्रहण किया। इन्ही के पुत्र भरत के नाम पर इनके वंशज भारत कहलाये। (1)

करूणा से ओत-प्रोत – दुय्न्त दयालु राजा थे, जब वे शिकार खेलते हुए कण्व मुनि के आश्रम के समी प पहुँचे, तभी गुरूकुल के ऋषि कुमार 'मत मारों' 'मत मारों' की आवाज सुनी तो वह कहने लगे कि कौन सी मुझसे भूल हो गई, जिससे पता चलता है कि उनके हृदय में करूणा का भाव था-

रोको सारथि रथ वन पथ में
किसकी आँखे अकुलाई सी?
अपराध हो गया क्या मुझसे?
किसके क्रन्दन के घन छाएँ? (2)

अंहकार से रहित – दुप्यन्त कभी भी अंहकारी नहीं रहे, ऋषियों, मुनियों और गुरूओं का सम्मान करना पारिवारिक परम्परा थी, दुष्यन्त जब कण्व मुनि के आश्रम में जाते हैं तो सारथी को स्पष्ट आदेश देते हैं कि आश्रम में राजसी भाव कभी भी प्रदर्शित नहीं हांना चाहिए। क्योंकि सिहांसन ऋषि पद के सामने कुछ भी नहीं है। प्राचीन ग्रन्थों में भी कहा गया है कि राजा का सम्मान सिर्फ अपनें राज्य में जबकि विद्वान ऋषि मुनि का सम्मान प्रत्येक राज्य मे होता है, यह कथन उनके चरित्र पर प्रकाश डालता है-

---

(1) दृष्टव्य-भागवत पुराण, मत्स्य एवं वायु पुराण।

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 348-49

मणि-मुकुट-भूषण उतार
चलना है शील नमित जन सा
अनुचित है वहाँ चमकना भी
सागर सस्मित सूर्यानन सा। (1)

श्रेष्ठ राजा - दुष्यन्त राज्य के कार्यकलापों में पूरा ध्यान देते थे, व्यक्तिगत कार्य बाद में, राज्य कार्य प्रथम महत्व के थे। ये भी उनके चरित्र का महत्वपूर्ण पक्ष था। शकुन्तला के प्रेमानुरोध को भी राज्य कार्यो के ऊपर हावी नहीं होने दिया-

माना न उन्होनें दो दिन भी
रूकजानें का प्राणानुरोध
कैसा था उनका राज्य कार्य
में थी शासन विधि से अबोध। (2)

प्रेमी रूप में - दुष्यन्त जिस तरह राज्य कार्य और अन्य कार्यो में निपुण थे, उसी प्रकार प्रेम कार्यो में भी निपुण थे। दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला को पहली मुलाकात में ही अपना दीवाना वना देना, तथा शकुन्तला का प्रथम मुलाकात में ही दुष्यन्त को अपना सर्वस्व समर्पण कर देना और शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त से दो दिन और रूकनें का आग्रह करना दुष्यन्त की प्रेम कला मे निपुणता में पुख्ता प्रमाण है-

जिस दिन माली मेरे वन से
दो फूल हिलाकर चले गये,
लगता था सजल-सजल लोचन।
अपनी ही छवि से छले गए।।(3)

द्विविधाग्रस्त - दुष्यन्त शकुन्तला और वसिष्ठ के बीच दुविधा से ग्रस्त कई वार दिखाये गये हैं। एक तरफ पत्नी और दूसरी तरफ गुरू वसिष्ठ। प्रथम वार तो यही दुष्यन्त दुविधा ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं, जब वसिष्ठ शकुन्तला को पत्नी बनाने का विरोध करते हैं

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 353
(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 364
(3) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 364

और दूसरी बात गणमन्त्र के विषय में दुविधा में फँसे दिखाई देते हैं :-

उधर मौन विडोह मूक दुष्यन्त हृदय में
अटकी-सी आँखे अतीत के विपिन प्रणय में
तरुणाई की दृष्टि उगलती-सी स्मृति सुषमा
मिली वही भी नहीं प्रिया की कोई उपमा।। (1)

शकुन्तला के प्रति अनन्य - दुष्यन्त शकुन्तला से बहुत अधिक प्रेम करते थे, लेकिन गुरू वसिष्ठ के इस प्रश्न ने कौन इसके माता पिता है? दुष्यन्त के प्रेम में जंजीर के समान था। लेकिन विश्वामित्र की यह घोषणा कि शकुन्तला मेरी पुत्री है दुष्यन्त के प्रेम को सार्वजनिक प्रकट कर देनें के लिए पर्याप्त है-

हर्षवन्त दुष्यन्त किन्तु सजला शकुन्तला
मुख सरोज पर अस्ताचल की सौम्य शशि कला
अन्तः-पुर आनन्द-सरणि पर चारु चरण गति
शिव ज्यों निज अनंग के संग रूप रति।। (2)

समस्या ग्रस्त दुष्यन्त :- राजा वही सफल होता है जो जनता की समस्याओं को अपना समझे और उनके निदान हेतु यथासम्भव उपाय करें। दुष्यन्त अपनी प्रजा की समस्याओं को भली भाँति समझते हैं और उनके निदान हेतु यथाशक्ति कार्य करतें हैं-

पर *अकाल अशंका से नृप चिन्तित-चिन्तित*
अन्नहीन जन-मन उजड़े खेतों सा क्रन्दित। (3)

गुरू के प्रति दुष्यन्त के सम्मानित भाव दुष्यन्त अपनें गुरू का अत्यधिक सम्मान करतें हैं, यह सम्मान भाव कई स्थानों पर दिखायी देता है प्रथम वार तब जब शकुन्तला राजभवन में आती है और गुरू वसिष्ठ उसका विरोध करते हैं तब दुष्यन्त शकुन्तला के प्रति अनन्य प्रेम का भाव रखते हुए भी गुरू के सामने कुछ भी नहीं कह पाते और दूसरी बार तब जब गणमन्त्र की चर्चा पर शकुन्तला और वशिष्ठ के विचारों में विरोध होने पर

---

(1) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 411
(2) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 415
(3) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 426

भरत द्वारा भावुक होकर शकुन्तला के विचारों का समर्थन करना और दुष्यन्त द्वारा भरत को डाटना, यह प्रमाणित करतें हैं कि उनके हृदय में गुरू के प्रति आसीम सम्मान की भावना है–

दुष्यन्त घोषः चुप रहो भरत!
पूजो नित राजपुरोहित को
माता को ही तुम मत देखो
देखो तुम अपने हित को। (1)

दुष्यन्त का विरही रूप :– जब दुष्यन्त को विरही अवस्था में छोड़कर चली जाती हैं, तब दुष्यन्त अवने को वहुत अकेला व असहाय समझते हैं। शकुन्तला की कमी उन्हे बहुत खलती है और अपने जीवन से बहुत निराश हो जाते हैं :–

उदधि उत्ताल सन्ध्याकाश के विरहि
उमड़ते बादलों का एक झोंका हूँ अकेला
निशा में फड़फड़ाते श्वेत डैने जिसे नयन के
उसी संशय समीक्षा की उदित में चन्द्रवेला। (2)

दुष्यन्त पश्चाताप :– भूल करना कोई गलती नहीं, भूल को स्वीकार न करना ही सबसे वड़ी गलती है। दुष्यन्त अपनी पूर्व की सम्पूर्ण गल्तियों पर प्रायश्चित करते हैं। राज्य के प्रति की गई गल्तियाँ परिवार के प्रति की गई भूलों का वह प्रायश्चित इन शब्दों में करते है–

नहीं अधिकार चन्द्रा चिन्तना का क्रूर मन को,
समय की चूक से मैं आत्म कुंवित हो गया हूँ
क्षमा करना मुझे इतिहास, मेरी मूर्खता पर
धधकती आग पर आँसू बहा कर सो गया हूँ। (3)

---

(1) महाभारती, त्रयोदश सर्ग पृ0 483
(2) महाभारती, चतुर्दश सर्ग पृ0 485
(3) महाभारती, चतुर्दश सर्ग पृ0 487

गणमन्त्र के समर्थक दुष्यन्त पहले गणमन्त्र के विरोधी थें, क्योंकि उन पर गुरू वशिष्ठ का विशेप प्रभाव था, लेकिन कुछ समय पश्चात उन्हे अपनी भूल का अहसास हुआ और वे गणमन्त्र के विचारों का समर्थन करनें लगे-

समझ में आ रहा गणमन्त्र विश्वामित्र का अब
विक्रेन्द्रित विष्णुता से ही विधाता न्याय सम्भव
हृदय में हो रही विश्वास की जय घोषणा यह
कि समता मार्ग पर ही शब्दवाणी का अमृत रव।। (1)

दुष्यन्त ने गणमन्त्र के कट्टर समर्थक बन जाते हैं और यह कहनें लगतें हैं-

विमल उस की मैं वन्दना करता अभी से
नमन हे शारदा-सम्पन्न भूतल के भविष्यत
दया मय काल! कितनी देर हैं उस महोदय में?
झुकाता कल्पना युग चरण पर मैं आज मस्तक। (2)

विश्वामित्र का चरित्र-चित्रण

विश्वामित्र पुरू वंशी महाराज गाधि के पुत्र एक प्रसिद्ध ब्रम्हर्षि जो क्षत्रिय होते हुए भी अपने तपोवल से ब्रम्हर्पियों में परिगणित हुए थे। इनका क्षत्रिय दशा का नाम विश्वरथ था। पर ब्राम्हणत्व करने पर यह विश्वामित्र के नाम से विख्यात हुए। इनकी साधना से चितिंत होकर ही इन्द्र ने रम्भा और मेनका को भेजा था।

तेजस्वी रूप :- विश्वामित्र बाल्यकाल से तेजस्वी रूप में सामने आये हैं। उनका जीवन अनुशासन से पूर्ण था। अपने जीवन में उन्होंने ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन किया था। जिसके कारण उनके मुख मण्डल पर एक विशेष आभा हमेशा फैली रहती थी -

गैरिक संयम से अनुशासित था युवा-काल
ज्यों राग-नियंत्रित स्वर-संलग्न मृदंग ताल
चितवन-दर्पण में अनुरंजित नित प्रभा-चित्र
उन्नीति दृष्टि संकल्प बना था प्रकृति-मित्र।(3)

---

(1) महाभारती, त्रयोदश सर्ग पृ0 494

(2) महाभारती, त्रयोदश सर्ग पृ0 495

(3) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 137

विश्वामित्र के शरीर में पिता का तेज स्वाभाविक रूप से विद्यमान था। तथा माता की चेतना विद्यमान थी जिसके कारण उनका जीवन सुगन्धित हो रहा था –

मेरे शोंणित में पितृ-तेज का अनल-राग
अन्तर-उत्पल में मातृ-चेतना का पराग
दोनों की ज्योतिर्जय से श्री-शिल्पित शरीर
में विश्वप्रेम के लिए बना विप्लवी वीर।(1)

आदर्श विद्यार्थी – विश्वामित्र गुरुकुल के आदर्श विद्यार्थी थे। राजकुमार होने के पश्चात् भी वे गुरुकुल के नियमों का पूर्ण पालन करते थे। अन्य गुरुकुल के सहपाठियों की तरह वह भी आश्रम के सभी कार्यो को स्वयं करते थे –

हूँ राजपुत्र, इस प्रमद प्रश्न का नहीं ध्यान
सहपाठी-साथी सचमुच भ्रातानुज-समान
पर्णासन पर ही पंक्तिबद्ध श्रुति-शास्त्र पाठ
वसनों में कहीं नहीं किंचित् राजसी ठाठ।(2)

विश्वामित्र अपने गुरु की सेवा में कभी पीछे नहीं रहे। गुरु की सेवा हमेशा उन्होंने तन, मन से समर्पित भाव से की है तथा आश्रम के नियमों का पूर्ण पालन किया है –

मैं बाल्यकाल से उस आश्रम का आकर्षण
विद्या-विवेक से सूर्योदित नित् सागर-मन
सीखी गुरुकुल में प्राणायाम-कठिन मुद्रा
कानन में कभी नहीं उभरी इच्छा क्षुद्रा
ऋषि-सेवा में पीछे न किसी से रहा कभी
अभ्यागत के दुख को न आज तक सहा कभी
विपरीत परिस्थितियों में भी दैनिक किरण-कार्य
कंटकी केतकी-कष्ट शिशिर सा सिरोधार्य। (3)

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 136
(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 139
(3) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 135-139

वीर रूप में – विश्वामित्र बचपन से ही वीरता के पर्याय रहे हैं। वीरता उनके रग-रग में समाई हुई थी। वह किसी भी संकट के आने पर पीछे नहीं हटते थे, उसका वीरतापूर्वक सामना करते थे –

उठ लौह विश्वरथ! उठ, मैं तेरा क्षात्र धर्म
कहता हूँ करने को वीरोचित शौर्य-कर्म
तू देख रहा सन्ध्या-तारा दुर्बल दृग से?
रे सिंह डर रहा है तू क्या कपटी मृग से? (1)

शम्बर राक्षस द्वारा बन्दी बनाये जाने पर वह अपने आप को धिक्कारते हैं कि –

उठ ! उठ! उठ! भुज में भर शोणित-सामरिक आग
तू सूँघ रहा अब तक केवल कलिका-पराग?
तेरा रिपु क्रूर दुर्ग पति ही! जानता नहीं?
क्यों मेरी नन्हीं बात आज मानता नहीं? (2)

इसी वीरता के कारण वह शम्बर राक्षस का वध कर देते हैं –

शस्त्रास्त्र-तड़ित-गर्जन-तर्जन, कर्कश घर्षण
टंकार-क्रुद्ध हुँकार, खड्ग-रव खट-खुट् खन्
रक्ताभ प्रात में ऊधिरावृत्त-सा शम्बर-शव
प्रत्यक्ष दृष्टि को प्राप्त समर-नश्वर अनुभव।। (3)

पितृ रूप में – विश्वामित्र और मेनका के संयोग से जिस शकुन्तला का जन्म होता है वह अपने माता-पिता दोनों की परिस्थितियों के कारण उसका पालन कण्व ऋषि करते हैं। क्योंकि विश्वामित्र लोक साधना के लिए तपस्या करने के कारण उसे स्वीकार नहीं कर पाते और मेनका स्वर्ग लोक की अप्सरा होने के कारण उसे अपने साथ स्वर्ग नहीं ले जाती। विश्वामित्र कहते हैं –

मैं असमर्थ ग्रहण करने में! कर न कलंकित तन हे!
स्वयं इसे ला जा सुदूर जीवन की ज्योति-किरण हे।

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 164

(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 164

(3) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 135

क्षमा, क्षमा, शिशु-जननि-क्षमा! अब मुझे मौन रहने दे।
आत्म-चेतने! अब प्रकाश-धारा पर ही बहने दे। (1)

लेकिन जब शकुन्तला के विवाह करने योग्य उम्र होती है तव वह अपने पितृ-कर्तव्य को भूलते नहीं है और वही दुष्यन्त को शिकार खेलने की प्रेरणा देते हैं। विश्वामित्र शकुन्तला को अपनी भुजाओं में भरकर वात्सल्य की धारा प्रवाहित कर देते हैं-

भर लिया भुजाओं में ऋषि ने
जाने की बेला आते ही
वे चले गये पर, कुछ दिन तक
ये प्राण रहे अकुलाते ही!
वे पितृतुल्य भर गये भाव
वात्सल्य-विभा से मैं विभोर।(2)

ऋषि विश्वामित्र ने ही दुष्यन्त को आखेट की प्रेरणा दी थी।

स्मरण विश्व-ऋषि कौशिक की आखेट-प्रेरणा
उसी आत्म-आग्रह में क्या वन-घटित भावना?
किस विदग्ध जन को भेजू मैं उनके सम्मुख?
मिट सकता उनके शुभागमन से मेरा दुःख।(3)

विश्वामित्र सभी के सामने यह स्वीकार करते हैं कि -

बोले! विश्वामित्र : कुन्तला मेरी कन्या
अपरिचिता यह स्वर्ग-मर्त्य सुषमा से धन्या
देखा जिस दिन इसे महर्षि कण्व के वन में
स्वयं जनक दायित्व भर गया मेरे मन में। (4)

---

(1) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 332-333
(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 343
(3) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 412
(4) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 414

दीन दुखियों की सेवा :- विश्वामित्र कभी भी दीन दुखियों के दुख को सहन नहीं कर पाते वह चाहे त्रिशंकु हो या अन्य कोई -

अभ्यागत के दुःख को न आज तक सहा कभी। (1)

विश्वामित्र कहते हैं -

मैं देख रहा हूँ विगत काल का प्रिय प्रवाह
मेरे अन्तर में अमिट विश्व करूणा अथाह।(2)

त्रिशंकु उनसे सदेह स्वर्गलोक जाने की कामना करता है विश्वामित्र उसके दुख से द्रवित हो जाते हैं -

सुन त्रिशंकु-प्रणम्य वाणी सजल में
आत्म विश्लेषण कर में अटल में
जा त्रिशंकु सदेह सुरपुर-धाम तू
कर वहीं इच्छित अभय विश्राम तू। (3)

प्रमुख स्त्री पात्रों का चरित्र-चित्रण

उर्वशी का चरित्र-चित्रण

पुरूरवा और उर्वशी की प्रेम कथा विभिन्न पुराणों में वर्णित है। स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी भाग्य वश राक्षस के चंगुल में पड़ जाती है। तभी पुरूरवा उसकी रक्षा करते हैं। और इस प्रकार पुरूरवा के पुरूषोचित सौन्दर्य एवं वीरता को देखकर उर्वशी अपना हृदय हार बैठती है कालक्रमानुसार वह धरती में आकर पुरूरवा से अभिसार करती है।

महाभारती में उसके चरित्र के अन्तःब्राह सौन्दर्य को बड़े मार्मिक ढंग से निरूपित किया गया है।

अपूर्व सुन्दरी :- महाभारतीकार नें पुरूरवा के ब्राह सौन्दर्य में अंग प्रत्यंग का उल्लेख न कर उसकी देह, कान्ति, यौवन जनित छटा, लावण्य और देह गंध का उल्लेख किया है।

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 139

(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 159

(3) महाभारती, अष्टम सर्ग पृ0 282-83

जल दर्पण में उभरी निखरी बिखरी छाया,

अपनी ही छवि पर हुई मुग्ध अपनी माया।

भर गयी श्वांस में इतनी इतराती सुगन्ध,

अपनी ही आँखों से आँखें हो गयीं अंध। (1)

अप्सरा संग में आकर्षण रस पीती सी,

आनन्द अमृत पीकर भी आँखें रीती-सी।

उड़ता आँचल उड़ गया चपल दोपहरी में,

रूक गये चरण सौरभ की चंचल लहरी में।(2)

उर्वशी असुर को देख भयभीत हो जाती है वह तिमिरेन्द्र को डाँटती हुई कहती है –

मत छू मेरी छाया तिमिरेन्द्र दूर ही रह

मत कह, मत कह, मन की दुर्बलताएं, मत कह।

सौन्दर्य दिव्यता हरण न कर निज तम बल-से,

कैसे आया तू यहाँ वृत्त-विगलित छल से? (3)

अचानक पुरूरवा के आगमन से वह राक्षस भयभीत हो गया उसके तीक्ष्ण वाणों को सहन न कर वह भाग गया।

प्रेमिकारूप – उर्वशी और पुरूरवा का अनुराग प्रथम दर्शन जन्य है। पुरूरवा के साहस पर मुग्ध उर्वशी कहती है –

मिल गया अपरचित का परिचय जिज्ञासा से

मैं लजा गई खिलती कलियों की भाषा से

तम से विमुक्त तन में फिर पूर्व तरंग उठी

लज्जामृत से झंकृत माधवी उमंग उठी। (4)

प्रेमिका उर्वशी के नेत्र चकोर पुरूरवा के मुखचन्द्र की ओर टकटकी लगा बैठे, अपने

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 74

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 73

(3) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 75

(4) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 77

कोमल मनोभाव सात्विक अभिलाषाये उर्वशी के मन को आन्दोलित करने लगी।

क्या करूँ! सम्भालूँ कैसे उर पर नयन-सुमन
अनुरूप रूप सम्भार लिए लज्जित लोचन
अधरों पर मौनाक्षर, मन पर सुर-धनु-वितान
वाणी-विहीन क्षण में यौवन इंगित-प्रधान। (1)

उसके पलकों में लज्जा का भार देह में मधुर कम्पन और स्पर्श से वह विवश हो गयी।

बंध गयी देव सुन्दरी मनुज-भुज में सहर्ष,
विजयी शोणित नें किया सुधा का प्रथम स्पर्श
प्रस्फुटित नयन, प्रस्फुटित प्राण, मुद्रित मिलाप
सह गई स्वर्ग-सुषमा निसर्ग का निशा-ताप! (2)

और उर्वशी पुरूरवा के रूपाकर्षण में बँधी विवश हो स्वर्ग लौट गयी।

नृत्य कला प्रवीण :- पुरूरवा के सुखद साहचर्य मधुर मिलन मादक स्पर्श की सुरभि से हिन्दोलित उर्वशी का मन भटकने लगा। स्वर्ग में नृत्य के लास्य प्रयोग में वह कुछ असावधान हो गयी, किन्तु नृत्य की भंगिमा और हृदय के अनुराग में जो द्वन्द्व छिड़ा वह उसके बारीकियों को प्रकट नहीं कर सका। रामावतार पोद्दार ने लिखा है :-

अलगति कवि गति में लचक लोच का कलाभाव,
उताल ताल आरोहण कोशलय पथ पड़ाव
भुजभ कृति गीत अभित्यर्जन रण में अनुचित स्वन।
पद्मार्पित प्रतिमा-स्कन्ध-भाव में ऊर्ध्व स्खलन।
नासिका-नयन-मधुराधर-मुख-मुद्रा अभंग।
यति-गति-प्रसंग-रति-प्रणति-भाव-द्युति निस्तरंग।
आनन्द-अलंकृत-झंकृति में झक-झिझक-झीम।
द्रिम-द्रिम मृदंग-रव में ज्यों असमय द्रिमिर-द्रीम।(1)

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 78

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 79

(3) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 83

तात्पर्य यह है कि नृत्य प्रवीणा उर्वशी स्वरलय नटिनी अभिव्यंजनाएं तो शास्त्रानुकूल कर रही थी पर मुद्राओं में वह चमत्कार नहीं था, प्रच्छन्न अलस भाव रह-रहकर पुरूरवा की स्मृति से वह पथ-भ्रष्ट हो गयी। परिणाम स्वरूप गुरू भरत ने उसे शाप दे दिया वे उसे पृथ्वी जाकर अपने प्रिय की प्राप्ति और पुत्रवती होने का आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

उर्वशी का पत्नी रूप – इन्द्र प्रिया उर्वशी शाप भ्रष्ट हो पुरूरवा के पास आयी, यहाँ आकर उसने पुरूरवा के आदर्श दाम्पत्य रूप को देखा। पुरूरवा की महारानी औशीनरी पति प्रेम वंचिता थी। उर्वशी उसके दुःख को नहीं देख सकी वह कहती है –

मैं स्वर्ग-नर्तकी-सुर-गणिका, वह पतिव्रता।
वह प्राण-वल्लरी किन्तु उर्वशी अमरलता।
रक्षा करनी है मुझे व्योम-मर्यादा की।
मैं नहीं देख सकती नारी-दुःख की झाँकी।।(1)

वह मेनका से कहती है कि यदि मेनका ने धरित्री को दुहिता प्रदान की है तो उसने आयु के रूप में सुपुत्र का दान किया है। और इस प्रकार उर्वशी-पुरूरवा के प्रेम को लेकर स्वर्ग वापस लौट आयी।

तात्पर्य यह है कि इस प्रणय गाथा में उर्वशी स्वर्ग अप्सरा, कोमलांगी, लज्जाशीला, प्रेमिका और आदर्श सौत के रूप में उपस्थित हुई है जिसके अन्दर मातृत्व, मर्यादा, परदुःख कातरता का भाव छिपा हुआ है।

रोहिणी का चरित्र-चित्रण –

सुन्दरी रोहिणी – रोहिणी दक्ष प्रजापति की पुत्री थी। सत्ताईस नक्षत्रों में से यह चौथा नक्षत्र है। रोहिणी अत्यन्त रूपवान और सभी गुणों से युक्त भारतीय संस्कारों से ओत-प्रोत, मर्यादा का पालन करने वाली थी। रामावतार पोद्दार जी ने रोहिणी की सुन्दरताा का वर्णन थोड़े ही शब्दों में इस प्रकार किया है –

रोहिणी-मुख-श्री-अंकित आँखे मुसकाई
हर्षित अगस्त्य-लोपामुद्रा-रोहिणी सभी
ऐसी प्रफुल्लता गुरुकुल में देखी न कभी। (2)

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 90

(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 169

रोहिणी को देखकर विश्वामित्र के हृदय में उनकी सुन्दरता एक अजीब प्रभाव उत्पन्न कर देती है जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है।

जिस दिन साँसों में उतर गई उसकी सुगन्ध

हो गये रूप के इन्द्रजाल में नयन अन्ध

पढ़ लिया दृष्टि ने अलिखित यौवन-ज्योति-शास्त्र

रखता मन-मथ ही ऐसी शोभा का विभास्त।(1)

कवि ने रोहिणी को एक स्वर्ग लोक की अप्सरा के रूप में भी चित्रित किया है।

आत्मजा रोहिणी एकाकी स्मृति-प्रभा-मधुर

वह बिल्व-स्तना चुप रहने वाली चंन्द-कान्ति

निश निर्जनता में उसे देख अप्सरा भ्रान्ति।(2)

पतिव्रता – रोहिणी भारतीय आदर्शों से पूर्ण पतिव्रता नारी थी। पति के कर्तव्यों में पूर्ण सहयोग करने वाली थी। स्वामी की तपस्या में वह अमूर्त रहकर भी पूर्ण सहयोग करती है। रम्भा और मेनका को वह अदृश्य रूप में चेतावनी देती है कि विश्वामित्र की तपस्या भंग करने की कोशिश न करे। अन्यथा परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहे।

सावधान मेनके! महामुनि को न स्पर्श करना तू।

इन्द्रिय छल बल के प्रयोग से अयि अप्सरि ! डरना तू।

भूतल की नारीत्व-अग्नि मैं, तुझे भस्म कर दूँगी।

तेरी काम कला में अपनी पवित्रता भर दूँगी।(3)

रोहिणी मेनका से बताती है कि मैंने ही रम्भा को यहाँ से जाने के लिए वाध्य किया था–

सावधान, रम्भा को मैने वाध्य किया जाने को।

मैं न कहूँगी तुझे कभी तप-तन्द्रा तक आने को।।(4)

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 143

(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 143

(3) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 302

(4) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 303

प्रेत योनि में रोहिणी – रोहिणी एक दुर्घटना का शिकार हो जाती है जिसमें उसकी मृत्यु हो जाती है और उसका अन्तिम संस्कार नहीं हो पाता जिससे वह प्रेत योनि में पहुँच जाती है और उसी में भटकती रहती है अपनी मुक्ति के लिए, लेकिन प्रेत योनि में होने के बाद भी वह पति के कार्यों में पूर्ण सहयोग करती है –

हुआ न इति-संस्कार! गृध्रगण का प्रसन्न शव-भक्षण
क्षुधित शकुनि ले गये नोंच कर स्मृति अंकित मृतलोचन
अस्थि पुंज अक्षुण अभी तक उस दुर्घटना-स्थल पर
अन्तिम कंठस्वर अनुगूँजित सर्पिल निर्झर-जल पर। (1)

वह उस घटना का भी जिक्र करती है जिसके कारण वह प्रेत योनि में पहुँच गयी–

स्वयं गिरा दी क्रुद्ध काल ने मुझ पर दो चट्टानें
मृत्यु-पूर्व में पति-प्रकाश-हित लगी बहुत अकुलाने
रूप नाश से किन्तु भग्न हो सकी न परा-तपस्या
सुलझाई अदृश्य में रहकर मैंने दृश्य समस्या। (2)

सौत के प्रति भी स्नेह पूर्णता का भाव – रोहिणी अपनी सौत के प्रति भी स्नेह का भाव रखती है वह यह अभिलाषा करती है कि जो कार्य मैं नहीं पूरा कर सकी, वह मेरी सौत कर सकती है। लेकिन पति की तपस्या में व्यवधान डाले बिना वह मेनका से कहती है –

जा रही मैं, तू भूतल से रिक्त नहीं जायेगी।
तपोभूमि तेरे प्रकाश से कुछ भी तो पायेगी।
सम्भव है, पूरी हो मेरी भी तुझसे अभिलाषा
लो मै ऊपर उठी लिये सौन्दर्य-अलंकृत आशा।(3)

रोहिणी मेनका के प्रति स्नेह पूर्णता का भाव प्रदर्शित कर वहाँ से अदृश्य हो जाती है और मेनका के प्रति उदारता का भाव रखती है –

---

(1) *महाभारती, नवम सर्ग पृ0 303*
(2) *महाभारती, नवम सर्ग पृ0 302*
(3) *महाभारती, नवम सर्ग पृ0 304*

नीलकिरण सी एक लहर छिप गयी मुख निर्झर में

नील हो गयी दिव्यआत्मा ज्योंही असीम अम्बर में।

उडते आत्मपंख को मन की देवी ने भी देखा

परा-संतरण से खिंच जाती शुभ्र रश्मि सी रेखा। (1)

प्रेमिका रूप :- रोहिणी का विश्वामित्र से आत्मिक लगाव था, वह विश्वामित्र से मूक प्रेम करती थी। जिसे वह कभी खुलकर व्यक्त नहीं करती। अन्दर ही अन्दर उस प्रेम का अनुभव करती है -

लोपामुद्रा पहचान गयी रोहिणी भाव

पीयूषी प्रीति नहीं रखती कल्मष दुराव

रोहिणी मूक महिमा की रचती रही गीति

लक्षित भविष्य का संकल्पित वह स्नेह सेतु।3

विश्वामित्र के विंध्याचल जाने के कारण वह उदास और दुःखी रहती थी -

रोहिणी अकेली हरित दूक-सी स्मरण-व्यस्त

भीगे नयनों से सटी-सटी सुधियाँ समस्त।

वातायन से देखी थी मैने सजल सृष्टि

कोमल कपोल तक उतर चुकी थी करूण दृष्टि।(3)

मेनका का चरित्र-चित्रण

मेनका स्वर्ग लोक की एक प्रसिद्ध अप्सरा है। जिसे इन्द्र भूलोक में महर्षि विश्वामित्र की तपस्या को भंग करने के उद्देश्य भेजते हैं। वह अपने उद्देश्य में सफल भी होती है। लेकिन उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के प्रयास में एक सुन्दर पुत्री को जन्म देती है। जो शकुन्तला के नाम से इतिहास में जानी जाती है। मेनका शकुन्तला को वन में छोड़कर पुनः स्वर्गलोक वापस लौट जाती है। रामावतार जी ने मेनका के चरित्र

---

(1) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 304

(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 143-44

(3) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 150

को वहुत ही आकर्षण ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। इसी सन्दर्भ में मेनका के चरित्र के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करेंगे।

अनिद्य सुन्दरी :- मेनका स्वर्गलोक की अप्सरा है वह अत्यन्त रूपवती और सर्वगुणों से परिपूर्ण है। रामावतार जी ने मेनका के सुन्दर रूप का इस प्रकार वर्णन किया है।

कलापूर्णिमा की कविता मय उर रस पीने वाली।
बड़ी-बड़ी आँखो वाली मैं शशि गन्धी अँधियाली।
रोम-रन्ध्र से सुरभि निकलती प्रातिभ नन्दन वन की।
मैं प्रसन्न-कामना-मुधरिमा-झुनझुन काम क्वणन की।(1)

मेनका अपनी उत्पत्ति का रहस्य खोलते हुए बताती है कि जब से सृष्टि का आरम्भ हुआ है तभी से मैं विद्यमान हूँ।

सृष्टि-कल्पना की समाधि से निकली पूर्व किरण सी।
तन के वनने से पहले मैं वनी अप्सरा मन की।
झरती रहती रश्मि यूथिका मेरी ज्योतिः स्मिति से।
नीरष मन में भी पावस रस मेरी श्रुति-झंकृति से।(2)

प्रेमिका रूप :- मेनका स्वर्गलोक से तो विश्वामित्र की समाधि भंग करने के उद्देश्य से पृथ्वी लोक में पदार्पण करती है लेकिन भू-लोक आने पर वह समाधि भंग करने के पश्चात् विश्वामित्र से प्रेम करने लगती है। -

बिसर गई मेनका कि कोई अन्य स्वर्ग भी ऊपर
रही विचरती पुरुष संग वह ऐच्छिक पुष्पित भू-पर।
आकर्षण के मोह पाश में बन्धित है नर-नारी।
धूप-छाँह सी प्राण-भावना कुछ गोरी कुछ कारी।(3)

मेनका विश्वामित्र के प्रेम में स्वर्ग लोक को भूल जाती है और उसे रात्रि में भी नींद नहीं आती।

---

(1) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 291
(2) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 292
(3) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 321

नित निद्रित प्रिय पुरूष किन्तु निद्रित न मेनका लोचन
कभी विलोकित प्रात कभी संध्या रंजित रोमिल घन।
नयनों में नक्षत्र तारिकाएँ नित मुस्काती सी।
नील मंत्र के मूक पाठ से श्रुति-सुधि अकुलाती सी।(1)

सृष्टि के संचालक के रूप में मेनका :- मेनका इस सृष्टि का संचालन भी करती है वह कहती है कि इस सृष्टि का संचालन मैं अपनी ही इच्छा से करती हूँ।

मेरी मनोकिरण से चंचल-चंलल मंगल प्राणी
जीवन जहाँ-जहाँ उस जग की मैं अब कुसुम कहानी।
उज्जवल उल्का नृत्य चकत्कृत कभी व्योम के पथ में।
चुम्बक आकर्षण है मेरे मन के उडते रथ में।। (2)

पृथ्वी के आदर्शों के प्रति मोहित मेनका :- मेनका पृथ्वी के गुणों से आदर्शो से बहुत ही प्रभावित है। पृथ्वी की नारी की महत्ता के प्रति, त्याग, समर्पण भावना के प्रति वह बहुत ही आकर्षित होती है।

देवांजलि अर्पित हे जीवन की ज्योर्तिमयि जननी।
नर-नारी आत्मानुबंधिता धन्य-धन्य हे धरिणी।
सब कुछ सुरपुर में परन्तु त्यागानुराग तो भू पर
इच्छा होती, अब न यहाँ से जाऊँ फिर मैं ऊपर।(3)

मेनका को भू-लोक से वापस जाने का बहुत ही दुःख है। इसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है -

पर, मैं तो सुर-वचन बद्ध, कब तक मैं यहाँ रहूँगी
जब तक रहना पड़े, स्वयं सुख-दुख का सहन करूँगी।
किन्तु मुझे अमरत्व प्राप्त भू-स्वाद नहीं मिल सकता।
मेरे मन में मात्र मधुर आनन्द-सुमन खिल सकता।। (4)

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 321
(2) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 295
(3) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 305
(4) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 305

अमूर्त रूप धारण करने की शक्ति - मेनका स्वर्ग लोक की अप्सरा होने के कारण सूक्ष्म रूप धारण करने की कला में निपुण है। वह सूक्ष्म रूप धारण कर विश्वामित्र के मन के अन्दर प्रवेश कर जाती है और विश्वामित्र के समाधिस्थ मन को विचलित करने लगती है और उनकी समाधि भंग कर देती है।

हुई प्रविष्टि मोहिनी उर में विकल कामना लेकर
शक्ति विहीना हुई स्वयं वह सब कुछ अपना देकर
व्याप्त हुआ ब्रह्मर्षि बदन में वशीकरण उस मन का।
किन्तु अर्ध परिणाम निकल पाया कामाकुल रण का।(1)

मातृत्व के रूप में - मेनका-विश्वामित्र के संयोग से जब शकुन्तला का जन्म होता है और मेनका को स्वर्ग से वापस होने का बुलावा आता है तब मेनका की आँखें पुत्री वियोग में छलछला उठती हैं। और उसे महान आत्मिक कष्ट होता है। उस कष्टप्रद वेला का वर्णन रामावतार जी ने इस प्रकार किया है -

स्वयं शारदा या कि मेनका ऋषि समक्ष जब आयी।
सह न सकी उन्नति आँखें स्नेहिल सदेह पर छाई।(2)

मेनका भू-लोक से स्वर्ग वापस लौट जरूर जाती है मगर अपनी पुत्री शकुन्तला की रक्षा अमूर्त रूप में हमेशा करती रहती है। किसी भी संकट के समय वह पुत्री से अलग नहीं होती।

मुझे खींचकर उस दिन किसने बचा लिया था?
गिरते-से वट की छाया से हटा लिया था?
विद्युत वसना-सी वह थी क्या कोई नारी?
क्या अदृश्य मेरी जननी थी वही विचारी।(3)

सारांश यह है कि मेनका के चरित्र के सभी पक्षों का उद्घाटन रामावतार जी ने किया है। मेनका स्वर्गलोक की अप्सरा होने के पश्चात् भी भू-लोक के आदर्शों से प्रभावित

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 317

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 332-33

(3) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 421

है और वह अच्छी प्रेमिका, एक आदर्श माता तथा सृष्टि संचालक के रूप में अनिन्द्य सुन्दरी के रूप में उसके चरित्र के विभिन्न पक्ष महाभारती में उजागर हुए हैं।

शकुन्तला का चरित्र चित्रण

शकुन्तला स्वर्ग लोक की अप्सरा मेनका तथा विश्वामित्र की पुत्री थी तथा भरत की माता थी। मेनका इसे वन में छोड़ चली गयी और शुकन्त पक्षियों ने इसकी रक्षा की थी। इसी से शकुन्तला नाम पड़ा। यह कण्व ऋषि की पालिता पुत्री थी और राजा दुष्यन्त की पत्नी थी और दुष्यन्त से इसने प्रेम विवाह किया था और दुर्वासा ऋषि के शाप का शिकार भी हुई थी।

अनिंद्य रूपवती शकुन्तला :- शकुन्तला अनिंद्य रूपवती थी, रामावतार पोद्दार जी ने उसके सौन्दर्य का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है। शारीरिक सुन्दरता का माँसल सौन्दर्य का वर्णन न कर शकुन्तला के सूक्ष्म सौन्दर्य का वर्णन किया है। और अपना परिचय भी उसी के द्वारा प्रस्तुत किया है -

मैं किसी रूप-राका पथ के
पूर्णिमा-कुसुम की कविता-सी
मैं किसी अमर कवि के दृग से
निकली सुन्दरता-सरिता-सी! (1)

शकुन्तला जैसे-जैसे किशोरावस्था से युवावस्था की ओर बढ़ती जाती है उसमें नवीन परिवर्तन आरम्भ होने लगते हैं।

चू पड़ी अधर से सरस हँसी
आँखों में बिखरी अरूणाई
हो गई चरण गति कुछ चंचल
जब वयः संधि वेला आई। (2)

कवि ने शकुन्तला के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है -

कुसमालंकृत कुंचित सुकेश
शोभित तन पर मृगचम-वेश

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 334

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 337

मैं स्वयं सुमन-सुषमा-निकुंज

मैं स्वयं पुष्प पुलकित प्रदेश।(1)

प्रेमिका रूप – शकुन्तला दुष्यन्त से अत्यधिक प्रेम करती है और उसी प्रेम के कारण वह दुर्वासा ऋषि के शाप का भी शिकार होती है। दुष्यन्त शकुन्तला का प्रेम प्रथम दर्शनजन्य है।

दुष्यन्त से मिलने के बाद शकुन्तला के मन-मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ा उसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है –

आकर्षण की पहली आँधी

मन को मरोड़ कर चली गई।

मेरे यौवन के उपवन से

कुछ फूल तोड़ कर चली गई। (2)

शकुन्तला और दुष्यन्त प्रेम में जब एक दूसरे को समर्पण कर बैठते हैं और दुष्यन्त वापस अपने राज्य चले जाते है।। तब सखियाँ शकुन्तला से उसके और दुष्यन्त के मिलन के बारे में पूँछ्ती हैं –

मैं भूल गई उस क्षण सब कुछ

कुछ स्मरण रहे और कुछ स्मरण नहीं

रस में डूबे सुधि-चित्रों का

फिर बार-बार अनुकरण नहीं। (3)

लज्जा शील रूप में – शकुन्तला भारतीय नारी के सभी गुणों से ओत-प्रोत है, उन्हीं गुणों में से एक लज्जा है, जिसका पोद्दार जी ने बहुत सटीक वर्णन किया है। जब उसके पिता विश्वामित्र शकुन्तला के सिर पर हाथ रखते हैं तो वह लज्जित होकर अपने नेत्र नीचे कर लेती है –

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 340

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 355

(3) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 357

लज्जित लोचन झुक गये स्वयं

ज्यों मृदुल वृन्त पर सान्ध्य कमल।

निज रूप-प्रशंसित तुलना से

लज्जाकुल मुख निर्वाक् रहा

कहने की इच्छा हुई किन्तु

मैंने कुछ उनसे कहा नहीं। (1)

सखियाँ जब शकुन्तला से दुष्यन्त मिलन के वारे में पूँछती हैं तब वह लज्जा के कारण सखियों के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाती –

मत पूछ प्राण। रति प्रश्न मौन,

ये आँखे आज लजाती-सी

यौवन के प्रिय मर्मस्थल पर

विस्मृत सुधि-बिहगी गाती सी। (2)

अतिथि सेवा में निपुण :- शकुन्तला अतिथि सेवा में निपुण है वह कण्व ऋषि के चले जाने पर आश्रम के सम्पूर्ण कार्यो की देखभाल करती है। जव दुष्यन्त आश्रम में पध ारते हैं तब शकुन्तला स्वयं अतिथि सत्कार का कार्यभार सम्भालती है-

मुनि कण्व गये हैं सोमतीर्थ

देकर कन्या को अतिथि-भार।

स्वीकारों राजन्! शुभातिथ्य

हम भी गुरुकुल के ऋषि कुमार। (3)

पत्नी रूप में – शकुन्तला एक आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित हुई है। लेकिन वह पति से अपने विचार छिपाती नहीं है। रामावतार जी ने प्रथम रात्रि के मिलन का वर्णन इस प्रकार किया है –

कूक उठी यामिनी स्वयं श्रृंगार-सदन में।

समा गया रस-स्वर्ग किसी के तन में-मन में

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 342

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 363

(3) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 352

आलिंगन की रात प्रात की बात न जाने

नयनों की पूर्णिमा उषा को क्या पहिचानें! (1)

शकुन्तला-दुष्यन्त की प्रत्येक बात का समर्थन नहीं करती वह अपने पति से विचारों के मतभेद के कारण घर छोड़कर कण्व ऋषि के आश्रम में चली जाती है।

दुष्यन्त रोकते रहे उसे,

पर प्राण-चेतना नहीं रुकी

चरणों पर-पुत्र किरीट, किन्तु

सारश्वत नारी नहीं झुकी। (2)

ऋषि कण्व को आश्चर्य हो रहा था कि शकुन्तला नैतिक शिक्षा को कैसे भूल गयी, पति सेवा का व्रत उसे निभाना चाहिए था -

भूली कैसे वह ऋषि-शिक्षा?

नैतिक कर्तव्य हुआ क्यों क्षत?

टूटा कैसे -टूटा कैसे-

स्वामी-सेवा का जीवन व्रत? (3)

प्रकृति प्रेम :- शकुन्तला को प्रकृति के प्रति भी असीम अनुराग था। वह स्वयं पौधों को सींचती थी। जानवरों को स्वयं चारा देती थी -

करती न कभी मैं अन्न ग्रहण,

सींचती न जब तक क्यारी को।

अर्पित करती मैं सलिल स्नेह

अपनी प्यासी फुलवारी को। (4)

पशु-पक्षियों से शकुन्तला को विशेष स्नेह था। पशु पक्षी भी उनसे भयभीत नहीं थे -

---

(1) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 416

(2) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 455

(3) महाभारती, त्रयोदश सर्ग पृ0 482

(4) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 345

कन्धे पर आ जाते कपोत

शुक उड़ आते हैं बाँहों पर

जाती हूँ जब असमय वन में

रोकते कलापी राहों पर। (1)

मातृरूप में – शकुन्तला का मातृरूप भी वहुत अच्छा है। वह अपने पुत्र भरत से बहुत स्नेह करती है, तथा उसके विषय में विभिन्न प्रकार के स्वप्न देखती है –

सोती शकुन्तला जब सुत के संग रात में,

भर देती वात्सल्य-सुधा उस पद्मगात में।

स्वप्न देखती वह कि भरत गुरुकुल में पढ़ता।

श्वेत अश्व पर बैठ, हरित गिरि पर भी चढ़ता। (2)

शकुन्तला का मातृ हृदय उसे स्वप्न में भी पुत्र के प्रति चिंतित किया करता है। वह नींद टूट जाने पर भरत के मुख को बार-वार निहारती है –

स्वप्न देखती माता पुत्र-विकास विभा का।

करती वह अनुमान भविष्यत की प्रतिभा का।

नींद टूट जाने पर निज प्रिय को निहारती।

दीप-दीप्ति-हित प्रतिहारिणियों को पुकारती। (3)

वियोगिनीरूप – शकुन्तला अपने पति के वियोग में वहुत दुःखी रहती है। दुष्यन्त उसे छोड़कर जब चले जाते हैं, तब वह रात-दिन उन्हीं की याद में वैठी रहती है। इसी वियोग के कारण ही दुर्वासा ऋषि उसे शाप दे देते हैं। शकुन्तला से दुष्यन्त आश्वासन देकर चले जाते हैं –

मेरी अनामिका में वे स्मृति –

मुद्रिका पिन्हा कर चले गये

प्रिय पुनर्मिलन आश्वासन के

दो शब्द सुनाकर चले गये। (4)

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 345

(2) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 422

(3) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 423

(4) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 364

शकुन्तला और दुष्यन्त की व्याकुलता का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है।

स्तब्ध-स्तब्ध दुष्यन्त, सिसकती-सी शकुन्तला

दीपशिखा सी काँप-रही सी देह उत्पला। (1)

स्वाभिमानी शकुन्तला - शकुन्तला स्वाभिमानी नारी है, वह अपना और अपने माता-पिता का अपमान सहन नहीं कर पाती जब वशिष्ठ दुष्यन्त से शकुन्तला को त्यागने का अनुरोध करते हैं, तब वह अत्यन्त क्रोधित दिखाई पड़ती है -

मृगदृग अमृत-विकल, अशोक-कम्पन शरीर में।

हँसती-सी अपमान-वेदना नयन नीर में।

सारस-लम्ब चंचु से ज्यों छुट जाती मछली

मौन कण्व-कन्या की स्मृति रह रहकर उछली। (2)

शकुन्तला स्वयं कहती है -

अपमान पिता का ही न मात्र,

मेरी अदृश्य जननी का भी

अपमान न ब्रह्म पुरुष का ही

प्रत्युत विधि-श्री-रजनी का भी। (3)

---

(1) महाभारती, द्वादश सर्ग पृ0 411

(2) महाभारती, दादशसर्ग पृ0 413

(3) महाभारती, त्रयोदश सर्ग पृ0 483

भारतीय आचार्यों के अनुसार विभाव, अनुभाव एवं संचारियों की समन्वित संचेतना के आधार पर रस निष्पत्ति होती हैं। किसी भी भावुक कवि की रचना में विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों का लक्षणानु धावन न होकर इनके पीछे गहन काव्यानुभूति का एक ऐसा अवकुंठित तथा स्वाभाविक स्रोत प्रभावित होता हैं, जो सहृदयों को भाव निमग्न करा देने में समर्थ होता है।

वाणी और अंगो के आश्रित अनेक अर्थो का अनुभावन कराने वाले विभाव कहलाते हैं, ये विभाव के कारक होते हैं। आलम्बन और उद्यीपन इनके दो भेद हैं, इनके ही सहारे रस की निष्पत्ति होती हें अर्थात् जिन पर अवलम्बित होकर भाव उत्पन्न होते हैं। वे आलम्बन विभाव हैं निमित्त रूप समग्र जिससे जागृत भाव अधिकाधिक उद्दीप्त होता हैं, उद्दीपन विभाव कहलाता है। जो भावों का कार्य करता हैं या जिनके द्वारा भावों का अनुभव होता हें उन्हे अनुभाव कहतें हैं। इनके चार भेद कहे गये है- कायिक, मानसिक सात्विक, और आहार्य। इसी प्रकार अस्थिर मनों विकारों या चित्तवृत्तियों को संचारी भाव कहा जाता हैं। इनकी संख्या 33 मानी गई हैं।(1)

श्रृंगार रस-

महाभारती में श्रृंगार रस के अनेक स्थल हैं कहीं शिव और पार्वती ,कहीं उर्वशी-पुरूरवा कहीं लोपामुद्रा-अगस्त्य, और कहीं मेनका-विश्वामित्र के प्रणय प्रसंगों की कवि ने बड़ी मार्मिक और रसपरक व्यंजना की है। आलम्बन रूप में पार्वती की कमनीयता प्रकृति के सुरभित कोमल दृश्य, समाधि से जागृत शिव के मन में काम का आवेग, कवि ने इस स्थल को पूर्ण श्रृंगार के रूप में अभिव्यंजित किया हैं-

अमृतांग अंग की शोभा स्मिति हो उठी मुखर
रूपामा में लहराई नव लावण्य लहर
कमनीय कान्त में उज्जयिनी रमणीय किरण
रसमय पराग-झंझा-प्रमत्त मदनीय वदन। (2)

प्रकृति के उद्दीपन रूप में कवि ने अशोक आम्रमंजरी, किन्नरी कंठ का कल्लोल्,

---

(1) विशेष अध्ययन के लिए रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण डा0 आनन्द प्रकाश दीक्षित।

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 66

गायन, सस्वर, निर्झर, प्रपात की ध्वनि अत्यन्त हृदय हरी रूप में वर्णित हुई हैं-

कल्पित अशोक प्रस्फुटित, आम्रमंजरी उदित
गुच्छित प्रसून से तरू प्रदेश आनँद नमित
किन्नरी कंठ कल्लोल दोल से वायु ध्वनित
पर्वत के पीछे कहीं-कहीं चल चरण वणित
पुष्पित प्रियाल के नीचे सुर वदित मृदंग
नर्तित स्वप्निल नट नटी ऐन्द्र गन्धर्व संग
उच्छल जन स्थल पर मृग विलास पिक तड़ित तान
प्रणयासुर पंक्षी के पंखों में नव उड़ान
सस्वर निर्झर जल आलापित पुलकित प्रपात
स्वर्गिक सुगन्ध सिंचित वसन्त सुन्दरी रात
झूमती डालियों की फूली फैली सुषमा
निरुपमा यौवन उमा-तपोवन की उपमा। (1)

इसी प्रकार द्वितीय सर्ग में उर्वशी और पुरूरवा की प्रणय गाथा वर्णित हैं राक्षस अपहृता उर्वशी को पुरूरवा ने संरक्षण दिया था, तदुपरान्त उर्वशी की लज्जा, व्रीडा, हर्ष आदि कायिक एवं सात्विक अनुभवों के साथ रोमांच आदि के द्वारा श्रृंगार रस व्यंजित हुआ है। सखी से पूछने पर सखी कहती हैं जिसमें उसके अनुभाव अभिव्यंजित हैं-

सखि पूछन तब क्या हुआ! मधुर वह आत्म कथा
भू रमणी ही अनुभव कर सकती प्रणय व्यथा
आ गई अप्सराएँ तब तक, जो थी ओझल
खिल गये अतिथि को देख समस्त कुमुदिनी दल
मिल गया अपरिचित का परिचय जिज्ञासा से
मैं लजा गई खिलती कलियों की भाषा से
तम से विमुक्त तन से फिर पूर्व तरंग उठी
लज्जामुत से झंकृत माधवी उमंग उठी। (2)

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 66

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 77

संयोग श्रृंगार का दूसरा स्थल अगस्त्य और लोपामुद्रा की प्रगय कथा से सम्वन्ध हैं। कवि ने आलम्वन के रूप में लोपामुद्रा का अत्यन्त रमणीय और मादक चित्र अंकित किया हैं।

आलम्वन के इस सौन्दर्य निरूपण की विशेषता यह हैं कि कवि ने परम्परित रूप से नारी अंगों के लिए प्रचलित अपमानों का नूतन प्रयोग किया हैं। कहीं मुख उसकी क्रोधाग्नि शारीरिक गन्ध इत्यादि का वर्णन किया हैं-

भ्रू-धनु-रक्षित दृगदल में शुभ्रा कान्ति सजल
उज्ज्वल मुखमण्डल अविकल ज्यों पूर्णेन्दु-कमल
ज्योत्स्ना-प्लवित सुर सरिता की सम्पूर्ण देह
आनन्द-तिरोहित अंग-अंग में अमृत स्नेह।
उमरे नितम्ब तक मायूरी घन केश व्याप्त
निर्दोष नारी रचना में विविध कौशल समाप्त
वह विल्व-स्तना चुप रहनें वाली चन्द्र कान्ति
निशि-निर्जनता में उसे, देख अप्सरा-भ्रान्ति (1)

कवि ने आलम्वन की चेष्टाओं विशेष रूप से कुछ मितिमो हायित किलकिंचित हास का भी वर्णन किया हैं-

लोपामुद्रा पहचान गयी रोहिणी-भाव
पीयूषी प्रीति नहीं रखती कलमष दुराव
पर, कभी-कभी उज्ज्व दृग में कज्जल पराग
कोपल-सम कोमल ओठों पर स्मिति का सुहाग।(2)

आश्रय अगस्त्य ने इस नयनोत्सव पर संयम नहीं रख सकें स्मृति, हर्ष, आवेग और उद्देग संचारी भावों से आश्रय के रस दशा की अभिव्यंजना हुई है -

मेरी तरूणाई पर फूलों की परछाई
अन्तर्मन में सुरभित विद्युत की अँगराई

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 142-43
(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 143

यौवन के निशा निमंत्रण से नव नयनोत्सव
मेरे मानस में उसका या इसका वैभव?
संयम संगम पर किस सुगन्ध का अणु-प्रहार?
मेरी आँखों में किस रहस्य का अन्धकार?
कैसी पुकार की किसकी मुग्धता प्राण व्याप्त
चंचल चितवन को हुई कहाँ की शक्ति प्राप्ति? (1)

सप्तम सर्ग में रम्भा और दैत्यराज का प्रणय प्रसंग श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक तो नहीं करता क्योंकि यहाँ आलम्वन और आश्रय की चित्तवृत्तियों का अन्तर हैं। अतः इस स्थल को हम रसाभास की संज्ञा दे सकते हैं। रम्भा के शारीरिक अंग सौष्ठ्व का चित्रांकन इस प्रकार हुआ हैं-

नख शिख तक रम्भा रागमयी,
वासन्ती आग परागमयी,
लोचन सुलम्ब
मणिमल विभूषित वक्षः स्थल
कर्णो में नीलतड़ित- कुण्डल
तनुः काम स्तम्भ
पीतेन्दु-प्रभा-परिधान रम्य
अदगि नग्न भू-भाव-क्षम्य
प्रिय कटि प्रदेश
कुसुमालंकृत कौशेय केश
लहराती-सी शोभा अशेष
मन मुग्ध वेश। (2)

कवि ने वासना विगलित क्षणों को भी सीमित क्रियाओं में बाँधकर इसे रसामास के रूप में अभिव्यंजित किया हैं-

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 144

(2) महाभारती, सप्तम सर्ग पृ0 231

नश्व-दंशित मेरे कुसुम-अंग
विष गंध श्वसित सुषुमा तरंग
मन-मलिन वदन
पावन परिधान अपावन अब
आनन्द कंठ में दूषित रव
मैं क्षत क्षण-क्षण
तुम भू पर जाने योग्य नहीं
अप्सरा असुर का भोग्य नहीं
अब केश मुक्त
ढीला ढाला अब अधो वस्त्र
निष्काम हो गया काम सस्त्र
अविराम मुक्त (1)

नवम सर्ग में विश्वामित्र मेनका भी श्रृंगार रस का मार्मिक स्थल हैं। शास्त्रीय दृष्टि से ऐसे स्थलों का विवेचन करनें पर यह सहज ही ज्ञात हो जायेगा कि अप्सरायें नायिका भेद की दृष्टि से वेश्या या सामान्य जैसी हैं। इन्द्र की आश्रिता ये अप्सरायें अपनें आंगिक छटा और शारीरिक यत्नज क्रियाओं के द्वारा तपोरत ऋषि के मन में काम उत्पन्न करनें के लिए नियुक्ति की जाती हैं। अतः ऐसे स्थलों में शास्त्रीय विवेचन की पूर्ण दृष्टि से रस परिपाक नहीं माना जा सकता। कवि पोद्दार रामावतार ने बड़ी कुशलता से इन स्थलों को रसाभास से ऊपर उठाकर परस्पर आलम्बन और आश्रय बनाकर दोनों के अनुभावों के साथ संचारी भावों के माध्यम से रस की पूर्ण व्यंजना की है। आश्रय रूप में अप्सरा के सौन्दर्य का मादक और मांसलरूप कवि ने इस प्रकार अंकित किया हैं :-

कुंचित केश किरीत चन्द्र आलिंगित रोमिल घन सा
ग्रीवा इन्द्रहार हिम-आवृत स्वर्णिम विष्णु किरण सा
इन्दु-विन्दु-अंकित रूप श्री पर सस्मित अभिलाषा
रचती-सी मुख कान्त स्वयम् सुन्दरता की परिभाषा

---

(1) महाभारती, सप्तम सर्ग पृ0 238

शुक्र किरण कुण्डिलत कर्ण नयनों में शनि नीलांजन
मंगल शोणिम अधर राम बुध हरित शुभ्र भुज कंकण
मदन किंकणी आभूषित कटि, स्वतः ध्वनित रति-रव से
रूचिर अलक्तक चन्द्र चरण झंकृत उड़ नूपुर प्रेम से
पारिजात किसलय करतल कामांकित रंग किरण से
स्फुटित अरूण मणि कान्ति श्वेत स्मित खिले अध खिले तन से
शब्द शक्ति सम्पन्न श्वास से झरता सा सौरभ स्वर
क्रीड़ित तड़ित तरंग विकेन्द्रित यौवन रत्नाकर पर।
विष्णु-वसन-बन्धन से आवृत अर्ध स्फुटित वक्षः स्थल
जल पल्लव में छिपें-छिपे ज्यों सटे-सटे दो उत्थल
मुक्ता जड़ित प्रवाल सदृश द्युति दन्त पंक्ति स्मितशाली
नख-सिख तक आनन्द तरंगित इन्द्र प्रभा की जाली।(1)

उद्दीपन विभाव के रूप में कलकल विहग खग-कूजन चंचल चाँदनी और निझरिणी का वर्णन कवि ने बड़ा ही मादक वर्णन किया हैं-

गिरि वन में मारुत मृदंग ध्वनि धमक यमक शकायित
प्राण पंचमित कूखग कुहुक विहग मंजर मधु गन्धित
वासंन्ती कुसुमिता लतायें लिपटी सी तरू तन में
उच्छल जल मद व्यापत पहाड़ी सरि सीकर के मन में।
खड़ी पूर्णिमा श्वेत शिखर पर शशिकलशी कटि पर धर
प्रखर-प्रखर अग रजत रागिनी की मादकता स्वर
हिम हर्षित शैलेश स्वप्न पर झुकी हुई सुन्दरता
जीवित-सी हो गई कदाचित पाषाणों की जड़ता
गदराई चाँदनी छू रही बाँ निर्झरिणी की
हिल उठती झिलमिल तरंग सोइ सी पुष्करिणी की
पर्वत अन्तस्तल भी स्यन्दित गगन सोमरस पीकर

---

(1) महाभारती, नवम् सर्ग पृ0 294-95

सुन्दर प्रकृति हुई सुरभित शोभा श्री से सुन्दरतर
कलियों के अधरों पर टपकी अमृत किरण की कणिका
बनी गन्ध निशि जड़ चेतन की तृप्त दायिनी गणिका
इन्द्रजाल में हुई वन्दिनी स्वप्न षोडसी सुषमा
उतरी शक्ति समन्वित दृग की चन्द्र तरंगित उपमा ।।(1)

इसी सर्ग में विश्वामित्र को आश्रय बनाकर कवि ने अनेंक संचारी भावों की व्यंजना की हैं। औत्सुक्य, वितर्क, विवेक शंका, हर्ष के उदाहरण देखिये।

ओत्सुक्यः-

सिहर उठे व्रम्हर्षि हृदय में हुआ शब्द कोलाहल
रस प्रहार से खुला सीप सम तनिक विमुद्रित दृग दल
देखा कोई नहीं कहीं केवल मन में चंचलता
किस अरूप का रूप दिय मेरे प्राणों में जलता। (2)

वितर्क :-

भंग हो गया क्या मेरा तप? कहाँ रोहिणी मेरी
जला रही हैं काम वर्तिका जिसकी रात अँधेरी?
किसकी ढीठ हिलोर लिपट-सी गई प्राण के वन से
कौन कामना किरण्र केलि करती मेरे दृढ़ मन से?(3)

आलम्वन मेनका की वीणा की रति प्रेषक वर्णन कवि ने इस प्रकार किया हैं-

नर के दृष्टि दंश से पनपी नारी दृग में लज्जा
सजी खुले अधखुले अंग पर सीमित शोभा सज्जा
मधुर अप्सरा के स्वभाव में नहीं अधिक परिवर्तन
होनें लगता स्वप्न पंथ में चंचल चितवन नर्तन
नयनों में नक्षत्र तारिकायें नित मुस्काती सी
नील मन्त्र के भूक पाठ से श्रुति सुधि अकुलाती सी

---

(1) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 299
(2) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 312
(3) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 312

अर्ध अस्तमित रवि निशि पट पर नित कुछ लिख जाता सा

उजली-उजली ऋचा सुनाता मन मयंक आता सा (1)

कवि ने विश्वामित्र और मेनका के मिलन का माँसल वर्णन कर संयोग श्रृंगार की पूर्ण अभिव्यंजना की हैं

पहुँच गई मेनका पुरूष इच्छित आनन्द शिखर पर

जहाँ ना तन का भेद जहाँ मन की न भिन्नता स्वर

आकारों में निराकार की प्रेमात्मा मिलती सी

देह ज्योति में ही विदेह की किरण कली खिलती सी

अंग रंग में ही अनंग की आभाएँ बहती सी

आँखे ही रसमशी केलिकी कुसुम कथा कहती सी

सुरभित सी चेतना अचेतन प्राणकुंज में खोई

श्वास उष्ण नव आत्मा लता आनन्द अमृत सी धोई

रति परान्त तुष्टि हर्ष अलिंगन एवं अर्न्तद्वेय (2)

आनन्द की सृष्टि कवि ने इस प्रकार की हैं :-

प्रथम स्वाद संतृप्त सफलता पुनः अतृप्त लहर पर

झरते रहे कामना के कुछ फूल वसन्त डगर पर

आलिंगित एकान्त प्रान्त में प्रीत गीत लहराए

पता न चल पाया प्राणों को कितने राग सुनाए। (3)

संयोग श्रृंगार का सबसे सुखद मार्मिक माँसल और आकर्षक वर्णन प्रकृति कन्या शकुन्तला और राजर्षि दुष्यन्त के माध्यम से अभिव्यंजित हुआ हैं। जहाँ शकुन्तला आलम्वन के सौन्दर्य निरूपण के लिए कवि ने प्राकृतिक संभारों का नूतन उपयोग किया हैं। ऐसे वर्णन में नायिका की अवस्था वयः सन्धि की हैं, किन्तु वह नैसर्गिक आश्रम निवासी होने के कारण कामावेग से सर्वथा परिचित हैं मेनका पुत्री के इस सौन्दर्य वर्णन

---

(1) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 321

(2) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 320

(3) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 320

में एक तरफ मुग्धा नायिका रूप हैं तो दूसरी तरफ गर्विता नायिका की झलक भी दिखाई पड़ती है-

मैं किसी तपस्या ईर्ष्या से
निकली सौन्दर्य कमिलनी-सी
मैं किसी इन्दु की इच्छा के
नयनों की नलिनी अलिनी सी
मैं किसी रूप राका पथ के
पूर्णिमा कुसुम की कविता सी
मैं किसी अमर कवि के दृग से
निकली सुन्दरता सरिता सी
मैं किसी हेमपर्णा स्मिति की
कलिका सी स्वतः लजाई सी
दिन के दोपाहरी में चुपके
तारिका एक उग आई सी
मैं सुन्दरता की दीपसिखा
वन कानन पथ पर चलती सी
सरसिज सम्पन्न जलाशय में
मैं निज प्रतिबिम्ब पकड़ती सी
कम्पित जल की झिलमिल छवि से
तब की वे आँखे डरती सी (1)

वयः सन्धि के लिए कवि ने इस प्रकार लिखा हैं:-

मुकुलित हो जाती ज्यों कलिका
शैशव शतदल कुछ खुला खिला
धीरे-धीरे आभास मिला

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 334-35

नूतन वसन्त मे ज्यों बयार
पीती फूलों की मादकता
लुक छिपकर छूने लगा हृदय
निखरे निसर्ग की मोहकता
झरनों के जल में पग धर कर
मैं लगी देखने धारा को।
पर समझ न पायी स्वतः उदित
मन के झिलमिल ध्रुवतारा को।(1)

तात्पर्य यह हैं कि कि वह प्रकृति कन्या मुग्धा से युवती कब बन गई, वह कभी जान ही नहीं सकी और जब जाना तो जड़ता औत्सुक्य के रूप में कवि ने इस प्रकार लिखा हैं:-

कब हुई किशोरी से तरूणी
मैं स्वयं नहीं ये जान सकी
यौवन के सोलह फूलों को
मैं नहीं कभी पहचान सकी
उर वसन हो गये कुछ छोटे
अर्न्तवसन्त के आनें से
मैं लजा गई दो सखियों के
पुष्पित प्रश्नोत्तर पाने से।(2)

मुग्धा वनने के वाद रूपगर्विता नायिका वर्णन भी कवि ने बहुत ही मार्मिक ढंग सें किया ऐसे स्थलों को पढ़कर हमें कालिदास की शकुन्तला का स्मरण हो जाता है, ऐसी शकुन्तला के अद्वितीय सौन्दर्य को देख दुष्यन्त आश्चर्य चकित रह जाता हैं। कवि ने वड़े कौशल से दोनों के मिलन का वर्णन किया हैं परिचय से परिचय और फिर अनुराग का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया हैं:-

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 336-37

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 338

मैं भूल गई उस क्षण सब कुछ
कुछ स्मरण और कुछ स्मरण नहीं
रस में डूबे सुधि चित्रों का
फिर वार-बार अनुकरण नहीं
मन मदन बना तन सुमन बना
साँसें सुगन्ध बन गई चपल
उनकी आँखों की आभा से
खिल गया विकल मेरा उत्थल
मिल गया अपरिचय का परिचय
झर गया अधर पर स्वर पराग
मर गया पगथम आनन्द स्वाद
मेरे जीवन में सानुराग। (1)

वियोग श्रृंगार -

महाभारती काव्य में वियोग श्रृंगार के कई उदाहरण हैं, कहीं उर्वशी-पुरूरवा, विश्वामित्र-मेनका दुष्यन्त-शकुन्तला, अगस्त्य-लोपामुद्रा के वियोग प्रसंग वड़े मार्मिक हैं उर्वशी और पुरूरवा के संयोग के पश्चात वियोग का वर्णन बड़ा ही मार्मिक हैं, जव उर्वशी स्वर्ग लोक प्रस्थान करनें लगती हैं तव बड़ा ही हृदय को आघात पहुँचानें वाला दृश्य उपस्थित होता है-

चलनें की बेला अपलक लोचन अमृत सिक्त
कुछ भरी अधभरी इच्छाएँ कुछ रिक्त-रिक्त
तन्वी तन उड़ता रहा रश्मि रूपान्तर तक
अर्न्तमन ढोता रहा अश्रुकण अम्बर तक। (2)

वियोंग की अवस्था एकांकी नहीं हैं बल्कि वह दांनों पक्षों को बरावर प्रभावित करती हैं पुरूरवा भी उतने दुःखी हैं जितना की उर्वशीः-

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 357

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 81

नर के नयनों मे भी नारी सा मेघ-बिन्दु
उर की करूणा वरूणा विछ्ल भावना सिन्धु
मेरी वियोग वेदना अप्सरा दृग में भी
झुरमुट के रात्रि प्रवाशी प्रणयी मृग में भी।(1)

रामावतार जी ने वियोग श्रृंगार के बड़े ही हृदय विदारक दृश्य उपस्थित किये हैं। दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रसंग वड़ा ही अच्छा बन पड़ा हैं स्मृति गुण कथन के रूप में उन्होनें शकुन्तला का बड़ा ही मार्मिक दृश्य उपस्थित किया हैं:-

मैं भूल गई उस क्षण सब कुछ
कुछ स्मरण और कुछ स्मरण नहीं
रस में डूबे सुधि चित्रों का
फिर वार-बार अनुकरण नहीं
मन मदन बना तन सुमन बना
साँसें सुगन्ध बन गई चपल।। (2)

आगे भी इसी प्रकार के वर्णन रामावतार जी ने प्रस्तुत कियें हैं आधि व्याधि विकलता और स्वेद स्तम्भ समी का वर्णन उन्होनें वड़ा ही आकर्षक किया है :-

कुसुमांग अंग पर मलय लेप
मुख पर पाटल जल की फुहार
कर सकी अनल को नहीं शान्त
कदली किसलय की शैय्या पर
निद्राविहीन दोनों लोचन
कछमछ-कछमछ करता शरीर
यह कौन रोग रे मेरे मन
लहराये मुझ पर मोर पंख,
पर सूख ना पाया ऊष्म स्वेद

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 81

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 357

आँखो कुवल कह सकी मौन

प्रिय पुष्टिभाव के भृंग भेद। (1)

उद्दीपन रूप में बड़ा ही सजीव वर्णन प्रस्तुत किया हैं, शकुन्तला का यह प्रसंग उसके वियोग को और अधिक बढ़ाता है:-

द्रुत-द्रुत ला सखि कमल पत्र

नयनों तक आई हैं कविता

आकुल शकुन्तला के मन में

यौवन में छाई हैं कविता। (2)

विरह की एक अन्य अवस्था का भी महाभारती में अच्छा वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं विरह का अनिवार्य तत्व आँसू होता हैं क्योंकि विरह में आँसू न निकलना सम्भव नहीं हैं। शकुन्तला दुष्यन्त के विरह में अपने आँसुओं को व्यर्थ नहीं वहाना चाहती :-

सखि कमल पत्र द्रुत ला-द्रुत ला

झर जाये कहीं न नयन मुक्ता

द्रुत ला द्रुत ला मैं रस मुग्धा

रूक मत सखि रूक मत व्यर्थ व्यथा। (3)

विरह की एक अवस्था जड़ता का भी वर्णन किया गया हैं। विरह की अधिकता के कारण काम में मन नहीं लगता शिष्टाचार की बातें भूलकर मनुष्य अपना बौद्धिक सन्तुलन खो देता हैं और वह सजीव होते हुए भी जड़ प्रायः हो जाता हैं यही अवस्था शकुन्तला की होती हैं दुष्यन्त को देख-

कुसुमंकित पथ से आये वे

में खड़ी रही लजवन्ती सी

मंजरित आम्रगन्धा रूचि सी

में स्मिति वासन्ती विनती सी। (4)

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 358

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 359

(3) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 360

(4) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 362

विरह की अधिकता के कारण वह वितर्क करनें लगती हैं और फिर शकुन्तला को अपनें ही कार्यो के कारण ग्लानि की अनुभूति होने लगती हैं विरह में मनुष्य अच्छा बुरा भूल जाता हैं।

वह रात बात में ही नकटी बीती
कुछ स्मरण और कुछ स्मरण नहीं।
रस में डूबे सुधि चित्रों का
फिर बार-बार अनुकरण नहीं
मत पूछ प्राण रति प्रश्न मौन
ये आँखे आज लजाती हैं
यौवन के प्रिय मर्मस्थल पर
विस्मृत सुधि विहगी गाती सी। (1)

शकुन्तला-दुष्यन्त के वियोग में बहुत अधिक कमजोर हो गई और उसका शरीर पीला पड़ गया इस अवस्था को वैवर्ण्य की अवस्था कहते हैं शकुन्तला के पीले वदन पर भी सौन्दर्य की छटा विद्यमान है:-

मेरे मुख पर चम्पक शोभा
प्राणों में शशि पीतीमा प्रीती
नयनों में नत गम्भीर भाव
अधरों पर गुप्त प्रभात गीत।। (2)

वीर रस -

महाभारती काव्य में वीर रस के उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में मिलतें हैं जिसे पढ़कर एक अपूर्व उत्साह का संचार होता है। वीर रस के कई प्रसंग महाभारती में मिलते हैं जैसे विश्वामित्र प्रसंग, पुरूरवाउर्वशी प्रसंग में दैत्यराज से उर्वशी की रक्षा, दुष्यन्त और भरत के वीरोचित कार्य जैसे-

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 363

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 366

होता है घोर विपद का आपाद धर्म एक
रे कहाँ गया रे कहाँ गया क्षत्रिय विवेक
कुछ कर कुछ कर या धारण कर मामिनी वस्त्र
कुछ ही दिन में तू भूल गया निज शास्त्र-शस्त्र? (1)

राक्षस द्वारा उर्वशी के साथ अनाचार के बालात प्रयत्न को पुरूरवा रोकनें की कोशिश करते हैं और उसी क्रम में पुरूरवा और राक्षस का भयानक सघंर्ष होता हैं जिसका सजीव वर्णन अरूण जी ने इस प्रकार किया हैं:-

संघटित आर्य आक्रमण रणन् रण रणन्-रणन्
उन्मत्त युद्ध झन्झा नर्तन स्वर झनन झनन
शस्त्रास्त्र तड़ित गर्जनि तर्जन कर्कश घर्षण
टंकार कुद्ध हुंकार षड़ग रव खट-खुट-खन।(2)

एक वार जब विश्वामित्र जव ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में सहस्त्र सैनिकों सहित पधारें और ऋषि वशिष्ठ ने ऐसा स्वागत किया कि वह सभी सैनिको सहित विश्वामित्र आश्‍चर्यचकित हो गये। जानने पर पता चला कि ऐसी व्यवस्था कामधेनु के कारण हो पाई तो इसी कामधेनु को विश्वामित्र ने अपनें राज्य के लिये माँगा और वशिष्ठ द्वारा कामधेनु न दिये जाने पर दोनों तरफ से वशिष्ठ-विश्वामित्र का भयंकर सग्रांम हुआ वीरता के अद्‌भुत नमूने प्रदर्शित किये गये कि पढ़कर ही उत्साह का संचार होता हैं:-

मेरी सेनाएँ हुई भस्म ऋषि विधि बल से
तब मैने शस्त्र निकाला निज अन्तस्तल से
जीवित न वचा कोई इतना आक्रमण सफल
भीषण प्रहार से तपोभूमि टलमल-टलमल
देवों को ज्यों दानव बनना पड़ता रण में
रचती प्रभुता अंगार मन्त्र क्रोधित मन में

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 163
(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 165

आकुलता जब आक्रोश प्रखर नर हुंकार
मदमत्त शक्तियाँ स्वयं उगलती अन्धकार। (1)

अरूण जी ने नारी के अन्दर भी वीर रस का संचार किया है रम्भा जब विश्वामित्र की मपस्या भंग करनें के लिए पृथ्वी लोक आती है और दैत्यराज उसका सर्वस्व हरण कर लेता है लेकिन रम्भा के पुनः शक्ति से युक्त होने पर वह दैत्यराज को खुली चेतावनी देती है कि तुम मुझको दुबारा नहीं पा सकते अब मैं अनल मुखी के समान हूँ-

अब मैं तुझसे भयभीत नहीं
होगी तेरी अब जीत नहीं
मैं सुर सबला
तू छू न सकेगा ऐन्द्र अंग
अव अनलमुखी मेरी तरंग
मै आत्म कला। (2)

भयानक रस :- महाभरती में भश्यानक रस के भी कई स्थल पाये जाते हैं क्योंकि महाकाव्य में सभी रसों का लगभग प्रयोग होता है उसी परम्परा के अनुसार महाभारती के प्रथम सर्ग में इसका उदाहरण मिलता हैं प्रकृति का रामावतार जी ने बड़ा भयंकर वर्णन प्रस्तुत किया है जैसे-

ताण्डवित जल ज्वारा में घूर्णाग्नि धूम तरंग
तमाच्छादित अजगरी फुफकार भंग अभंग
घनन घनघन पवन का सनसनाता संसार
विभवसु परिव्यत पावक का वरूण हुंकार
सलिल कोलाहल प्रभंजन रणनजन रण मन्त्र
उग्र नर्तन चक्र वेष्टित सिन्धु स्वप्न समस्त
कुटिल केलि प्रहार से दिग्ध्वनित इन्द्राकाश
फनफनाता सृजन दम्भाक्रोश से वातास। (3)

---

(1) महाभारती, षष्ठ सर्ग पृ0 210
(2) महाभारती, सप्तम सर्ग पृ0 252
(3) महाभारती, प्रथम सर्ग पृ0 21

इसी प्रकार प्रकृति का भयानक रूप अन्यत्र भी कई जगह वर्णित है और उस प्रकृति के भयानक रूप से इन्द्र भी भय से ग्रसित हो जाता हैं और उसे प्रलय का आभास पहले हो जाता हैं और इन्दु के मन भी भय व्याप्त हो जाता हैं जैसे-

टलमलाता था हिमाचल डोलते थे वृक्ष
गरजती थी गुहा गिरि पर भागते थे ऋक्ष
घरघराहट से विकल मृग व्यूह अतिशय भीत
बह रहा था सन-सन-सन प्रभंजन पीत
शिलाशायी तरू विलोकित विहग वृन्द अशान्त
विप्लवी क्षति गति चकित सुर अप्सरा श्रान्त
रिक्त मदिरा पात्र सा लोचन उदास-उदास
इन्द्र को अवगत प्रकृति विद्रोह का आभास।(1)

उर्वशी ने एक बार पृथ्वी लोक घूमनें के लिए स्वर्ग लोक से प्रस्थान किया लेकिन रास्ते में ही दैत्यराज ने उसकी सुन्दरता पर आक्रमण कर दिया उस समय उर्वशी के मन में भय व्याप्त हो गया और भयानक रस की उत्पत्ति हुई-

सहा सम्मुख अवतीर्ण असुर भयभीत वदन
रसहीन हो गया तत्क्षण ही रूपाकर्षण
अबला सी मैं हो गई घिर गई मैं तम से
काँपी इन्द्राणी ज्योति भयंकर भ्रम क्रम से। (2)

अद्भुत रस -

महाभारती में अद्भुत रस के भी कुछ प्रसंग आये हैं महाभारती में कुछ कथानक ऐसे घटित हुए हैं कि उनको पढ़कर कुछ विचित्रता परिलक्षित होती हैं जिससे अद्भुत रस का परिपाक हुआ हैं। अब समस्त भू और स्वर्गलोक में प्रलय का आगमन हुआ तव इस पृथ्वी पर अद्भुत कारनामें हुए जिन्हे देखकर विचित्रता का अनुभव हुआ। यहाँ पर अद्भुत रस का संचार तव हुआ जब भगवान विष्णु वराह का रूप धारण कर भूलोक को अपनें

---

(1) महाभारती, प्रथम सर्ग पृ0 27

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 75

दाँतों पर धारण करलेते हैं-

महामारुत से अचानक उदधि में हिन्दोल
उठ गई आकाश तक उत्तुंग लहरे लोल
दन्त पर भू को उठाये उदित विष्णु वराह
विकल जल पर झिलमिलाता रहा ज्योति प्रवाह। (1)

अद्‌भुत रस का परिपाक एक अन्य जगह उस समय होता हैं जब विश्वामित्र सैन्य वल सहित ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचते हैं और रऋषि वशिष्ठ जब प्रत्येक व्यक्ति का उसकी इच्छानुसार स्वागत अल्प समय में करते हैं तो सभी के मन में आश्चर्य का भाव पैदा होता हैं कि इस तरह कि दिव्य व्यवस्था इतने कम समय में वह भी जंगल में कैसे सम्भव हो गई-

आमन्त्रण स्वीकृति से सेना में भी विस्मय
अनुकूल और प्रतिकूल भाव मुद्रा निर्भय
इतनी सामाग्री कैसे सम्भव आश्रम में?
घिर गये सहस्त्रों सैनिकों सहसा भ्रम-क्रम में
अगणित गज उष्ट्र अश्व में भी सन्तुष्टि व्याप्त
में चकित-चकित उल्लसित निरख ऋषि स्वप्न सहित।(2)

इन्द्र के मन में भी उस समय अद्‌भुत रस का परिपाक उस समय होता हैं जव विश्वामित्र अपनी तपस्या से सभी देवताओं तक को विचलित कर देते हैं और इन्द्र भयभीत होता हैं अपनें सिंहासन के प्रति तथा इन्द्र को यह आश्चर्य होता हैं कि क्या मनुष्य भी इतना शक्तिशाली हो सकता हैं कि देवलोक में भयका वातावरण व्याप्त हो जाये।

देवेन्द्र ववंचित किंचित शंकित
दृग भ्रमित विष्णुता चकित-चकित
उर नमित-नमित
पृथ्वी सुत मे इतनी महिमा?

---

(1) महाभारती, प्रथम सर्ग पृ0 23
(2) महाभारती, षष्ठ सर्ग पृ0 205

इतनी प्रभुता? इतनी गरिमा?

यह प्रथम विदित। (1)

वीमत्स रस -

महाभारती के कुछ स्थलों पर वीभत्स रस का परिपाक हुआ हैं कुछ ऐसे चित्र प्रस्तुत किये गये हैं जिसे देखकर घृणा की अनुभूति होती हैं। त्रिशंकु ऋषि वशिष्ठ के शाप के कारण चण्डाल हो जाते हैं और विश्वामित्र के पास आकर सशरीर स्वर्ग जानें की प्रार्थना करते हैं। त्रिशंकु का चण्डाल रूप पाठ्कों के हृदय में घृणा का भाव पैदा करता हैं-

वसन दुर्गन्ध तन में मलिनता
लम्ब देहाकृति की ज्यों मृत तरू लता
ओड़े सिर के केश आँखें धसी सी
पंक में ज्यों दो मछलियाँ फँसी सी
लौह भूषण से लदे भुज ग्रीव पद
स्वेद सजल ललाट पर कुछ व्रण दुखद
वदन कम्पित किसी निष्ठुर शाप से
कृष्ण कपि मुख मीत अपने आपसे।(2)

वीमत्स रस का वर्णन इसी प्रकार अरूण जी ने रोहिणी के माध्यम से करवाया हैं राहिणी जब अपनें जीवन का परिचय मेनका को देती है कि उसकी मृत्यु कैसे हो गई अगर उसका अन्तिम संस्कार न होने के कारण उसके शरीर को विभिन्न पशु नोच-नोचकर खाते हैं जिसका अरूण जी ने वीमत्स वर्णन किया हैं-

हुआन इति संस्कार मृध्रगण का प्रसन्न शव भक्षण
क्षुदित शकुनि ले गये नोचकर स्मृति अंकित मृत लोचन
अस्थि पुंज अक्षुण्ण अभी तक उस दुर्घटना स्थल पर
अन्तिम कण्ठस्वर अंनुगुंजित सर्पिल निर्झर जल पर। (3)

---

(1) महाभारती, सप्तम सर्ग पृ0 223

(2) महाभारती, अष्टम सर्ग पृ0 273-74

(3) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 303

रौद्र रस -

महाभारती में रौद्र रस का भी यथास्थान वर्णन किया गया है प्रथम सर्ग मे ही प्रलय के पश्चात् दैत्यराज और इन्द्र के बीच परस्पर वार्तालाप होता हैं तो क्रोध की अधिकता के कारण रौद्र रूप धारण कर लेते हैं जिसका बड़ा ही सुन्दर वर्णन पोद्धार जी ने किया हैं–

नन्दनासन पर परस्पर विरत्र वार्तालाप
असुरपति आकार ज्यों साकार विध अभिशाप
सान्ध्य लोहित गगन घन सा धधकता मुख व्याघ्र
कुद्धतर विष व्यग्र फणि सम तम मुकुटि पलकाग्र
दम्भ उत्थित नासिका ज्यों उग्र वृश्चिक पुच्छ
रक्तरंजित नेत्र स्फुरित दृष्टि विभ्रम तुच्छ
महाकच्छप वक्ष ग्राह समान खुर-खुर हस्त
गृध्र ग्रीवा हस्ति पगतल उरग अंगुलिव्यस्त (1)

रौद्र रस का एक प्रसंग छठे सर्ग में कामधेनु के सम्वन्ध में आता हैं जब वशिष्ठ और विश्वामित्र का आपस में संघर्ष रौद्र रूप धारण कर लेता हैं –

आ रहा स्मरण प्राणात्मा का विस्फोट प्रबल
कोलाहल पर कोलाहल की क्षमता अविकल
सुन स्वयं सिद्ध ललकार दिव्य साधक सतेज
सत्वर रहस्य पट को दृग शर से दिया वेध
देखा की यह असाधारण घटना पूर्व रचित
आत्मिक सग्रांम नियोजित नव निर्णय लक्षित। (2)

जो उनके पास सशरीर जानें की प्रार्थना कर रहा हैं उनके पिताश्री का अपमान कर चुका हैं तो उनके अन्दर अत्यधिक क्रोध का आवेग होता हैं और वे त्रिशंकु को शाप देते हैं:–

---

(1) महाभारती, प्रथम सर्ग पृ0 57

(2) महाभारती, षष्ठ सर्ग पृ0 209-10

विपिन में ब्रम्हर्षि सुत से भी मिलन
पर वहाँ भी खिल ना पाये मन नयन
हुए क्रोधित सभी पुत्र वशिष्ठ के
शब्द संस्कृत नहीं इच्छा पृष्ठ के
वहीं उच्चरित कौशिक स्वास्ति नव
असह ऋषि सुत के लिए प्रतिकूल रव
तन प्रकम्पित पिता के अपमान से
त्वरित शायाघात मुख के वाण से। (1)

शान्त रस -

महाभारती में यथास्थान शान्त रस को भी कुछ स्थल आये हैं जो बहुत ही सुन्दरन वर्णित किये गये हैं जब ऋषि वशिष्ठ और विश्वामित्र की मुलाकात होती हैं तव स्थान पर शान्त रस का सृजन होता हैं सम्पूर्ण समय निर्वेद स्थायी भाव मिलता हैं-

सामंत्य अनिष्अ समन हित सम्प्रति विधि प्रवीण
ब्रम्हर्षि अभी तक ध्यान वितान लीन
स्मृतिपट पर अंकित अनायास चिद्र ब्रम्हासन
दुष्टान्त दीप सा ज्योति जयी मेरा भी प्राण
समुचित अवसर पर देखी उनकी रूप धूप
ऋषि तेज समक्ष मलिन कितना मद महीप भूप। (2)

शान्त रस इसी प्रकार का वर्णन उस समय हुआ हैं जब विश्वामित्र अपनी माँ के स्वर्गवास को याद करतें हुये दुःखी हो जाते है तब निर्वेद स्थायी भाव की उत्पत्ति होती हैं-

सागर तरंग का दुःख सुख का उत्थान पतन
करना ही पड़ता जीवन को आघत सहन
दुःख द्रवित निराशा से असक्त होता शरीर

---

(1) महाभारती, अष्टम सर्ग पृ0 276

(2) महाभारती, षष्ठ सर्ग पृ0 203

पुरूषार्थ मिटा देता हैं आत्म अधीर पीर। (1)

इसी प्रकार विश्वामित्र की तपस्या और शक्ति जब धीरे-धीरे क्षीण होने लगती हैं तब उन्हे अपने ऊपर ग्लानि और पश्चाताप का भाव जाग्रत होता हैं

गायत्री ज्ञाता अर्न्तमन लुप्त हो गया कैसे?
कौन चूक हो गई की मेरा ब्रह्म खो गया कैसे?
हे अनन्त लीला ये कैसी-कैसी-कैसी तेरी?
कौन भूल हो गई कठिनतम जीवन तप मे मेरी? (2)

शान्त रस का वर्णन इस प्रकार कई जगह हुआ जैसे तृतीय सर्ग में एक जगह अन्यत्र इसी प्रकार वर्णन हुआ कि मन में विरक्ति का भाव जाग्रत होता हैं-

व्यक्त शव पर जब ग्रध समूह
नोचते अति दुर्गन्धित चर्म
झुर्रिया भरी मुखाकृति मौन
प्रकट सी कर देती दृग मर्म।(3)

करूण रस -

महाभारती काव्य में करूण रस का का भी यथास्थल वर्णन किया गया हैं शोक की उत्पत्ति उस समय होती हैं जब विश्वामित्र को अपनी माँ के देहावसान की याद आती हैं तब करूण रस का प्रभाव पाठकों के हृदय में व्याप्त हो जाता हैं-

स्मरण तप पूर्व मातृ देहावसान
शोकाकुल नयनों का चित्राकुल अश्रु स्नान
धीरे-धीरे अति व्यथा काल पथ में विलीन
कुछ दिन तक कितना दुःखी प्राण जननी विहीन। (4)

शम्बरी जब एकदिन बहेलिये के बाण का शिकार हो जाती हैं और उसकी मृत्यु हो जाती हैं तव समस्त आश्रम में एक शोक की लहर सी दौड़ जाती हैं इस मृत्यु का

---

(1) महाभारती, षष्ट सर्ग पृ0 213

(2) महाभारती, नवम सर्ग पृ0 327

(3) महाभारती, तृतीय सर्ग पृ0 122

(4) महाभारती, षष्ठ सर्ग पृ0 213

आश्रम के सभी पदार्थो (जीव जन्तुओं वृक्षों) पर इसका प्रभाव पड़ता हैं जड़ चेतन सभी व्याकुल हो जाते हैं जो कि महाशोक में बदल जाता हैं-

गो माताओं ने उस दिन चरना छोड़ दिया
मृग मन को भी इस पीड़ा ने झझकोर दिया
वापस करनें लग गये विटप पर काँव-ाँव
नन्हीं चिड़ियों में भी चूँ-चूँ-चूँ चाँव-चाँव
पत्तो ने गिरा-गिरा कर किया रुदन
इस महाशोक में स्वयं सम्मिलित जड़ चेतन
पूछों न प्राण इस दिन मुझ पर क्या-क्या बीता
इस घटना से रह गया हृदय रीता-रीता। (1)

वात्सल्य रस -

महाभारती हैं तो शक्ति सौन्दर्य और साधना का महाकाव्य लेकिन उसमें यथास्थान वात्सल्य रस के भी प्रसंग आयें हैं जब उर्वशी और पुरूरवा के संयोग से पुत्र उत्पन्न होता हैं और वह अपनें पुत्र को अपने गुरू के पास छोड़कर जाती हैं इस समय इसके हृदय में वात्सल्य भाव का संचार होता हैं पुत्र के प्रति मोह जागृत होता हैं

शय्या सुषुक्त प्रणयी को तज मैं गई वहाँ
निद्रित था भरत कुटी में आत्मज आयु जहाँ
मृदु मुश पर बिखरी थी मोहक माणिक्य कान्ति
दीपक प्रकाश में इसे देखकर मिली शान्ति
असमय उन्नत स्तन में भर आया दुग्ध धवल
प्रस्फुटित हो गया महामोह का रात्रिकमल।(2)

वात्सल्य रस के कुछ प्रसंग चतुर्थ सर्ग में भी आयें हैं जिनका वर्णन बालकोचित स्वभाव के अनुसार हुआ। सुकुमार रूप को याद कर वात्सल्य भाव का आनन्द प्राप्त होता हैं-

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 167-168

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 90

आरहा स्मरण शैशव का वह सुकुमार रूप
भर भुजापाश में मुझे मुदित जब पिह भूप
पितुरनुज प्रतापी दिवोदास वात्सल्य राग
अम्लान प्राण पल्लव पर ज्यों पंकज पराग। (1)

पंचम सर्ग में रोहिणी विदा का सर्ग बड़ा ही भावुक हैं ऋषि अगस्त्य रोहिणी के विदा होने के पश्चात राहिणी की याद में वात्सल्य वियोग का बहुत ही सजीव वर्णन किया हैं अपनी पुत्री रोहिणी की यादें उन्हे सतानें लगती हैं–

फिर सुनी न वैसी कभी सुरीली वाणी
सुधि उमड़ी कभी–कभी जानी पहिचानी
विछुडन की बेला पिघल गया मन मेरा
रे दीप सिखा सा काँप गया तन मेरा
रोई थी कितनी उस दिन हँसती बाती
रूक–रूक जाती थी पथ पर जाती–जाती
मैं मातृ पिता ही नहीं एक माता भी
भार्या अभाव में स्नेह भाव दाता भी। (2)

इसी प्रकार वात्सल्य वियोग आगे भी चलता रहता हैं अरूण जी ने वड़ा ही भावुक वर्णन किया हैं

रथ से लौटी आत्मजा मिटी चिन्ताएँ
विछुड़न की बेला काँपी स्नेह–शिखाँए
हो प्रवाहित करूण नयन की वाणी
अधरों तक ढुलक पड़ा प्राणों का पानी
आत्मिक वियोग का अवसर जव–जब आता हैं
दुःख में सुख, सुख में दुख सहसा मिल ,ता

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 151

(2) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 172

कर्तव्य सजल सुधि गति को सबल बनाता
लोचन में लोचन का घन छिप-छिप जाता। (1)

शकुन्तला प्रसंग में भी वात्सल्य रस का स्वाभाविक चित्रण किया हैं शकुन्तला और विश्वामित्र के स्वाभाविक पुत्री पिता के प्रेम का वर्णन किया हैं-

भर लिया भुजाओं में ऋषि ने
जानें की बेला आते ही
वे चले गये पर कुछ दिन तक
ये पाण रहें अकुलाते ही
वे पितृ तल्य भर गये भाव
वात्सल्य विमा से मैं विभोर
जव-जब उठती स्मृति की सुगन्धि
सुख का न ओर दुःख का न छोर
दो चार दिनो में ही मन को
कर जाते जो करूणा प्रदान
उनकी सुधि से घिरते रहते
नयनों में जब तब घन वितान। (2)

---

(1) महाभारती, पंचम सर्ग पृ0 181

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 343-44

क. शब्द सम्पदा

भाषा भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। समाज में प्रचलित भाषा समुद्र में से शब्द लहरियों को लेकर प्रत्येक साहित्यकार अपने संस्कारों के अनुरूप काव्य भाषा का निर्माण करता है।

काव्य भाषा मूलतः भाषा ही होती है, किन्तु उसमें साहित्यिकता का अभाव होता है कवि काव्य भाषा की संरचना करता है। सामान्य या लोक भाषा को विशिष्ट रूप देता है। यह भाषा कवि की अर्जित भाषा है। उसे वह ऋक्त रूप में प्राप्त नहीं करता यद्यपि भाव, पात्र, कथा, लय, साहित्य रूप आदि वह समाज से ही प्राप्त करता है किन्तु वह अपनी गढ़ी हुई भाषा में नये रूप में प्रस्तुत करता है। इस भाषा की संरचना के लिए उस भाषा के परिमार्जित या मानकीकरण के रूप में प्रचलित व्याकरण का अनुशासन रखता है। शब्दों के रूप उनकी संरचना में वह पूर्ववर्ती आचार्यों के निर्देश का सर्वथा पालन करता है। साथ ही इस काव्य भाषा की संरचना उसमें व्याकरण का अनुशासन शब्द प्रयोग की सर्वथा नवीन परिपाटी का प्रचलन वह सृष्टा या नियामक के रूप में करता है। इस हेतु वह भाषा-विज्ञान के अनुसार शब्द, अर्थ, ध्वनि, पद संघटना का समुचित उपयोग ही नहीं करता। उसे नया आयाम देता है।

भाषा संरचना से हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि हम महाभारती की भाषा का वैज्ञानिक या शब्द रूप ध्वनि पद, वाक्य और शैली वैज्ञानिक अध्ययन करें। यहाँ तो हम भारतीय पाश्चात्य काव्य-शास्त्र भाषा एवं शैली विज्ञान के सगुम्फन से निर्मित काव्य-भाषा के मापदण्डों के अनुरूप भाषा संरचना का अध्ययन प्रस्तुत करना चाहते हैं। इस हेतु प्रमुख विशिष्ट शब्द रूप या शब्द योजना तथा अर्थ आदि के लिए शब्द शक्ति अलंकार ध्वनि, गुण, छन्द आदि का अध्ययन प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

कवि का शब्द भण्डार

तत्सम् –

पिछले पृष्ठों में कहा गया है कि कवि समाधि शब्द महोदधि से अपने लिये भाषा का चयन करता है आर्य स्थानीय बोलियां निःश्रेष हो गयी हैं। खड़ी बोली में उनके शब्द अपने मूल रूप में या परिमार्जित रूप में समाहित हो गये हैं। ऐसे शब्दों को हम तत्सम

शब्द कहते हैं। जो संस्कृत भाषा के समान रूप आकार वाले हों और उनका प्रचलन भी ज्यों का त्यों सामान्य और काव्य भाषा दोनों में हो रहा है। कवि ने संधि, समास, उपसर्ग और प्रत्ययों के संयोग से निर्मित तत्सम् शब्दों का पुष्कल प्रयोग किया है। इससे कवि के भाषा संसार की व्यापकता एवं उसके अध्ययन विस्तार का परिचय हमें मिलता है।

तत्सम् शब्द –

कुन्देन्दु, उज्ज्वल, निधि, शास्त्र, शतदल, अरूण, अनुरक्ति, सृष्टि, विभास, लोचन, काव्य, अजस्र, धरित्री, मर्त्य, प्रलय, गर्जित, वारिधि, ताण्डवित, घूर्णाग्नि, तमाच्छादित, वरूण, हुंकार, नर्तनचक्र, सृजन, दम्भाक्रोश, उत्क्रान्त, हिल्लोलित, फेनोच्छ्वास, परिधि, मृत्तिका, उन्नमित, हिरण्य, पय, अधिवास, मार्तण्ड, प्रस्थान, इन्द्रादेश, प्रसून, दिव्या, ऊष्मा, स्वास्तिका, वृष्टि, सहर्ष, आहरण, ब्रह्मात्म, देवेन्द्र, प्रतिकूल, सुभ्रेश्वरि, उद्भवोन्मुख, दृष्टि, उन्नति, वसुधा, विभासित, उद्भूति, वीक्षण, समिधा, अनुष्ठित, नवजात, सहिष्णु, अयस्कान्ता, सूर्यायमय, संस्कार, मनोबल, ध्रुवाक्रान्त, अंश, व्रतवद्ध, द्विपद, ध्रुतिवंश, मस्तिष्क, त्रिगुण, अन्वित्, उत्थान, अनुनय, व्योम, अद्यतन, त्रिशूली, उद्विग्नता, ऋृत, कच्छपी, हिमहास, विमुग्धा, अर्थित, अनायास, पुष्पाप्सरा, हिमाचल, हिम, श्रुति, रश्मि, योनिज, शतमुखी, अवतीर्ण, विदीर्ण, हिन्दोलित, सिन्ध, अवलोकित, उन्नति, कुण्डलित, प्रसून, शशि, रवि, दुकूल, उर्वशी, सौन्दर्य, भव्य, अलंकृत, शिव, विलास, तरंग, ब्रह्मिल, आकांक्षित, अभिशप्त, लोचन, रम्य, मन्थिता, सृजन, अमृत, समाधि, पार्वत्य, विचरण, प्रयाण, रजत, तुषारदर्शी, द्रुमदल, वंकिम, शैल, विह्वला, वसन, दिग्दिगन्त, आलिंगित, अवनी, तुषार, निर्झरिणी, परिमल, परिमित, प्रफुल्ल, पार्वती, अनुराग, कोष, गिरीशकन्या, निरुपम, सुषमा, शिंजित, पिक, पंचमी, मन्त्र, मुकुलित, समाधिप्य, शिव, निष्फल, सुधांशु, स्मित, योगाश्रित, अनासिक्त, अभय, अलौकिक, प्रस्फुटित, ज्योति, भुज, नीलाम्बुज, करतल, नाभि, नश्वर, अविनश्वर, गिरिजा, पुष्पांजलि, चरणांगुलि, श्रृंगार, प्रणवस्तूप, इन्द्रेच्छा, पृत्यंचा, कुटिलाक्षि, भ्रकुटि, चरण, विष्णुप्रिया, उमा, समीपति, विसर्जित, कटि, कलश, अम्लान, अधर, अवतीर्ण, दुकूल, सस्य, विहंग, स्फुटित, वशिष्ठ, आर्य, गृहस्थ, कृषि, कर्म, मृत्ति पूजन, कर्तव्य परिपोषित, रूधिर, संस्कार, सुचि, पावस, विमल, अनल, झंकार, अन्तश्शक्ति, ब्रह्मर्षि, संघर्ष, धनराशि, स्फुरित, पावस, ऐक्य, रूधिर, स्वत्व, सुषुम्ना, खद्योत, कामधेनु, अश्व, अनुभूति, लोपामुद्रा, विश्वामित्र, स्मरण, तूर्य, जननी,

घोषा, संग्रथित, अनलोज्ज्वल, तेजोष्ण, वराह,, ऋक्षों, मल्लयुद्ध, उत्तुंग, तरूशिखर, झंझा, वयार, शौर्य, आश्रम, प्रणायामि, पर्णासन, पंक्तिबद्ध, मृग, महिष,शर, गर्वोस्य, मतोस्य, शोणित, समुन्नत, लावण्य, मृत्तिका, अग्नि, दीप्तिदायनी, दीक्षा, उत्थित, सौरभ, निखिल, भुवन, कृति, श्री, संस्कृति, मृदुता, वर्तिका, कावेरी परिणिता, प्रस्तरि, शुष्कता, ऋषि, नवीनता, स्वयम्, मन्त्रोच्चारित, पत्किचित, समृद्धि, क्षत्रिय, अर्पित, प्रलय, शिष्टता,सम्भाषण, ब्रह्मिल, आकांक्षित, आशीर्वचन, संसिद्ध, प्रमुदित, आतिथ्य, स्वयम्, द्वन्द्व, स्वत्व, सहसा, मध्याह्न, सिद्ध, स्तुति, अशनोष्ण, आहलाद, मज, उष्ट, सजल, पदोन्नति, उद्भाषित, गायत्री, असुर, कलुपति, विश्लेषण, प्रणम्य, अभिशप्त, ऋत्विक, अस्वीकृति, गर्भ, स्तब्ध, निःशब्द, स्वयम्, निर्माण, अक्षर, भास्वर, नूतन, कृषि, वसुधा, ब्रह्मिल, श्रुति, उत्क्रान्त, द्युति, संवेदना, संकीर्ण, अखण्ड, विष्णु, शतदल, गणेश, महासंघर्ष, प्रशिक्षित, ऋषि, गण, सृजन, विष, अश्रफ, अनन्त, वितान, भाषा, तिमिर, क्षुधित, विषम व्यथा, प्राण, वाणी, इतिहास, वसुन्धरा, त्रिभुवन, झंकृत, पूर्णिमा नन्दन वन, मधुरिमा, शेफाली, राका, शुष्क, झंझानिल, प्रणय, कुसुम, कटि, तत्क्षण, अरूणिम, अनुकरण, अधर, चन्दन, वक्षस्थल, शशांक, पीयूष, कदली, किसलय, उष्म, स्वेद, पुलिन, घटा, झिर्मिर, खर्मर, कलख, घटा, छटा, श्लोक, अक्षर, स्वच्छन्द, छन्द, उर्मिल, अनंग, शारदा, वृथा, वट, वैभव, देवदारू, निर्जनता, अरण्य, अशोक, प्रफुल्ल, पल्लव, अश्वारोही, महीप, पलाश, मृगयायोजन, तीर्थाटन। मुद्रिका, लौकिक, पुर्नमिलन, महर्षि, घन, मृदुले, प्रभाछन्न, सात्विक, जनक, आशीष, कण्वाश्रम, श्री, स्वरूप, स्फूर्ति, मर्मी, नरेन्द्र, शिलाखण्ड, उर्मि, अतीत तड़ित, पद्मिनी, गेह, शिशिर, विषाद, विजन, सलिल, मीन, मराल, विलुप्त, पराग, स्पर्श, पुलिन, चेतन, अलौकिक, अवदान, सर्वोच्च, मृदुलता, असि, तीक्ष्ण, उज्जवल, शमित, संतृप्त, त्रिगुण, बुद्धि, श्यामल, शावक, रूक्ष, अर्पण, निष्काम, संघर्ष, उत्कर्ष, झंझावत, गुरुतर, नश्वर, तपस्वी, मनस्वी, उद्भ्रान्त, विषमता, मांगलिक।

तद्भव शब्द -

पिछले पृष्ठों में महाभारती के तत्सम् शब्दों की संक्षिप्त झाँकी अंकित कर यह निरूपित करने का प्रयास किया गया था कि कवि ने संस्कृत के प्रत्यय सन्धि और समासों के प्रयोग से निष्पन्न ऐसे शब्दों का बहुल्य प्रयोग किया है। जिन्हें पढ़कर पाठक को कवि

के शब्द पाण्डित्य वैदुष्य का बोध होता है तो दूसरी तरफ रचना में संस्कृत भाषा भाष होता है। यहाँ हम तद्भव के कुछ शब्दों की सूची प्रस्तुत कर यह दिखाने का प्रयास कर रहे हैं कि कवि ने संस्कृत से निष्पन्न शब्दों की मूल प्रकृति के अनुसार ढ़ाल कर प्रयोग कर दिया है ऐसे तद्भव शब्द जो खड़ी बोली के तत्सम रूप में खप गये हैं ये तद्भव कहीं संख्या कहीं अपव्य कहीं विशेषण और कहीं क्रियाओं के रूप में प्रयुक्त हैं। कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं –

हिलोर, अमिट, निठुर, चरने, जामुन, धुआँ, मोर, सुधि, कान, सुख, धरती, कोयल, आँखें, हर, उषा, पग, चोंच, आम, ऊँचे, अनगिन, उछ्ल, दोपहर, निरत, अनगढ़, आग, रात, सुहाग, सपनें, ठूँठ, घोड़ा, भौरा, खूँटी, मोती, बाघ, धुन, उजली, साँस, कपास, अधमरा, ओंठ, गुच्छा, चकवा इत्यादि।

विदेशी शब्द -

कवि समाज से जनभाषा के रूप में शब्दों को ग्रहण करता है, किन्तु लोक भाषा में प्रस्तुत इन शब्दों से साहित्यिक रचना तभी बनती है जब इनका प्रयोग, भाव, रस, एवं पात्रानुकूल रूप में प्रयुक्त हो। पोद्दार रामावतार ने महाभारती में उर्दू, फारसी, अरबी के बहुप्रचलित उन शब्दों का प्रयोग किया है जो अपने मूल स्वरूप से विकृत होकर हिन्दी में समाविष्ट हो गये हैं। ये विदेशी शब्द गिनती के लिए ही दिखाये जा रहे हैं। क्योंकि यह अपने मूल रूप से अलग होकर हिन्दी रूप में ही ढ़ल गये हैं। दूसरी वात यह ध्यान देने योग्य है, कि ये शब्द कुछ–कुछ तद्भव का आभास देते हैं। कुछ शब्द उदाहरण स्वरूप नीचे दिये जा रहे हैं।

अजगर, मुस्काना, सुनसान, अकेला, झंकार, चाँद, चमाचम, नलान, उभार, बिजली, पुकार, फूल, चरवाहा, खाई, उजड़े, तरबूज, खरबूज, चाँदनी, पहाड़, जंगल, डगर, डाली, बिजली, डोगी, बाँवरा, चट्टान, व्यार, आले, मछ्ली, अन्जान, माँस, ओझल, आँधी, पीर, लाली, रंगीनी, बयार, रानी, अधूरा, सुनहला, खप्पर, आदि।

देशज शब्द -

देशज शव्द वे शव्द कहलाते हैं जिनकी या तो व्युत्पत्ति ठीक से पता नहीं या स्थानीय रंग के कारण वे हमारे बोलचाल में प्रयुक्त होने लगे हैं। कुछ शब्द तत्सम का अवश्य आभास देते हैं। किन्तु उनके तद्भव और देशज रूपों की प्राप्ति हेतु द्रविण

प्राणायाम ही हाथ लगता है। ये शब्द कुछ युग्म रूप में और कुछ स्वतंत्र रूप में दिखाई देते हैं। बात यह है कि वर्तमान हिन्दी भाषा में ब्रज, अवधी, कन्नौजी आदि बोलियों के साथ अन्य प्रान्तीय भाषाओं के तथा कुछ उर्दू के सरलीकृत शब्द देशज रूप में जाने पहचाने जाते हैं। जैसे - ऊँघती, धुन्ध, चिड़िया, जोल (जोई) ठनक, ओढ़ना, वुक, ठाठ, तलहटी, पगुराती, कछार, पगड़ंडी, अटपट, कछमछा, केचुल, छिछली, कोयल, कपास(कर्पास) कहते हैं। (तत्सम्)

ध्वन्यात्मक शब्द :-

महाभारती की कथा प्रलय सृष्टि विस्तार और पौराणिक ऋषि मुनियों की गाथा है। अतः इसमें प्रकृति का उन्मुक्त प्रयोग कोमल, कठोर रूपों की झाँकी मानव के साथ उसकी तदाकारिता और मनुष्य की जय यात्रा वर्णित है। अतः यह स्वभाविक है कि कवि देशकाल, परिस्थिति, वातावरण के चित्रण हेतु भाषा को तद्म रूप अलंकृत करे। इस हेतु कवि ने पुनरूक्ति प्रधान द्विरूक्तियाँ ध्वन्यात्मक शब्द, पशु पक्षी झंझावात के ध्वन्यात्मक शब्द इस रचना में बहुत मिलते हैं। प्रायः प्रकृति के जीवों या तत्वों में संहार आलोड़न या विलोड़न से उत्पन्न ध्वनियां कोमल या कठोर रूप में प्रयुक्त हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है।

तिमिराछन्न, दिवकाल, नन्दनासन, धधकता, उत्थित, रक्तरंजित, खुरखुर, टंकार कूरोच्चार, डमरू-डम-डम-डम-डमिक, डगमग, धमका, निरस्तब्ध, विपन्न, तुच्छ, कछमक्ष-कछमक्ष, राग-रंग, तन तरंग, नव उमंग, झक-झमक-झनक, त्रिण, त्रिणिण-त्रिणिण, द्रिम-द्रिम, मृद्रंग, झिन-झन-झन, टिम-टिम, गुन-गुन, गुन-गुन गुंजन, सुहाग कुंकुम, नर्तन कंठ छन्द, झरर, झंकृति, झकझोर, झंकार, झंझावत, छिट्कती कुन्देन्दु, निनादित, शास्त्र शतदल, प्रलय परावार, गगन गर्जित, घूर्णाग्नि, अजगरी फुफकार, घनन-घनघन, पवन, सनसनाता, वरूण हुंकार, रणन रण मत, फनफनाता, हिल्लोलित, फेनोच्छ्वास, हिन्दोल, झंझाकान्त, तड़ाग, निर निनाद, विह्वल, हिम-हास, फनफनी, झुनझुनाती, द्रुम कुसुम तम तूर्य, हरहराते, सलिल गुंजित, विहँसती, लहलहाती, खिलखिलाती, किन्नरित कचनार, मैखी गुंजार, नृत्योल्ललास, घटापंक्षी, विचुम्बित, गड़गड़ाता कुण्डिलत घन, डमडमाता व्योम, कड़कड़ाती चंचला, तड़तडाता तम-तोम, पिंगल, वज्रदन्ती, झंझावात, टूटती चट्टान, ध्वनि हुई बारम्बार, कटकटाती, टलमलाता, गरजती, घरघराहट, सनन सन-सन-प्रभंजन, अशान्त, हिमहास, नर्तित, द्युति-वृष्टि, धूल-दुकुल, सिन्धु अशान्त,

लपलपाती, गर्जन घोर, वज रही विधि बीन, प्रचण्ड, तड़तड़ाने लगा प्रस्तर खण्ड, विभासित, घनघनाती वायु, ज्योति चक्र तरंग, तड़ित, झींगुर सन्ध्यान्त, वरसती, सनसनाता नाद, हुहुकते भूकते गिरि श्वान, निर्जनता भट्कू, अट्कू धुत्यतम, कुलकुलाता, निर्झरमुखी, घुट्घुटाता, टिमटिमाता, हिलोर, तन्द्रा भंग, नृत्य, विभूषित, झंकार, श्रुति मन्त्र, प्रफुल्ल, सरसराता व्याल चमाचम, झिलमिलाता, मूस्खलन, नर्तित, गुंजरित, कल्लोल, हिन्दोल, महावाणी, चंचल, शंख, निर्झर, झंकृत, स्फुरित, मुकुला, गन्धित, हँसती सी, धँसती सी, चंचलाओं, चमचमाती, घटायें, ऋचाओं, उड रहा सा, मुस्कराती सी, छलकता, चमकता, चराता सा, द्युति सी, चुनती, छीट्ती, तृण, तितलियों, फुदकते, भनभनाता, चाट्ती, गन्धगर्वी, पावस, मल्लिका, निखरती, धनबृद्धि, फडफडा, बारम्वार, निचोडी, कुहुकती, पिहकती, सरसराहट, सरसराती, लहलहाती, छुम-छम, क्वणन-झन, झप-झमक, यमक-अभंग, द्रिम-द्रिम-द्रिमिर-द्रिर, हर्षित, झनझनाहट, टुनटुनातें, हिलती, अधखुले मुक्ता-मुकुल की मृदुलता खिलती, गुंजरित, नीलमी, अलियाँ, माणिक्य, कलियाँ, कनक-रजत, अलंकृत, उल्लास ही उल्लास, कुल्ला कनक निर्झर, दुकल, रंग तरंग, क्षण-क्षण क्षणिक, घनसा, शिंशिपा पल्लवित, पलास, प्रफुल्ल, द्युति किरीट विकीर्ण, कुण्डलित, भूपति, आयुध, दिव्यास्त्र, उच्छ्वास, छायाच्छन्न, झनझनाते, गरजती, बिखरती, गगन गर्जन, कम्पन, घिरता, दुकुलों, शब्द पंखी, स्वप्नगंधी, विखरते, विप्लव, वात, ऋत्विक, कुंकुम, अंजलि, जगमगाती, झिलमिलाती, अर्द्धांगिनी, कोलाहल, उथल-पुथल, विह्वल कलबल-छल, तल-अतल, टलमल, हलचल, विकल, अट्टहास, श्रंगार देह, छिट्कती, फुफकार, हिल्लोलित, झमकती, उबलती, घिरता, चुपचाप, ऊपर, डकार।

ख. संवाद योजना

संवाद योजना नाट्क का मूल प्राण है। महाकाव्यों में इस योजना के प्रयोग से जहां एक ओर कथावस्तु का विकास होता है वहीं दूसरी ओर प्रयुक्त पात्रों के हृदगत भावों की अभिव्यक्ति भी होती है। यद्यपि छन्दबद्ध रचनाओं में संवादों का प्रयोग एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत ही होता है क्योंकि कवि को छन्दवद्ध वर्ण या मात्राएं लय या तुक का ध्यान रखना पड़ता है। यदि इस समस्या से कवि उवर सके तो निश्चय ही संवादों से काव्य में लालित्य, आवेग और प्रभविष्णुता आ जाती है। क्योंकि पात्रों के बोलने से गद्यात्मकता काव्यगत अर्थ, सौरस्य की अभिव्यंजना में विशेष सहायक होता है।

पहले कहा जा चुका है महभारती में छोटी-छोटी विश्रुत कथाओं का सगुम्फन है। कथागत पात्र परस्पर वार्तालाप से कथा का विकास करते हैं। इन संवादों में रम्भा-उर्वशी, असुर-उर्वशी, भरत-उर्वशी, अगस्त्य-वशिष्ठ, अरून्धती-वशिष्ठ, लोपामुद्रा अगस्त्य, विश्वामित्र शम्वर, विश्वमित्र रोहिणी, विश्वामित्र-त्रिशंकु, मेनका-दुष्यन्त, भरत-शकुन्तला, दुष्यन्त-भरत, प्रमुख संवाद स्थल है।

रामावतार पोद्दार के इन संवादों में त्वरा है। पात्रगत आवेग है और सर्वाधिक वैशिष्ट्य इनका प्रत्युत्पन्न मति है। स्थानाभाव के कारण सभी संवादों का विश्लेषण संभव नही है। कवि के संवादजन्य सौष्ठव निदर्शन हेतु कुछ संवादों के गुणों का विश्लेषण किया जा रहा है। यह संवाद लघु, दीर्घ, सरल, अलंकृत रूप में वांटे जा सकते हैं।

दीर्घ संवाद प्रायः स्वगत कथन के रूप में प्रयुक्त हैं, जिसमें विश्वामित्र-अगस्त्य, वशिष्ठ संवाद प्रमुख हैं। हम यहाँ उनके कुछ छोटे और अलंकृत संवादों के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

लघु संवाद -

इस प्रकार के संवाद रम्भा, उर्वशी, अरून्धती, वशिष्ठ, दुष्यन्त, शकुन्तला के संवाद के रूप में मिलते हैं। जिनमें पात्रों की प्रतिक्रियाएं उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द तथा तद्गत प्रभाव वड़ी कुशलता से व्यंजित हुए हैं। पुरूरुवा-उर्वशी के संवाद का उदाहरण दिष्टव्य हैः-

1. *उर्वशी रूको - बोले वे सविकल एक बार।*
मेरे सम्मुख छा गया साँझ सा अन्धकार।
फूटा पुरूरुवा गुप्त प्रणय घट दृग पथ पर। (1)

इन्हीं लघु संवादों का एक रूप सरल शब्दावली का जिसमें कवि ने पात्रगत शब्दावली अत्यन्त सरल और गद्यात्मक रखी है।

1. *सुनकर आवाक् ऋषि श्रेष्ठ प्राण प्रस्ताव मर्म*
निकला मुख से यह कठिन कर्म यह कठिन कर्म।
नभ चुम्वी नग श्रेणी विनाश मुझे असाध्य।
मत करों, हठी विश्वरथ मुझे बाध्य।। (2)

---

(1) महाभारती, पृ0 84

(2) महाभारती, पृ0 145

इन्ही सरल संवादों में प्रेमप्लावित शकुन्तला के विषय में प्रयुक्त संवाद जहां एक ओर काव्यात्मक वन पड़े हैं वहीं दूसरी ओर शब्दों की दुरुक्तियों से आवेग की सृष्टि हुई है। जैसे :-

सखि कमल पत्र द्रुत ला द्रुत ला।
झर जाये न कही नयन मुक्ता।
द्रुत ला द्रुत ला में रस मुग्धा।। (1)

कहना नहीं होगा कि संवादों की आवृत्ति से त्वरा दिखाई पड़ती है। तो व्यर्थ और व्यथा शब्दों का प्रयोग पुनरूक्ति दोष की सृष्टि भले करता हो किन्तु नायिका के आवेग की अभिव्यंजना प्रवाह में यह पुनरूक्ति वाधक नहीं है।

अलंकृत संवाद :-

कवि ने दीर्घ समास वहुला भाषा का पुष्कल प्रयोग किया है। इस भाषा में अभिजात्य गुण सर्वत्र दिखाई देता है, इस हेतु कवि ने अलंकृत शब्दावली का विशेष प्रयोग किया है। वर्णन से इतर जहां कहीं संवादों की आवश्यकता पड़ी है। अलंकृत संवादों का प्रचुर प्रयोग हुआ है लोपामुदा-विश्वामित्र, विश्वामित्र-रोहिणी संवाद इस प्रकार के संवादों के विशिष्ट स्थल हैं। जैसे वसिष्ठ और विश्वामित्र के मध्य प्रयुक्त संवादों को देखिए :-

1. *आर्य भू पर अनार्य विद्रोह*
   असम्भव जब तक ऐक्य अटूट
   किन्तु कुछ अश्वारोही ही उग्र
   कभी कुछ ले जाते हैं लूट (2)
2. *उत्तर मनः क्षिति पर न उज्ज्वला ज्योति*
   आत्म सम्भाव्य सुषुम्ना स्रोत
   इड़ा में भी पिंगला प्रकम्पित
   चंद्रिका में भी ज्यों खद्योत(3)

---

(1) महाभारती, पृ0 145

(2) महाभारती, पृ0 100

(3) महाभारती, पृ0 100

प्रत्युत्पन्नमति युक्त संवाद :-

इस प्रकार के संवादों में वक्ता के बुद्धि त्वरा, और कथन वक्रिमा विशेष रूप से द्रष्टव्य है शम्बर और विश्वामित्र संवाद का एक उदाहरण देखिए –

1. *तुम ! पुत्रवधू की काटोगे ग्रीवा सबोध*
छिः छिः महर्षि मैं करती हूँ इच्छा विरोध
शम्बरी अनार्या नहीं, नहीं अब नहीं आर्य
ताराक्षर में अंकित होंगे इसके सुकार्य। (1)

सारांश यह है कि संवादों का वहु-आयामी प्रयोग नाट्य कला की वस्तु है। महाकवि घट्नाओं में नाटकीयता, विश्वसनीयता और रसात्मकता लाने के लिए संवादों का प्रयोग करते हैं। कवि की कुशलता इस वात में होती है कि वह इन संवादों से कथावस्तु का विकास तो करे ही इससे अभिनयात्मक वृत्ति भी संतुष्ट हो। रामावतार पोद्दार ने महाभारती में सरल, अलंकृत, चरित्र ज्ञापक संवादों का प्रयोग किया है। कुछ स्थलों के संवाद गद्यात्मक प्रभाव रखने वाले बन पड़े है। वक्ता की प्रवृत्ति के अनुरूप प्रयुक्त संवाद उनके भाषा कौशल के श्रेष्ठ निदर्शन हैं।

(ग) अलंकार एवं ध्वनि

अलंकार की व्युत्पत्ति अलंक्रेयते अनेन इति अलंकारः अर्थात् अलंकरोति इति अलंकारः से की जाती है। अलंकार वादियों ने इसे काव्य की आत्मा कहा है।

काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते। (2)

भामः इसे काव्य का मूल तत्त्व मानते हैं। दण्डी इसे शोभाकारक धर्म कहते हैं। इस प्रकार रस एवं ध्वनि सम्प्रदाय के विकसित होने पर अलंकारों को सहायक तत्व के रूप में मान लिया गया है। यह रमणीयता, भाव-विधान, भाव-प्रकाशन तथा तथ्य निरूपण में रहती है।

भारतीय आचार्यो ने अलंकारों का वर्गीकरण बहुविधि रूप से किया है मुख्य रूप से शब्द और अर्थ के आधार पर यह वर्गीकरण कर सादृश्य मूलक, विरोध मूलक,

---

(1) महाभारती, पृ0 166

(2) दण्डी

श्रृंखलामूला, न्यायमूलक और गुणार्थ प्रतीति मूलक अलंकारों का उल्लेख किया है। यहां हम अध्ययन सारल्य हेतु शब्द और अर्थ के अन्तर्गत इन अलंकारों के लक्षण लिखकर महाभारती से उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

शब्दालंकार

जहाँ काव्य में चमत्कार शब्दाश्रित होता है उसे शब्दालंकार कहते हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष वक्रोक्ति इसके प्रमुख भेद होते हैं –

क. अनुप्रास – *आचार्य मम्मट ने कहा है कि वर्ण साम्य अनुप्रासः(1)*

अर्थात् सामान वर्णो के न्यास को अनुप्रास कहते हैं इसके छेक, वृत्त, श्रुत्य, लाट और अन्त्य भेद होते हैं।

ख. छेकानुप्रास – जहां वर्णो की आवृत्ति केवल एक बार हुई हो वहां छेकानुप्रास होता है।

1. कुटिल केलि प्रहार से दिक ध्वनित इन्द्राकाश। (2)

2. व्योम वारिध का अतल जल में सशक्त प्रवेश। (3)

3. कूर्म केन्द्रित उत्स पर संवलित कश्यप प्राण। (4)

ग. वृत्यनुप्रास – जहां अनुकूल वर्णो का प्रकष्ट विन्यास कई बार हो वहां वृत्यनुप्रास होता है।

1. कडकड़ाती चंचला तड़तड़ाता तमव्योम (5)

2. प्राणों में प्रिय परिचित प्रसंग नव-नव रति गति नव-नव उमंग।(6)

यमक – आचार्य मम्मट ने कहा है कि भिन्नार्थक वर्णो का पुनः श्रवण यमक अलंकार कहलाता है।

---

(1) काव्य प्रकाश, 9/79

(2) महाभारती, प्रथम सर्ग पृ0 21

(3) महाभारती, प्रथम सर्ग पृ0 22

(4) महाभारती, प्रथम सर्ग पृ0 23

(5) महाभारती, प्रथम सर्ग पृ0 27

(6) महाभारती, पृ0 360

अर्थे : सत्यार्थे भिन्नानाम वर्णनाम साः पुनः श्रुति। (1)

आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है कि भिन्नार्थ अथवा निरर्थक स्वर - व्यंजन समुदाय की आवृत्ति को यमक कहते हैं -

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजन संहतेः।

क्रमेण तेनेवावृत्तिः यमकं विनिगद्यते।(2)

देह से ही हो सकेगी देह की उत्पत्ति। (3)

यहाँ प्रथम देह का अर्थ मिट्टी और दूसरे देह का अर्थ शरीर है। यम का आभास वाले शब्दों का प्रयोग महाभारती में बहुत हुआ है।

उदाहरण :- अल्पना कल्पना पर आये अश्वारोही मेरे महीप।(4)

श्लेषअंलकार :- साहित्य दर्पण के अनुसार शिलष्ट पदों से अनेंक अर्थो का अभिधान होने पर श्लेष अलंकार होता है।

शिलष्टयै र्पदै रने कार्था भिधाने श्लेष इष्यते ।(5)

1. तारांकि नभ उत्तरीय बह गया सुधा धारा में। (6)

2. मानस की मुक्ता नयनों से निकल गयी थी।(7)

3. झुके थे विद्युत वलाका विभूषित घनश्याम।(8)

वक्रोति :- जहाँ श्लेष अथवा काकु से वक्ता के कथन को श्रोता भिन्न अर्थ में समझे वहां पर वक्रोक्ति अलंकार होता है।

---

(1) काव्य प्रकाश, पृ0 9/83

(2) साहित्य दर्पण,

(3) महाभारती, पृ0 35

(4) महाभारती, पृ0 361

(5) साहित्य दर्पण, पृ0 10/11

(6) महाभारती, पृ0 299

(7) महाभारती, पृ0 419

(8) महाभारती, पृ0 53

1. निर्मम पृथ्वी तू भेज कहीं से पुरुष वीर।
कोई भी रखता नहीं यहां तूणीर तीर।।(1)

अर्थालंकार

उपमा – जहाँ उपमेय की तुलना के लिए उपमान रूप में मानवेतर सृष्टि से तुलना की जाये वहां उपमा अलंकार होता है। इसके चार अंग कहे गये हैं। उपमेय, उपमान, साधारण धर्म, वाचक शब्द। महाभारती में उपमा का पुष्कल प्रयोग हुआ है जैसे –

1. रिक्त मदिरा पात्र–सा लोचन उदास–उदास। (2)

2. महाशिवगिरि घन जटा में एक उजली–कान्ति।
उतरती–सी गगन गंगा की मनोरम भ्रान्ति।(3)

3. इन्द्रभावी मनुज में पशु–सा न सीमित ज्ञान।(4)

4. ऊँघती–सी घाटियों में जीर्ण जलद् वितान।(5)

5. उषा वस्त्रा कामिनी–सी कौन तुम अम्लान।
कमलिनी सी कान्ति में ज्यों आकाश की मुस्कान।(6)

रूपक :– उपमेय में उपमान में अतिशय सादृश्य के कारण जब दोनों में अभेद आरोप होता है उसे हम रूपक अलंकार कहते है। काव्य प्रकाश कार ने लिखा है –

तत् रूपकम् भेदो यः उपमानोपमेय उपमान योह आह। (7)

महाभारती में उपमा की भाँति ही रूपक के वहुत प्रयोग मिलते हैं प्राकृतिक वन्य सुषमा, नारी–सौन्दर्य प्रसंगों में कवि ने सांग एवं निरंग दोनों रूपकों का अधिक प्रयोग किया है। जैसे –

---

(1) महाभारती, पृ0 75
(2) महाभारती, पृ0 27
(3) महाभारती, पृ0 30
(4) महाभारती, पृ0 31
(5) महाभारती, पृ0 33
(6) महाभारती, पृ0 35
(7) काव्य प्रकाश 10/43

1. श्वेतिमा पर सिंहनी संध्या पटकती पुच्छ। (1)

2. हिमानी सरि पंक में मृगराज फँसते से। (2)

3. सान्ध्य पथ पर उतरता किरणास्व रथ से सूर्य

बज रहा-सा-सुगन्धाकुल द्रुम-कुसुम-तम तूर्य।।(3)

4. मन तरंग पर फूल फेंकती मेरी मानस राका। (4)

5. स्फूर्ति बीच में रस प्रसन्नता मनः शक्ति से आती। (5)

6. चन्द्रोज्ज्वल कैलास-पार्श्व में पद्मिल मानसरोवर।

हंस मिथुन-प्रतिबिम्ब-प्रकम्पित झिलमिल झिल जल सुन्दर। (6)

भ्रान्तिमान :- अत्यन्त सादृश्य के कारण प्रकृति में अप्रकृति के निश्चयात्मक ज्ञान को भ्रान्तिमान अलंकार कहा जाता है। मम्मट ने कहा है -

भ्रान्तिमानन्य संवित् तत्तुल्यदर्शने।(7)

1. गतिमान सुमन उद्यान समझ मडलाये मुझ पर मत्त भ्रमर।(8)

2. घेर लेते थे मुझे मयूर विजन वन पथ पर एकाएक।

नाच उठते थे वह चुपचाप खुले मेरे केशों को देख। (9)

कवि ने भ्रमर एवं मयूरों की भ्रान्ति का वड़ा ही मनोरम वर्णन किया है। कुसुम गन्धा नायिका की गन्ध से भौरों का आकृष्ट होना एवं केश कलापों में मोरों को घन की भ्रान्ति हो जाना अत्यन्त आकर्षक है।

प्रतीप अलंकार :- प्रतीप का अर्थ उल्टा होना अर्थात् जहाँ प्रसिद्ध उपमान को उपमेय वना

---

(1) महाभारती, पृ0 23

(2) महाभारती, पृ0 24

(3) महाभारती, पृ0 25

(4) महाभारती, पृ0 291

(5) महाभारती, पृ0 294

(6) महाभारती, पृ0 297

(7) काव्य प्रकाश 10/132

(8) महाभारती, पृ0 340

(9) महाभारती, पृ0 368

दिया जाय या उसे उपमेय के सामने हीन सिद्ध किया जाय, वहाँ प्रतीप अलंकार होता है। साहित्य दर्पण कार ने लिखा है –

प्रसिद्धस्यो मानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाविधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते।।(1)

1. कभी रुक जाती थी मृग प्रिया देख लम्बे लोचन की कोर।
लजा जाती थी पाटल कली प्राप्त कर अंगुलि स्पर्श प्रसाद। (2)

2. देख कर मेरी कोमल बांह मिटा था लतिका शिशिर विषाद।(3)

अर्थान्तरन्यास :- जहां एक ही अर्थ को विभिन्न दूसरे शब्दों में रखा जाय वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। इस अलंकार में दो वाक्य होते हैं सामान्य और विशेष दोनों की साधर्म्य या वैधर्म के द्वारा समर्थन किया जाता है। मम्मट ने लिखा है कि

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा। (4)

1. अपने को भूल गया कोई उर्वशी निकट
हिल गया रूप के झोंके से दृढ़ पौरुष वट
मेरी भी निरुपम कला साधना हुई भंग
कितनी चंचल उद्भ्रान्ति तिमिर गति की तरंग।। (5)

2. ले उड़ा कर नीचे गुरु को देवयान।
शोकित कर देता सुरपुर को भी विधि विधान। (6)

4. झुकता न कदाचित कला सत्य का स्वाभिमान।
साधना बना देती है मानव को महान।(7)

---

(1) काव्य प्रकाश, 10/109
(2) महाभारती, पृ0 87
(3) वही
(4) काव्य प्रकाश, पृ0 10/109
(5) महाभारती, पृ0 87
(6) महाभारती, पृ0 87
(7) महाभारती, पृ0 87

5. *सागर तरंग सा सुख-दुख का उत्थान पतन।*
करना ही पड़ता ही जीवन को आघात सहन।
दुःख द्रवित निराशा से होता अशक्त शरीर।
पुरुषार्थ मिटा देता है आत्म अधीर पीर।। (1)

दृष्टान्त अलंकार :- जहाँ दो वाक्यों में आये उपमेय और उपमान को समान धर्मो में विम्व प्रतिविम्ब भाव सम्बन्ध हों वहां दृष्टान्त अलंकार होता है। मम्मट ने उपमेय उपमान और साधारण धर्मो में विम्ब प्रतिबिम्ब भाव का उल्लेख किया है। (2)

1. *रत्नाकर ने निरखि चन्द्रमणि शिव ज्यों सस्मित*
आभारत शिशु कान्ति देख दुष्यन्त विमोहित। (3)

2. *मृत्यु से जो न हारता कभी वही तो जीवन का आलोक।*
जहाँ जितनी दुर्बलता व्याप्त वहाँ उतना ही गुरुतर शोक।।(4)

निदर्शना :- दो वाक्यों में परस्पर सम्भव और असम्भव सम्वन्ध होने पर भी उपमा के द्वारा उसमें सम्वन्ध की कल्पना करना निर्दशना अलंकार होता है। भामाः, दण्डी तथा वामन के अनुसार निदर्शना अलंकार वहाँ होता है, जहाँ कार्यान्तर में प्रवृत्त कर्ता अपने कार्य से किसी अन्य कार्य का बोध करता है, जैसे :-

1. *रुक्ष सा नारिकेल फल किन्तु मधुर जल संचित अन्तरकोष।*
नियति जब हो जाये विपरीत भला इसमें क्या मानव दोष।। (5)

2. *धना घटा ऐसी सात्विक कौम नहीं जिसमें विद्युत का वास।*
भला ऐसा भी कोई फूल न जिसमें कोई गंध उच्छ्वास। (6)

प्रतिवस्तूपमा अलंकार :- जहाँ एक वाच्यार्थ का दूसरे के साथ समान धर्म का पृथक-पृथक वर्णन हो वहाँ प्रतिवस्तुपमा अलंकार होता है। साहित्य दर्पणकार ने लिखा है-

---

(1) महाभारती, पृ0 263
(2) काव्य प्रकाश, 10/102
(3) महाभारती, पृ0 420
(4) महाभारती, पृ0 376
(5) महाभारती, पृ0 375
(6) महाभारती, पृ0 372

प्रतिवस्तुपमा सा स्याद्वाक्य योगर्न्यसम्ययोः।
एकोऽपि धर्म सामान्यो यत्र निर्दिश्यते प्रथृक।। (1)

1. उगा है ऐसा एक दिनेश जो कि दे रहा सजीव प्रकाश
उठ रही नित चेतना तरंग व्याप्त हो रहा आत्म-विश्वास।। (2)

2. एक मुझमें भी कोई और प्राण में भी प्राणों का वास।
विम्ब से ज्यों उज्जवल प्रतिबिम्व छांह में भी जो सूक्ष्म प्रकाश। (3)

तद्गुण अलंकार :- अपने गुण को छोड़क उत्कृष्ट गुण वाली दूसरी वस्तु के गुण को ग्रहण करना तद्गुण अलंकार है। (4)

1. स्नान के पूर्व बसन्त समीर, वृक्ष को देता था झकझोर।
फैल जाती थी पुष्प संगुन्ध ताल के जल के चारों ओर। (5)

मानवीकरण अलंकार :- यह अलंकार पाश्चात्य जगत से आया हुआ अलंकार है जहाँ प्रकृति के क्रिया कलापों को मानव रूप देकर वर्णित किया जाता है वहाँ मानवीकरण अलंकार है।

1. सूर्य पीता रहा वाडव वाष्प रस चुपचाप।
उठा ऊपर स्वयं ही संतृस्त जल संताप।। (6)

2. पीत पत्रावली को जब दिया ऋतु ने तोड़।
जब मुकुल में देखती सी प्रकृति निज मुकुलाप।(7)

---

(1) साहित्य दर्पण, 10/49-50
(2) महाभारती, पृ0 377
(3) महाभारती, पृ0 378
(4) तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः (साहित्य दर्पण)
(5) महाभारती, पृ0 369
(6) महाभारती, पृ0 22
(7) महाभारती, पृ0 25

उल्लेख अलंकार :- जहाँ एक ही वस्तु का वहुविधि वर्णन हो, वहाँ उल्लेख अलंकार होता है। वस्तुओं का उल्लेख इस प्रकार होना चाहिए कि उस कथन में चमत्कार का आविर्भाव हो सके।

1. *मैं किसी मेनका के मन की माध्वी निशा की माया सी*
   मैं किसी स्वर्ग की सुषना की उतरी सदेह छवि -छाया सी।।
   मैं किसी तपस्या, ईर्ष्या से निकली सौन्दर्य कमलिनी सी।
   मैं किसी इन्द्र की इच्छा से नयनों की नलिनी अलिनी सी।। (1)

घ. रीति, शब्द शक्ति एवं गुण

रीति -

भारतीय काव्य सम्प्रदाय में रचना चमत्कार के लिए प्रवृत्ति रीति ओर वृत्ति शब्दों का प्रयोग किया गया है। रीति की विशिष्ट व्याख्या और इसकी महत्ता प्राचीन काल से चली आ रही है। भामह, दण्डी आदि ने रीति शब्द का उल्लेख किया है।

रीति सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा करते हुए वामन ने रीतिरात्मा काव्यस्थ कहा है और इस प्रकार रीति का अर्थ करते हुए विशिष्टःपद रचना रीतिः। कहकर विशिष्टता का अर्थ गुण सम्पन्नता से किया है। और गुण का अर्थ है काव्य में शोभादायक धर्म। इस प्रकार शोभाकारक शब्द और अर्थ के धर्म से युक्त पद रचना रीति है। काव्यलंकार से सूक्त में देश पर आधारित रीति को वेदर्भी, गौणीया और पांचाली त्रिस्वरूपा कहा गया है। परवर्ती आचार्यो ने रीति का सम्बन्ध गुणों से और वृत्ति से कर दिया। बात यह है कि रीति के विधायक 3 तत्व होते हैं। शब्द संयोजना, समास रचना और वर्ण सगुम्फन। इस प्रकार मन्मट और साहित्यदर्पण कार ने वेदर्भी गौणी, और पांचाली के साथ उपनागरिका परूसा और कोमल संज्ञक वृत्तियों से उसका सम्वन्ध कर दिया।(2)

वैदर्भी गौणी और पांचाली रीति के साथ उपनागरिका, परूशा और कोमल वृत्ति का सगुम्फन है।

---

(1) महाभारती, पृ0 324

(1) काव्य प्रकाश एवं साहित्य दर्पण नवम उल्लास, नवम परिच्छेद।

वैदर्भी रीति एवं उपनागरिका वृत्ति :-

आचार्य मम्मट ने माधुर्य व्यंजक वर्णो से युक्त वृत्ति को उपनागरिका कहा है।(1)

विश्वनाथ ने माधुर्य व्यजंक वर्णो द्वारा की गयी समास रहित अथवा छोटे-छोटे समासों से युक्त मनोहर रचना को वैदर्भी रीति माना है।

आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीति रिष्यते।(2)

महाभारती में वैदर्भी रीति एवं उपनागरिका वृत्ति की बहुलता है। कुछ उदाहरण दृष्टब्य हैं।

सस्वर निर्झर जल आलापित पुलकित प्रपात
स्वर्गिक सुगन्ध संचित वसंत सुन्दरीरात
झूमती डालियों की फूली फैली सुषमा
निरुपमा यौवना उमा तपोवन की उपमा।।(3)

सीपियाँ छिपा पार्यी न हृदय के मोती
अबतो निषाद कन्यायें उन्हें सँजोती
बिजली की कली खिली श्यामली घटा में।
उजली-उजली कविता चचंला घटा में। (4)

कूक न कोयल अधिक अप्सरा अभी बजाती वीणा।
नूतन प्रकृति और भी होती जाती नवल नवीना।
मन की महादेवी फूलों को पंख न दे बलशाली।
रहने दे कुछ विमल हिमालय पर हंसिल उजियाली।(5)

मैं भोली भाली थी कितनी वे कितने भावुक थे उदार।
उनके आने पर ही मेरे हिल गये साँस के सभी तार।(6)

---

(1) काव्य प्रकाश, 9/107 (मम्मट)
(2) साहित्य दर्पण, नवम परिच्छेद
(3) महाभारती, पृ0 66
(4) महाभारती, पृ0 184
(5) महाभारती, पृ0 301
(6) महाभारती, पृ0 355

चीची ची वी ची वी चॉय चॉय

चुन चुन नग मग खग कलरव

उडती मुड़ती पंख तरंगों पर

स्वर्णिम निधियाँ नव।

कस्तूरी मृग की सुगन्ध से मन पथ में उद्दीपन।

मुकुलित कलियों के मुख सुख पर मधुकर मधुमय गुंजन।(1)

उपर्युक्त उदाहरणों में शब्दों की द्विरूक्तियों से अनुस्वार या पंचम अक्षर की प्रधानता अथवा शब्दों को कोमल रूप में प्रयोग करने की शक्ति के कारण अल्पप्राण अक्षरों की प्रधानता है जिससे वैदर्भी सुन्दर वन पड़ी है। कवि ने शताधिक स्थानों पर इस प्रकार की रीति का उपयोग किया है। कहीं प्रकृति की कोमल मादक आलंकारिक सुषमा के वर्णन में कभी उर्वशी, मेनका, पार्वती और शकुन्तला के अम्लान नैसर्गिक सौन्दर्य चित्रांकन में या तो कभी राष्ट्र उन्नति के लिए बनाई गयी नीति निर्धारण सम्बन्धी नियमों के चित्रांकन में वैदर्भी की छटा दर्शनीय है।

गौणी रीति या परुशावृत्ति –

मम्मट ने ओजः प्रकाशकेस्तु परूशः कहकर ओज प्रकाशक वर्णो से युक्त रीति में गौणीया माना है। जबकि विश्वनाथ ने ओज प्रकाशित करने वाले कठिन वर्णो से बनाये हुए. दीर्घ समासों से युक्त पदबन्ध को गौणीया रीति कहा है।

ओजः प्रकाशकै वर्णैर्बन्ध आऽडम्बरः पुनः। समास वहुल्य गौणी।(1)

कवि पोद्दार ने प्रकृति की भयंकर विभीषक । उसमें विस्फोट समुद्र में उद्दाम लहरों का नर्तन शम्पाओं का भयंकर निपात अथवा विश्वामित्र के क्रोध, सेनाओं की रणगर्जना में गौणीया रीति का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टब्य हैं :-

ताण्डवित जल ज्वार में घूर्णाग्नि धूम्र तरंग

तमाच्छादित अजगरी फुफकार भंग-अभंग

घनन-घन-घन-पवन का सनसनाता संसार

विभावसु परित्यक्त्य पावक का वरूण हुँकार

---

(1) महाभारती

(2) साहित्य दर्पण, नवम परिच्छेद

सलिल कोलाहल प्रभंजन रणन झन रण मत्त
उग्र नर्तन चक्र वेष्टित सिन्धु स्वप्न समस्त
कुटिल केलि प्रहार से दिग ध्वनित इन्द्राकाश
फनफनाता सृजन दम्भाकोष से वाताश। (1)
गडगड़ाता कुण्डिलत धन डमडमाता व्योम
कडकडाती चंचला तड़तड़ाता तम व्योम
इन्द्रता की रूद्रता से देव द्रुति भी म्लान
प्रकृति में ही प्रकृति का जय भय भरा व्यवधान। (2)
संगठित आर्य आक्रमण रणन रण रणन रणन।
उन्मत्त युद्ध झांझा नर्तन स्वर, झनन झनन
शस्त्रार्थ तड़ित गर्जन तर्जन कर्कश घर्षण।
टंकार क्रुद्ध हुँकार, षड्ग स्व षट् षट् खन खन।(3)

तात्पर्य यह है कि कवि ने दीर्घ समास बहुला संयुक्ताक्षर और ध्वन्यात्मक शब्दों के माध्यम से गौणीया रीति को पुष्ट किया है। प्रायः युद्ध स्थलों में शस्त्रों की झनकार योद्धाओं की दर्पोक्तियाँ, कोलाहल, युद्ध लाघव, इस वृत्ति के पुष्ट करने में सहायक हुआ है जैसे –

संवेग श्रृंग पर आत्म तण्डवित अहंकार
लृच्छित वशिष्ठ आश्रम तक प्रलयंकार
क्रोधित विषधर सा दन्तासुर वर तत्व श्वास
नव शंकरास्त अल्पित रिपु बल।(4)

पांचाली – संस्कृत काव्य शास्त्र में पांचाली रीति और कोमलावृत्ति को लक्षणाबद्ध करने का वैज्ञानिक प्रयास नहीं हुआ बामन ने पांचाली रीति को माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त कहा है।

---

(1) महाभारती, पृ0 21
(2) महाभारती, पृ0 27
(3) महाभारती, पृ0 165
(4) महाभारती, पृ0 215

गाँठ वन्ध से रहित और शिथिल पद वाली रीति ही पांचाली है। लेखक ने लिखा है *"माधुर्यसौकुमार्योपन्ना पांचाली।"*1

मम्मट ने कोमलावृत्ति में पांचाली रीति की स्थिति वताई है। आचार्य विश्वनाथ ने भी कहा है कि वैदर्भी और गौणीय रीति से शेष वर्ण जो ना माधुर्य के व्यंजक हो, न ओज के वह रचना पांचाली रीति और कोमलावृत्ति कहलाती है।

रामावतार पोद्दार ने प्रसाद गुण युक्त समास प्रधान रचना में पांचाली रीति को पुष्ट किया है। जैसे –

लगे चरने फिर नूतन घास म्रसण रोमिल मेषों के झुण्ड
सूँघने लगे हरिण के पुत्र हवन गन्धित शुचि शीतल कुण्ड।(2)

उक्त उदाहरण में म्रसण, रोमिल, मेष एवं हवन गन्धित सुचि शीतल कुण्ड में समास का प्रयोग है। अतः यहाँ कोमलावृत्ति और पांचाली रीति का प्रयोग हुआ है।

कौन वह कवि कुबेर था कृपण छिपा ली जिसने भू सम्पत्ति।
कौन था वह कला विमान जिसके चालक में ऋषि शक्ति।(3)

नूतन नृप में अति मातृ व्यथा
नैनो से अश्रु निकलता सा
ऋषि दृष्ट प्राप्त मानस मृदु पर गति।
जीवन स्मृति रथ चलता सा। (4)

भारत भूतल अब भाव प्रखर
आदान–प्रदान मुखर जीवन
हिमगिरि पर आते सागर घन
सागर पर उड़ते हिमगिर घन।(5)

---

(1) काव्यालंकार सूत्र, पृ0 25

(2) महाभारती

(3) महाभारती, पृ0 406

(4) महाभारती, पृ0 456

(5) महाभारती

उक्त उदाहरणों में समास बहुलता के कारण पांचाली रीति मानी जा सकती है। सारांश यह है कि रामावतार पोद्दार के सामने काव्य फलक अत्यन्त विस्तृत है। मानवीय मनोवृत्तियों का चित्रांकन करने में कवि को बहुत अधिक सफलता इसलिए मिली है, कि कवि का भाषा संस्कार परिमार्जित है पृथित और ग्रथित है। समास रहित अल्प या दीर्घ समास बहुला भाषा के साथ वह कोमलकान्त पदावली युक्त रचना लिखने में सर्वथा निष्णात हैं। रीति और वृत्तियाँ इसी शब्द सगुम्फन सौष्ठव का परिचायक है। कवि ने वैदर्भी रीति का बहुल्य प्रयोग भाषा और भाव के अनुरूप किया है। एक ओर उसे गौणीया परूषावृत्ति के लिए ध्वन्यात्मक या पुनरूक्ति या अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग सिद्ध है। जिससे वीर और ओज गुण मूर्तित हो उठा है, तो दूसरी ओर श्रृंगार करूण मन की कोमल वृत्तियों के लिए पंचमाक्षर से युक्त समास रहित या अल्प समास वाली भाषा का प्रयोग का साक्ष्यांकित किया है।

शब्द शक्ति

शब्द एवं अर्थ के विचार करने वाले तत्वों को शब्द शक्ति कहते हैं। क्योंकि सार्थक शब्द से जो अर्थ उत्पन्न होता है। उस अर्थ बोध कराने वाली शक्ति को ही शब्द शक्ति कहा जाता है। शब्द मूलरूप से तीन प्रकार के होते हैं। वाचक, लक्षक और व्यंजक। इन्हीं अर्थो के वोध कराने वाले शब्दों को वाचक से अभिधा, लक्षक से लक्षणा और व्यंजक से व्यंजना शक्ति कही जाती है।

अभिधा शब्द शक्ति :-

जो शक्ति किसी शब्द के मुख्य अर्थ का बोध कराती हो उसे अभिधा कहा जाता है।(1)

अभिधेय अर्थ की बोध वृत्ति ही अभिधा है व्याकरण, उपमान, कोष, आप्तवाक्य, व्यवहार, व्याख्या, वाक्य शेष और प्रसिद्ध पद सन्निधि से अभिधेय अर्थ की प्राप्ति कही गयी है। अर्थ भेद के अनुसार शब्दों के तीन भेद कहे गये हैं। 1. रूढ़ 2. यौगिक 3. योगरूढ़ इन्हीं के उदाहरण दिये जा रहे हैं।

---

(1) साहित्य दर्पण, 2/4

अभिध शब्द का (क रूढ़ि) ये वे शब्द होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति नहीं होती, पृथ्वी, जल, नदी, फूल, मुक्ता, सीपी, इत्यादि शब्द महाभारती में बहुत प्रयुक्त हैं जैसे –

स्वर्ग में सहसा तिमिर कृत कुटिल कोलाहल
लाल उल्का फूल से दिक् पथ प्रभा चंचल।(1)

यौगिक शब्द – जिन शब्दों की व्युत्पत्ति हो सकती है अथवा जिनके सार्थक खण्ड बनते हैं। ऐसे शब्दों को यौगिक कहा जाता है। सुरेश, सुरेन्द्र, नराकार, पुष्पालंकृत, वीरासन, दिहगोत्स व गिरीश कन्या योगाश्रित जैसे –

(1) *दैत्य पति आया नहीं है अभी ईर्ष्या काल। (2)*
(2) *सम्मुख नमिता गिरिजा पुष्पांजली देती सी। (3)*
(3) *सारथी स्वयं भूपाल देव सम दिव्य देह। (4)*

योगरूढ़ : – ये वे शब्द होते हैं जिनके सार्थक खण्ड भी होते हैं। प्रकृति और प्रत्यय से बने यह शब्द किसी समुदाय या यौगिक अर्थ को न देकर किसी विशेष वाच्यार्थ का बोध कराते हैं। जैसे – हिमाचल, देवाधिदेव, वातायन, शैलेन्द्र, गिरिराज।

1. *गिरिराज हिमालय निखिल धरा का स्वर्ग निलय।(5)*
2. *शैलेन्द्र प्रकृति सौन्दर्य राशि का मानदण्ड। (6)*
3. *देवाधिदेव आनन्द तपस्या हुई नष्ट। (7)*

यहाँ पहाड़ों का राजा हिम का घर शैल का इन्द्र देवों का अधिदेव अलग-अलग अर्थ बताते हुए भी क्रमशः हिमालय और शंकर में रूढ़ हो गया है।

---

(1) महाभारती, पृ0 56
(2) महाभारती, पृ0 60
(3) महाभारती, पृ0 65
(4) महाभारती, पृ0 77
(5) महाभारती, पृ0 92
(6) महाभारती, पृ0 93
(7) महाभारती, पृ0 85

लक्षणा – मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढ़ या प्रयोजन से जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्धित कोई अन्य अर्थ लक्षित होता है उसे लक्षणा कहते हैं।(1)

इस प्रकार लक्षणा में मुख्यार्थ की बाधा मुख्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध तथा रूढ़ एवं प्रयोजन लक्षणा के मुख्य तत्व होते हैं।

महाभारती में रूढ़ि प्रयोजनवती उपादान लक्षण-लक्षणा, शुद्धालक्षणा, सरोपा लक्षणा, प्रायः भेदों के उदाहरण मिल जाते हैं।। कुछ उदाहरण द्रष्टब्य है –

1. *रोहिणी मुखश्री अंकित आँखे मुसुकायी।*
   रानी तो स्तब्ध रही पर माता पिघल गयी।
   जीवन भर की करूणा आँखों से निकल गयी। (2)

यहाँ हम देखें कि मुस्कराने का काम ओठों का है आँखों का नहीं। इसी प्रकार पिघलना शरीर का धर्म नहीं एवं करूणा का आँखों से निकलना में अश्रु एवं दया की बात कही गयी है।

2. *नयनों ने पढ़ ली स्वयं गगन की लिपियाँ*
   तन में समेट ली मन ने स्वर्णिम सुधियाँ।। (3)

में कवि की इच्छा यह है कि गगन की लिपियाँ तारे सुधियाँ स्वर्णिम नहीं होती हैं। इसी प्रकार लक्षणा के शताधिक उदाहरण महाभारती में प्राप्त है।

जैसे –

1. *इच्छाबासन्ती हुई पाणबन्धन से। (4)*
2. *आँखों से झरते रहे अमृत के मोती। (5)*
3. *बिजलियाँ पकड़ लेता हूँ स्वप्निल कर से।*
   ले आता हूँ कुछ फूल नील अम्बर से। (6)

---

(1) काव्य प्रकाश, 2/9 एवं साहित्य दर्पण, 2/5

(2) महाभारती, पृ0 169

(3) महाभारती, पृ0 171

(4) महाभारती, पृ0 172

(5) महाभारती, पृ0 177

(6) महाभारती

व्यंजना :- अभिधा एवं लक्षणा के विरत हो जाने पर जिस शक्ति द्वारा तात्यार्थ से भिन्न किसी अन्य अर्थ का बोध होता है उसे व्यंजना कहते हैं।(1)

इस विशिष्ट अर्थ का नियंत्रण संयोग एवं असंयोग, साहचर्य विरोध, अर्थप्रकरण, लिंग अन्य सन्निधि, सामर्थ्य, ओचित्य देश काल और व्यक्ति से नियंत्रण होता है। इसके भेदों में लक्षणा मूला शाब्दी व्यंजना और आर्थी मूला व्यंजना होती है।

1. *मैं स्वर्ग तिरस्कृत व्योम कली*
   वसुधा के रस से खिली हुई।2
2. *छू देती मन को निशिगन्धा*
   नाचती हृदय में चन्द कला। 3
3. *उर्मिल उर्मिल प्रत्येक अंग*
   में निज अनंग के संग-संग।4
4. *मिली नहीं क्या प्राण वेदना नीलकण्ठ अम्बर में।*

इन शब्दों में अनेंक अर्थ दिखाई देते हैं। जिसमें व्यंजना के द्वारा ही अपेक्षित अर्थ की प्राप्ति होती है।

तात्पर्य यह है कि महाभारती में अविधा, लक्षणा, व्यंजना के सभी भेद मिलते हैं। कवि ने अपनी रूचि लाक्षणिक अर्थ या लक्ष्यार्थ उत्पन्न करने के लिए एतद्‌वाची शब्दों का पुष्कल प्रयोग किया है।

महाभारती में गुण

आचार्य दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्म को अलंकार कहा है इसमें प्रकारान्तर से काव्य के भाषिक गुणों का संकेत हैं प्रकारान्तर से गुण काव्य के लिए आवश्यक हैं दण्डी वामन आदि अचार्यो नें गुणों पर पर्याप्त विचार किया है और इनका सम्बन्ध रस दीप्ति से माना हैं तात्पर्य यह है कि रसाश्रित होकर गुण पाठक के मन दीप्ति का विकास का भाव उत्पन्न

---

(1) काव्य प्रकाश, 2/24

(2) महाभारती, पृ0 341

(3) महाभारती, पृ0 345

(4) महाभारती, पृ0 359

करतें हैं मम्मट ने गुण को परिभाषित करतें हुए लिखा हैं, जो अग्नि रस के अंग धर्म (आत्मा के शौर्यादि के भाँति) अनिवार्य धर्म की तरह निश्चल भाव से उत्पन्न होते हैं रसोत्कर्ष के हेतु बनतें हैं।

ये रस्याङिनों धर्माः शौर्यादय इव आत्मनः

उत्कर्ष हे! वस्तें स्युश्चलस्थितयो गुणाः। (1)

आचार्य भरत के अनुसार श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज कान्ति एवं समाधि इत्यादि दस गुण मानते हैं जिन्हे शब्दगुण, अर्थगुण, और उभयगुण या शब्दार्थगुण के रूप में देखा जा सकता है।

गुण को काव्य रस के अन्य तत्वों यथारीति अलंकार आदि से महत्वपूर्ण माना गया हैं इसे काव्य का स्थिर धर्म कहा गया हैं।

मम्मट एवं विश्वनाथ ने माधुर्य ओज और प्रसाद तीन गुणों को ही स्वीकृत किया हैं।

माधुर्य– जहाँ किसी गुण के प्रभाव से चित आनन्द से द्रवित हो जाये अथवा जहाँ किसी काव्य में कर्णप्रिय सामनासिक शब्दावली एवं यथासम्भव संगीतात्मक हो वहाँ माधुर्य गुण होता हैं श्रृंगार, करूण व शान्त रस में माधुर्य गुण उत्कर्ष वर्धक माना गया हैं महाभारती में गुण का उपयोग रसोद्वीपक रूप में अनेंक स्थानों पर किया गया हैं–

माधवी लता लिपटी रसाल पर पिक प्रसंग

फल के गुच्छों पर पुच्छ हिलाते वन विहंग

वर्षोत्सव सा पुष्पित निशि पथ सौरभ प्रधान

शशि मुखी प्रकृति ने दिया मुक्ति हर्षित प्रमाण (2)

सौन्दर्य अप्सरा नित नवीन आनन्द मयी

उर्वशी आत्म स्वच्छन्द मुधुरिमा छन्दमयी

मैं कालजयी श्रंगार साधनाशिखाकेतु

कल्पना दृष्टि के लिए स्वर्गमय सर्ग सेतु। (3)

---

(1) काव्य प्रकाश, मम्मट

(2) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 140

(3) महाभारती, द्वितीय सर्ग पृ0 406

कलिका न आज मैं अनाघात

मन में गुन-गुन-गुन-गुन गुजंन

स्थिर पर सुहाग कुमकुम

ऋषि स्वीकृति शून्य प्रणय बन्धन। (1)

अब मैं उदास अब मैं उदास

मेरी रूपाकृति मौन मलिन

बीते कितने सुधि सिक्त मास

अंगुलियों पर गिन-गिन कर दिन।(2)

ओज गुण :- जहाँ किसी रचना को पढ़नें या सुनने पर मन में उमंग उत्साह आदि भावों का संचार हो और उसे जाग्रत करनें के लिए कर्णकटु शब्दों संयुक्त या दिव्य वर्णो का अधिक प्रयोंग हो जहाँ दीर्घसमास बहुला भाषा हो वहाँ ओज गुण होता हैं वीर रस वीमत्स और रौद्ररस में इसकी स्थिति मानी जाती है।

शमित ऐरावति झंझा सा दमित तम क्रोध

सूर्य ग्रहण सामान्य किंचित काल द्युति अवरोध

तुरत सुर सम्राट सस्मित उदित नीली कान्ति

छा गई तत्काल ही दिक्काल दीपित शान्ति

नन्दनासन पर परस्पर विश्व वार्तालाप

असुरपति आकर ज्यों साकार विधि अभिशाप

सान्ध्य लोहित गगन घन सा धधकता मुश व्याध

कुदतर विष व्यग्र फणि सम तम भृकुटि पलकाग्र

दम्भ उत्थित नासिका ज्यों उग्र व्रश्चिक प्रच्छ

रक्तजित नेत्र सुरित दृष्टि विनम्र तुच्छ

महाकच्छप वक्ष ग्राह समान खुरखुर हस्त

गृध ग्रीवा हस्ति पगतल उरम अंगुलि व्यस्त।(3)

---

(1) महाभारती, दशम सर्ग, पृ0 363

(2) महाभारती, दशम सर्ग पृ0 367

(3) महाभारती, प्रथम सर्ग पृ0 57

संघठित आर्य आक्रमण रणन रण रणन-रणन

उन्मत्त युद्ध झंझा नर्तन स्वर झनन-झनन

शस्त्रास्त्र तड़ित गर्ज नतर्ज कर्कसा घर्षण

टंकार कुद्ध हुंकार खडग एवं खट खुटा खन। (1)

प्रसाद गुण :- भाषा के प्रसाद गुण का सम्बन्ध उसके अर्थ बोध से हैं जिन रचनाओं का अर्थ बिना बौद्धिक परिश्रम के समझ में आ जाये वहाँ प्रसाद गुण होता है। इस गुण की स्थित सभी रसों में मानी जाती हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं

कीट पशु पक्षी प्रकृति के प्राण से उत्पन्न

फूल-फूल के संग ही अंकुरित कतिपय अन्न

मित्र नव हिम मार से नग श्रंग क्रमशः उच्च

श्वेतमा पर सिंहनी सन्ध्या पटकती पुच्छ।(2)

धो दिया धूप से दिन मणि मे हरियाली को।

पर्वत पथ पर चमक उठे पार्वत्य फूल

भाये चंचल चितवन को उड़ते जल दुकूल

मनुज में गुण अवगुण की गन्ध प्राथम्य मन का संग्राम

योग जय ही ऐसी विजय

एक जिससे अर्पित आत्म प्रणाम

कोमल कपास से हुई वस्त्र संरचना

नारी ने जान लिया घूँघट में हँसना

ढक गई आवरण से उभरी सुन्दरता

लज्जित ललित व युवती जनज।।(3)

छन्द-विधान :-

छन्द शब्द 'छद्' धातु से व्युत्पन्न है। जिसका अर्थ है प्रसन्न करना, फुसलाना

---

(1) महाभारती, चतुर्थ सर्ग पृ0 165

(2) महाभारती

(3) महाभारती

आच्छादन करना, बाँधना,. वेदांग में छन्द को स्थान देकर इन्हें वेद के चरण कहे गये हैं।

छन्दः पादौ तु वेदस्य (पाणिनीय शिक्षा)

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल छन्द को बँधी हुई लय के भिन्न-भिन्न ढाँचों का योग मानते हैं। डॉ0 गौरी शंकर मिश्र ने लिखा है कि छन्द वह लयात्मक नियमित तथा अर्थपूर्ण वाणी है। जिसमें आबद्ध होकर कोई वाक्य या वाक्यांश पद्य का रूप धारण करता है।(1)

भारतीय वाङ.मय के सुरक्षित रहने के मूल में छन्द ही है। छन्द की महिमा एवं कारणों की चर्चा करते हुए डॉ0 रामदेव प्रसाद ने लिखा है कि 'काव्य और संगीत दोनों ही श्रृव्य कला है इस नाते काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्वन्ध है और इस सम्वन्ध को दृढ़ करने के लिए कविता में छन्द की आवश्यकता है।

मानवीय जीवन कथा प्रकृति में व्यापकता और सुर साम्य है। कविता और संगीत का सम्वन्ध वहुत पुराना है क्योंकि सृष्टि के आरम्भ से मनुष्य के भाव संगीतमयी भाषा में व्यक्त हुए हैं। जो अधिकांश में गम्भीर और मार्मिक हैं। छन्द निसृत कमनीयता एवं आनन्द से मनोवेगों की अभिव्यक्ति में तीव्रता आ जाती है।(2)

पाश्चात्य विद्वानों में से सिडनी, रोमसर्ड, शैली, हापकिन्स ने छन्दों का विरोध किया है तो ड्राइडन जॉनसन कारलायल, स्टुवर्ड मिल आदि ने छन्द की आवश्यकता को स्वीकार किया है। डॉ0 जान्सन की मान्यता है कि काव्यगत् सौन्दर्य का आधार भाषागत् सौन्दर्य तथा छन्द माधुर्य है। छन्दों की संगीतात्मकता एवं नियमितता से कार्य सौन्दर्य की निमित्ति होती है।(3)

आई0ए0 रिचर्ड्स के अनुसार "छन्द लय का विशिष्ट रूप है। जो आवृत्ति, आकाँक्षा पर निर्भर करता है। लय और छन्द से सम्बद्ध सभी प्रभाव प्रत्याशा से उत्पन्न होते हैं। चाहे इसकी अनुरूपता फलित हो या प्रतिरूपता यह प्रत्याशा एक अचेतन प्रक्रिया है।(4)

---

(1) सूर साहित्य का छन्द शास्त्रीय अध्ययन, पृ0 13

(2) रामचरित मानस की काव्य भाषा, पृ0 124

(3) पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त, पृ0 114 पर उद्धृत

(4) प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिशिज्म, पृ0 134

तात्पर्य यह है कि छन्द भाव मयी भाषा की स्वाभाविक गति का ग्राह्यकार है इससे भाषा भावानुकूल बनती है।(1)

वैदिक काल एवं संस्कृत के विपुल वाङ्मय में हार्दिकता, प्रवाहमयता, प्रभुविष्णुता और रस प्रेषणता का एक मात्र कारण है। छन्दों का विपुल चतुर एवं अभिनव प्रयोग है। वहाँ वर्णित छन्दों के साथ मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। वैदिक छन्दों के अतिरिक्त आर्या, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ, मालिनी, मन्द्राकान्ता, शिखरणी आदि ऐसे छन्द हैं जिनका उपयोग कवियों ने भाव, रस और भाषानुकूल रूप में किया है।

हिन्दी के आदि, मध्य और रीतिकाल में मात्रिक छन्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। संगीतात्मकता के कारण सूर, तुलसी एवं अष्ट्रछाप के कवियों ने विभिन्न मात्रिक छन्दों के संयोग से जो भक्तिरस की धारा प्रवाहित की उसमें जन सामान्य से लेकर सामान्त वर्ग भी आप्लावित हुआ है। रीतिकाल में लक्षण ग्रन्थों के निर्माण तथा उदाहण विवेचन में सवैया, घनाक्षरी के विविध रूप बहुत प्रयुक्त हैं।

आधुनिक काल में छन्दों के प्रति कुछ नया दृष्टिकोंण इसलिए अपनाया गया कि दोहा, सवैया, घनाक्षरी, अवधी और ब्रज-भाषा के लिए जितने अनुकूल हैं। खड़ी वोली के लिए उतने ही अनुप्रयुक्त हुए। अतः द्विवेदी युगीन कवियों ने या तो संस्कृत के वर्णिक छन्दों का अनुसरण किया है अथवा कुछ नये या मिश्रित छन्द लिखे हैं। छायावाद युग आते-आते हिन्दी कविता प्राचीन छन्दों के बन्धन से मुक्त हो गयी। नवीन छन्द योजना जिसमें लयात्मकता थी। इन कवियों ने नवीन छन्द या प्रधान नये छन्दों का निर्माण किया मात्राओं का आग्रह छान्दासिकता के कारण ही रहा। निराला ने हिन्दी कविता को छन्द के बन्धन से मुक्त कर लय, प्रवाह, आरोह, अवरोह पर आधारित लोक्तछन्दों की रचना की जिसका व्यापक प्रभाव प्रगति, प्रयोगवाद नई कविता, तथा आदि की कविता पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

रामावतार पोद्दार ने किसी एक व्यक्ति या तो तन्य विष्ट पात्र के आधार पर महाभारती महाकाव्य का प्रणयन नही किया अपितु कालिदास के रघुवंश से प्रभावित होकर नये छन्द जिसमें मात्राओं का आग्रह तो है प्रयोग कर अपनी छन्द प्रियता का परिचय दिया

---

(1) सिद्धान्त और अध्ययन, डॉ0 गुलाब राय, पृ0 243

है। यहाँ हम महाभारती में प्रयुक्त छन्दों के स्वरूपगत उदाहरण देकर पोद्दार के छन्द वैशिष्ट्य की विवेचना करेंगे।

1. *महाध्यान वितान में व्योम वसना कौन*
   जन्म युवती ज्योति जननी विधि विभा सी मौन। (1)
2. *अभिशप्त स्वर्ग कवि का सुर स्वप्निल दृष्टि भंग*
   कल्पना श्वास में व्याप्त किरण निद्रित तरंग (2)
3. *व्योम में ब्राह्मभ चेतना भास*
   समीरण में ऋत अमृत हिलोर
   अरूणिमा में पीतिमा प्रसन्न
   कुहा वसना नीलोज्जवल भोर। (3)
4. *लोपामुद्रा ने मुझे कहा था विश्वमित्र*
   आ रहे स्मरण बीते वर्षों के आत्मचित्र। (4)
5. *असफल न रहा विन्ध्याचल का आरोहण*
   आ रहा स्मरण दक्षिण का स्नेह समर्पण (5)
6. *क्रमशः गुरू प्रेरित, विकसित कौशिक तपश्चरण,*
   यौगिक गिरि पथ पर गुह्य ज्ञान का आरोहण। (6)
7. *कौशिक तप कम्पित इन्द्रासन*
   भूतल भय संकित देवनयन
   विस्मय में मन!। (7)

---

(1) *महाभारती प्रथम सर्ग*

(2) *महाभारती द्वितीय सर्ग*

(3) *महाभारती तृतीय सर्ग*

(4) *महाभारती चतुर्थ सर्ग*

(5) *महाभारती पंचम सर्ग*

(6) *महाभारती षष्ठ सर्ग*

(7) *महाभारती सप्तम सर्ग*

8. ओ! तपस्वी तुम्ही विश्वामित्र हो
पराजय में भी विजय के चित्र हो । (1)

9. सावधान! आकाश प्रवासी ओ वसुन्धरा वासी
सावधान! आनन्द शक्ति के आत्म ज्योति विश्वासी।(2)

10. मैं किसी मेनका के मन की
माधवी निशा की माया सी
मैं किसी स्वर्ग की सुषमा की
उतरी सदेह छवि-छाया सी।(3)

11. अकेली शिलाखण्ड पर खड़ी
देखती जब मैं पारावार
आत्म चिन्ता की गर्जित ऊर्मि
खोल देती अतीत के द्वार,। (4)

12. कलित कामना में मन की ज्यों ऐन्द्र गंध रति,
संशोधित मेनका मंत्र से सारश्वत गति। (5)

13. सिंहासन पर प्रिय भरत किन्तु
उस पर न प्रतिष्ठित भारत रे,
कर सका न काल पुरूष पूरा
मानवता का गण, मन, व्रत रे। (6)

---

(1) महाभारती अष्टम सर्ग
(2) महाभारती नवम सर्ग
(3) महाभारती दशम सर्ग सर्ग
(4) महाभारती एकादश सर्ग
(5) महाभारती द्वादश सर्ग
(6) महाभारती त्रयोदश सर्ग

14. *उदधि उत्ताल, संध्याकाश के विरही विहग-सा*
उमड़ते बादलों का एक झोंका हूँ अकेला
निशा फडफड़ाते स्वेत डैने जिस नयन के
उसी संशय समीक्षा की उदिति मय चन्द्रबेला। (1)

15. *शिव की चन्द्र किरीट किरण सी चमक रही हिमराका*
एक हंस उड रहा अकेला अर्न्तनयन प्रभा का। (2)

उपर्युक्त उदाहरण महाभारती के प्रत्येक सर्ग का प्रथम छन्द है। इन छन्दों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

प्रथम सर्ग में प्रारम्भ से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। सर्गान्त के अन्त में छन्द परिवर्तन की दृष्टि नहीं अपनायी गयी है। यह छन्द चौवीस मात्राओं का अवतारी छन्द के अन्तर्गत रोला और लीला छन्दों का प्रयोग हुआ है।

जैसें -

I I I S S II I SII III II II III =24 मात्राएं
सलिल - कोलाहल प्रभंजन रणन रन रण मत्त
इस छन्द का लक्षण करते हुए छन्द प्रभाकर में लिखा गया है
रोला को चौबीस कला यति शंकर तेरा। (3)

प्रथम सर्ग में चौबीस मात्राओं का सारस छन्द भी प्रयुक्त है जिसका लक्षण छन्द प्रभाकर में इस प्रकार दिया गया है।

भानु कला शशि कला गादि भला सारस है।
रत्न गिरि कर रहा कुल्ला कनक निर्झर का।
पी रही रमणी रजत जल सुर सरोवर का। (4)

---

(1) *महाभारती चतुर्दश सर्ग*
(2) *महाभारती पंचदश सर्ग*
(3) *छन्द प्रभाकर, पृ0 61*
(4) *छन्द प्रभाकर, पृ0 63*

द्वितीय सर्ग में भी इसी रूप माला का चौबीस मात्राओं वाला छन्द प्रयुक्त है।

तृतीय सर्ग में इक्तीस मात्राओं का छन्द है जिसे सवैया भी कहा जा सकता है। लक्षण और उदाहरण दृष्टब्य है।

।।। S SS SS S।

प्रलय सी काली काली रात

।S।। SS S ।। S।

समीरण सेना का पद घात

इसका लक्षण छन्द प्रभाकर में इस प्रकार दिया गया है – अश्वावतारी छन्द 31 मात्राओं का होता है। जिसका उपभेद वीर छन्द है। इस छन्द में 16+15 कुल 31 मात्राएं होती हैं। कामायनी में भी इसी छन्द का प्रयोग है।

चतुर्थ सर्ग में चौबीस मात्राओं का शोभन छन्द प्रयुक्त है। जो मूलतः अवतारी छन्द का ही भेद है। रूप माला से इसका अन्तर यह है कि रूप माला के अन्त में दीर्घ, लघु आता है जबकि शोभन छन्द के अन्त में जगण। (।S।) आता है।

जगन्नाथ दास भानु ने लिखा है –

चौबीस कला विद्या दिशा भंजु शोभन साज। (1)

पोद्दार रामावतार ने इस छन्द का इस प्रकार प्रयोग किया है।

SS SS S ।S । S S S।।S।

लोपा मुद्रा ने मुझे कहा था विश्वमित्र

आ रहे स्मरण बीते वर्षों के आत्म चित्त।

पंचम सर्ग में 22 मात्राओं के रास और सुखदा छन्द प्रयुक्त हैं, रास का लक्षण लिखते हुए छन्द प्रभाकर में कहा गया है कि महारौद्र छन्द 22 मात्राओं के होते हैं। रास उसका एक भेद है जिसमें आठ, आंठ, छः इस क्रम से मात्राओं का प्रयोग होता है। लेखक ने अन्त में जहाँ दीर्घ किया है वहाँ यह सुखदा छन्द बन गया है। दोनों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

कह दे तनये कौसिक से अब न रुकूँगा

झुकना है विंध्याचल को में न झुकूँगा

(1) छन्द प्रभाकर, पृ0 61

संकल्प कलश रख गयी रोहिणी मन पर

चढ़ गयी किसी की इच्छा, लता नयन पर।

षष्ट सर्ग में चौबीस मात्राओं का शोभन छन्द प्रयुक्त है जिसके अन्त में प्रायः जगण प्रयुक्त है।

निज तन में भी ब्रह्माण्ड चक्र का हुआ भान।

सप्तम सर्ग में कवि ने छन्द में लयात्मकता, संगीतात्मकता लाने के लिए अभिनव प्रयोग किया है। इससे आरोह, अवरोह की निरन्तरता बनी रहती है। इस छन्द में 16+16+8 =40 मात्राएं प्रयुक्त हैं। यह आठ मात्राओं का चरण पुच्छल्ले के रूप में है, जिसके अन्त में नगण प्रयुक्त है।

पृथ्वी सुत में इतनी महिमा

इतनी प्रभुता इतनी गरिमा

यह प्रथम विदित।

अष्टम् सर्ग में महापौराणिक उन्नीस मात्राओं का छन्द तमाल छन्द प्रयुक्त है। कहीं-कहीं इसे पियूष वर्ष नामक छन्द भी बना दिया है। दोनों छन्द के लक्षण और उदाहरण इस प्रकार हैं -

पियूष वर्ष में 19 मात्राएं अन्त में लघु गुरू होता है ।

तन नहीं तो मन नहीं मानव नहीं,

तम नहीं तो तिमिर मय दानव नहीं

यह उदाहरण पियूष वर्ष का है कहीं-कहीं लघु कर दिया गया है। इससे इस छन्द का नामकरण तमाल हो जाता है। जैसे -

मुस्कराते हो मुझे तुम देखकर

उठ रही है आत्म पथ में स्मृति लहर।

नवम् सर्ग में अठ्ठाईस मात्राओं का यौगिक छन्द प्रयुक्त है। जिसका एक उपभेद सार छन्द है। इसमें अन्त में दो गुरु या प्रवाह के कारण दो लघु मात्राएं भी प्रयुक्त की गयी हैं।

नीर क्षीर सम्पृक्त चेतना चित विलासिनी माया।

उर्मिल मन माधर्यु विमोहित मैं प्रकाश की छाया।

तिरती सी मैं कुसुम तरी अँगड़ाती प्राण लहर पर

मैं फूलों की अर्द्धरात मन की एकान्त डगर पर।

दशम् एकादश सर्ग में बत्तीस मात्राओं का पादाकुलक छन्द प्रयुक्त है। इस छन्द में 16+16 = 32 मात्राओं में यति होती है। कवि ने प्रवाह और लय की दृष्टि अन्त से कहीं गुरु-लघु का विधान किया है। जैसे

सत्य का वर्तमान आलोक

भूत स्मृतियों का संचित ज्ञान। (1)

पंचदश सर्ग में 28 मात्राओं का छन्द, सार और हरिगीतिका में यत्किंचित परिवर्तन कर कवि ने नया छन्द बनाया है। छन्द प्रभाकर में कहा गया है कि यदि 16+12 तथा अन्त में दो गुरू हों तो सार छन्द और यदि अन्त में लघु गुरू हो तो हरिगीतिका होगा।(2)

कवि ने इसी से मिलता जुलता जो छन्द बनाया है उसका उदाहरण इस प्रकार है-

प्रेरित करती प्रथम कल्पना तभी ज्ञान बढ़ता है।

तन के चढ़ने के पहले मन ही गिरि पर चढ़ता है।(3)

तात्पर्य यह है कि मात्र छन्दों का लक्षणानुधावन कर कोई कवि तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक वह भाषा, भाव एवं रस के विविध व्यंजनाएँ छन्दों में नहीं प्रकट करता। रामावतार पोद्दार ने महाभारती में एक तरफ सृष्टि के आदिकालिक परिस्थितियों का चित्रांकन किया है, तो दूसरी तरफ पौराणिक युगीन सांस्कृतिक विचारधारा की अभिव्यंजना की है। कवि ने अवतारी छन्द, सारस छन्द, रूपमाला छन्द, इक्तीस मात्राओं का सवैया छन्द, इक्तीस मात्राओं का अश्वावतारी छन्द, चौबीस मात्राओं का शोभन छन्द, 22 मात्राओं का रास और सुखदा छन्द, उन्नीस मात्राओं का तमाल छन्द, उन्नीस मात्राओं का ही पियूष वर्ष छन्द, अठ्ठाइस मात्राओं का यौगिक छन्द, बत्तीस मात्राओं का पादाकुलक छन्द, अठ्ठाइस मात्राओं का सार और हरिगीतिका छन्द इत्यादि छन्दों का वहुविधि प्रयोग किया है। शास्त्रीय लक्षणों में न बँधकर सर्ग प्रारम्भ और अन्त में छन्द

---

(1) महाभारती, एकादश सर्ग, पृ0 372

(2) छन्द प्रभाकर, पृ0 67

(3) महाभारती, पृ0 543

परिवर्तन की प्रवृत्ति को छोड़कर भावाभिव्यंजना को प्रमुखता दी है। वीर, रौद्र, भयानक, संघर्ष संकुल परिस्थितियों के लिए कवि ने चौबीस मात्राओं के जिस छन्द का उपयोग किया है। मूलतः वह श्रृंगारी भावनाओं की अभिव्यंजना के लिए होता है। किन्तु कवि ने रौद्र भयानक रस का उपयोग इस प्रकार भी किया है।

ताण्डवित जल-ज्वार में घूर्णाग्नि- धूम्र तरंग

तमच्छादित अजगरी फुफकार भंग-अभंग

घनन-घनन पवन का सनसनाता संसार

विभावसु-परित्यक्त्य पावक का वरुण हुंकार।(1)

कोमल भावनाओं के लिए या मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यंजना के लिए इस छन्द का प्रचुर प्रयोग कवि ने अन्य छन्दों में भी किया है।

कहाँ जाऊँ, किधर जाऊँ क्या करूँ मैं हाय।

कहाँ भटकूँ, कहाँ अटकू, हाय मैं निरुपाय।(2)

शास्त्रीय दृष्टि से रूपमाला के छन्द का यत्किंचित परिवर्तन कर भावानुकूल प्रवाह मयता में कवि को वहुत सफलता मिली है। द्वितीय और चतुर्थ सर्ग में प्रयुक्त छन्द इसके उदाहरण हैं।

छन्दों में टेक का प्रयोग कर या संगीतात्मकता लाने के लिए द्रुम-छल्ले या पुच्छल्ले लगाकर कवि ने अपनी छान्दसिक दृष्टि का परिचय दिया है। सप्तम् सर्ग में प्रयुक्त छन्द इसके उदाहरण हैं।

सारांश यह है कि बाईस मात्राओं से लेकर बत्तीस मात्राओं तक के छन्द का प्रयोग कर रामावतार पोद्दार ने महाकाव्यात्मक गरिमा से इस काव्य को समन्वित किया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है। कि छन्द भावनाओं के मूर्तन में बड़ा प्रभावी सिद्ध होता है। आवश्यकता इस बात की है कि छन्दों के प्रयोग में प्रवाहमयता अभिव्यंजनाको प्रामुख्य दिया जाय न कि लक्षणानुधावन को छान्दासिक्त आग्रह तभी सफल होता है जब उसमें नादात्मकता लया त्मकताऔर संगीतात्मकता का संयोग होता है। कवि ने आधुनिक भावों

---

(1) महाभारती, प्रथम सर्ग, पृ0 21

(2) महाभारती, प्रथम सर्ग, पृ0 34

की व्यंजना के लिए देखिये किस प्रकार के छन्द का प्रयोग किया है -

नहीं घनमंत्र लावा मन अब विखरा सकेगा।

पकेंगी अब छुहारे सी न प्रभुता खड़खड़ाती।(1)

2. वचाओ विश्व को संतुलित जीवन दृष्टि लेकर

ग्रसित होने न दो गतिशीलता को कभी अति से।(2)

च. शैली एवं काव्य रूप

यह कहा जा सकता है कि हृदय की रागात्मक अनुभूतियाँ साहित्य में मुखरित होती हैं। कविता हृदयस्थ अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यंजना है। भारतीय दृष्टि से श्रृव्य और दृश्य और इनके उपभेदों में गद्य, पद्य, चम्पू आते हैं। पद्य की श्रेणी में प्रवन्ध और मुक्तक तथा प्रवन्ध के अर्न्तगत महाकाव्य का विशेष स्थान है।

सामान्यतः महाकाव्य वृहदाकार की वह महती काव्य रचना है जिसमें जीवन का व्यापक एवं उदात चित्रण मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यंजना कलात्मक रूप में की गई हो क्यों कि महत और काव्य से मिल करके महाकाव्य बना है। वैसे इसकी सर्वमान्य परिभाषा कठिन ही है। यहाँ भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र में महाकाव्य सम्बन्धी आवधारणाओं का संक्षिप्त विहंगावलोकन कर इस पृष्ठ भूमि में आलोच्य महाकाव्य महाभारती का मूल्याँकन करेंगे।

१.महाकाव्य सम्बन्धी भारतीय मत :- विश्व के इतिहास में अति प्राचीन काल से महाकाव्यों का प्रणयन होता रहा है। संस्कृत में भामह, दण्डी, रूद्रठ, हेमचन्द्र, विश्वनाथ आचार्य प्रभृति विद्वानों ने महाकाव्य के स्वरूप निर्धारण का प्रयास किया है। आचार्य भामह नें महाकाव्य में सर्ग बद्धता, महत का प्रकाशन, पंचसन्धियाँ, चतुरवर्ग के प्रतिपादन में अर्थ का प्रामुख्य नायक की कुलीनता एवं रसों का प्रथव वर्णन युक्त काव्य को महाकाव्य कहा है।

आचार्य दण्डी नें उसके वाहय रूप को विशेष बल दिया है इस दिशा में रूद्रट का विशेष योगदान है, उन्होनें रामायण, महाभारत तथा अपभ्रंश के महाकाव्यों को सामनें

(1) महाभारती, पृ0 528

(2) महाभारती, प्रथम सर्ग, पृ0 533

रखकर महाकाव्य की परिभाषा दी है। जिसमें उत्पाद्य या अनुत्पाद्य लम्वी कथा अवान्तर कथाओं का संयोग जीवन की समग्रता सर्वगुण समन्वय द्विजो कुल उत्पन्न नायक महत उद्देश्य रसात्मकता एवं अलौकिक तत्वां से युक्त रचना को महाकाव्य कहा है। इस दिशा में समन्वय का कार्य कविराज विश्वनाथ नें पूर्ववर्ती आचार्यो की प्रायः सभी विशेषताओं का समाहार किया है इनका लक्षण इस प्रकार है।

महाकाव्य के लक्षण :- आचार्य विश्वनाथ ने अपने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ साहित्यदर्पण में महाकाव्य के निन्नांकित लक्षण बतायें हैं।

1. महाकाव्य सर्गो में विभाजित होता है -

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रेको नायकः सुरः।
सदंशः क्षत्रियों वापि धीरोदात्त गुणान्वितः।।
एक वंशभवा भयाः कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृंङ्वरवीर शान्तामेकोऽङ्.ी सा इष्यते।
अर्ङ्वान सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।।
इर्तिहासोद्भवं वृत्तमन्यदा सज्जनाश्रयम।
चव्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रिया शीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।।
क्वचिन्न्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।।
एकृवृत्तमयैः पद्यैश्वसानेऽन्यवृत्तकैः
नातिस्वल्या नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिक्रा इह।।
नानावृत्तमयः क्रापि सर्गः कश्नन दृश्यते।
सर्गान्ते भविसर्गस्य कथयाः सूचनं भवेत।
संध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषहवान्तवासराः।।
प्रातर्महयाहू मृगयाशैलतुंवन सागराः।।
संभोगविप्रलम्भौ च मुनस्वर्गपुराध्वराः।।
रणप्रयाणो पयम मनत्र पुत्रोदयादयः।।
वर्णनीया यथायोगं साङोपाङ अमी इह।

कवेर्वृन्तस्य वा नाभा नायकस्येतरस्य वा।।
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्वनाम तु।। (1)

2. महाकाव्य में आठ या आठ से अधिक सर्ग होते हैं।
3. प्रत्येक सर्ग में प्रायः एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग किया जाता है।
4. किन्ही-किन्ही सर्गो में अनेंक प्रकार के छन्दों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।
5. सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तित हो जाता है।
6. सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा का संकेत किया जाता है।
7. महाकाव्य का नायक या तो देवता होता है या धीरोदात्त व नायक के गुणों से युक्त कोई क्षत्रिय होता है।
8. एक वंश में उत्पन्न होने वाले अनेंक राजा भी महाकाव्य के नायक हो सकते हैं।
9. महाकाव्य में श्रृंगार रस, वीर रस और शान्त रस में से किसी एक रस का मुख्य रूप से निरूपण होना चाहिए।
10. मुख्य रस के अतिरिक्त शेष सभी रसों का अंग रस के रूप में प्रतिपादन किया जाता है।
11. महाकाव्य में सभी नाटक-सन्धियों की नियोजना होनी चाहिए।
12. महाकाव्य का कथानक या तो इतिहास में प्रसिद्ध होना चाहिए या सज्जनों के चरित्र पर आधारित होना चाहिए।
13. महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक फल की प्राप्ति वर्णित होनी चाहिए।
14. महाकाव्य के आरम्भ में मंगलाचरण होना चाहिए। यह मंगलाचरण नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक, इन तीन प्रकार के मंगलाचरणों में से कोई भी एक हो सकता है। ।
15. महाकाव्य में प्रसंगानुसार सज्जनों की प्रशंसा और खलों की निन्दा होनी चाहिए।
16. महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, अन्धकार, दिन, प्रातः मध्याह्न, शिकार, पर्वत, वन, सागर, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, पुर, यज्ञ, रण-यात्रा, विवाह और

---

(1) साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ

पुत्रजन्म, इत्यादि प्रसंगों का यथास्थल निरूपण किया जाना चाहिए।

17. महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम पर या वर्णित कथानक के नाम पर अथवा नायक के नाम पर होना चाहिए।

18. महाकाव्य के सर्गो का नामकरण उन सर्गों में प्रतिपादित विषय वस्तु के आधार पर होना चाहिए।

महाभारतीकार ने अपने काव्य का मूल लक्ष्य कालिदास की संरचना को वनाया है जिस प्रकार रघुवंश में व्यक्ति विशेष का नायक न वनाकर वंश या परम्परागत कथा प्रमुखों को नायक बनाया है इसी प्रकार रामावतार ने कुछ वैदिक और पौराणिक पात्रों की कथा लेकर इस काव्य की रचना की है। जिसमें मानव जीवन की मूल अभिवृत्तियों और मनोवृत्तियों का व्यापक निदर्शन है।

तात्पर्य यह है कि सम्वद्ध नाट्य संधियों से युक्त उत्पाद्य, प्रख्यात अथवा मिश्र कथा अपेक्षित है। धीरोदात्त उच्चकुलोद्भवनायक प्रकृति एवं उसके रूप, नगर, आश्रम सहित विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक क्रिया कलापों का उल्लेख एवं सभी रसों का घात प्रतिघात से वर्णन चतुरवर्ग अलंकार, सर्गान्त में छन्द परिवर्तन इस परिभाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। हिन्छी आचार्य शुक्ल शम्भूनाथ सिंह तथा महाकाव्यों पर शोध करने वाले अनेंक विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का कार्य किया है। डॉ0 शम्भूनाथ की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी जा सकती है। "उसमें जातीय गुणों सर्वोत्तम उपलब्धियों परम्परागत अनुभवों का पुंजी भूत रसात्मक रूप दिखाई पड़ता है। यह उसके समग्र सामाजिक जीवन का प्रतीक है। अतः कहा जा सकता है कि महाकाव्य वह छन्दबद्ध रचना है जो तीव्र कथा प्रवाह के साथ-साथ मानवीय अनुभूतियों का लेखा-जोखा रखता है। इसके लिए यद्यपि किसी बन्धन की आवश्यकता नहीं होती। फिर भी कवि किसी महाप्रेरणा से परिचालित होकर स्वानुभूति अथवा कल्पना सिद्ध किसी जाति विशेष अथवा जीवन विशेष का नाना रूपों में वर्णन करता है। इसकी शैली इतनी उदात्त एवं गरिमामय होती कि उसके कारण महाकाव्य में युग-युग तक जीवित रहने की शक्ति एवं प्राणवत्ता आ जाती है।"(1)

डॉ0 नगेन्द्र ने महाकाव्यों के तत्वों में उदात्त कथानक उदात्त पात्र, उदात्त उद्देश्य,

---

(1) हिन्दी महाकाव्य- स्वरुव एवं विकास, पृ0 65

उदात्त भाव और उदात्त शैली का उल्लेख किया है।(1)

तात्पर्य यह है कि महाकाव्य के जो लक्षण या तत्व बताये गये हैं उनमें कथा, चरित्र, भाषा, प्रकृति, सहित वस्तु वर्णन और श्रेष्ठ अभिव्यंजना शिल्प पर प्रकाश डाला गया है।

पाश्चात्य लक्षण :- पाश्चात्य समीक्षकों में अरस्तू, वाल्टर पेपर, एयरकाम्वी, प्रभृति समीक्षकों ने महाकाव्य को अपनी-अपनी दृष्टि से परिभाषित करने का प्रयास किया है। अरस्तु ने सुगठित, सुव्यवस्थित कलावस्तु, प्रासंगिक घटनाओं की सुसम्वद्धता व्यापक चित्रण, सरस व अलंकृत शैली, मनोरंजन, नैतिकता, सोद्देश्य रचना को महाकाव्य कहा है। एयरकाम्वी महाकाव्योचित कवि कल्पना से युक्त, कथा को महाकाव्य के रूप में देखते हैं।

सी0एम0 बावरा ने वृहत्त प्रवन्धात्मकता गम्भीर घटनाओं का वर्णन क्रियाशील पात्रों का प्रभावशाली जीवन पक्ष का उद्घाटन राज्य तत्व द्वारा पाठ्कों का आह्लाद एवं घटनाओं एवं पात्रों के माध्यम से गौरव का संचार आदि तत्वों का उल्लेख किया है।(2)

पाश्चात्य महाकाव्य के इन लक्षणों को समन्वित कर स्थूल रूप से महाकाव्य के 8 तत्व माने जा सकते हैं।

1. महत उद्देश्य, महत प्रेरणा, महान काव्य प्रतिभा।
2. गुरुत्त, गाम्भीर्य, आदि का समावेश।
3. युग जीवन और संस्कृति का महत्व कार्यो के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन।
4. सुगठित, जीवन्त कथानाक
5. इतिहास प्रसिद्ध श्रेष्ठ एवं कुलीन नायक तथा अन्य पात्र
6. तीव्र प्रभान्विति एवं रस व्यंजना।
7. गरिमा एवं उदात्त शैली। (3)

तात्पर्य यह है कि भारतीय विद्वानों ने सर्गबद्धता उच्च कुलोद्भव महत्पुरुष, श्रृंगार

---

(1) कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, पृ0 78

(2) दि एपेक्स - एवर काम्बी, पृ0 52-59

(3) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र - कृष्ण देव शर्मा, पृ0 419

वीर, या शान्त रस का प्राधान्य अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की स्वीकृति के साथ जीवन के विविध सांस्कृतिक पक्षों का उल्लेख सर्ग के अन्त में एक छन्द एवं सर्गान्त परिवर्तन भारतीय महाकाव्य के प्रमुख सूत्र कहे जा सकते हैं।

पाश्चात्य विचारकों ने दुःखान्त कथा की नाटकीय योजना उचित शब्द विधान द्वारा कुतूहल वर्धक कथानक में ऐतिहासिकता जीवन की विस्तृत परिधि कलात्मक एवं उदात्त शैली महत् उद्देश्य के लिए गतिशील छन्दों का प्रयोग आदि लक्षणों का उल्लेख है। यदि इन सब विशेषताओं को समन्वित किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि जीवन्त कथा वस्तु, उदात्त गुण सम्पन्न नेता या नायक, उदात्त रसाभिव्यंजना, उन्नत एवं गरिमामय शैली में महत् उद्देश्य की अभिव्यक्ति ही महाकाव्य है।

महाभारती का काव्य रूप

समीक्षक अपने युग में प्राप्त काव्य विधाओं के सर्जनात्मक रूप को देखकर ही उसके स्वरूप निर्धारण का प्रयास करते हैं। यह स्वरूप बहुजन मान्य होकर लक्षणानुधावन के रूप में प्रयुक्त होते रहते हैं। प्रारम्भ में बाल्मीकि रामायण सहित संस्कृत के अलंकृत महाकाव्यों को ध्यान में रखकर महाकाव्यों के जो लक्षण लिखे जाते रहे जिसमें कथा किसी एक केन्द्रीय पात्र को दृष्टि में रखकर निर्मित होती थी। रघुवंश आदि संस्कृत और हिन्दी के मानस सहित कुछ ऐसे महाकाव्य लिखे गये जो शास्त्रीय लक्षणों की परिधि से बाहर प्रतीत होते हैं। अतः आधुनिक काल तक आते-आते इन लक्षणों में परिवर्तन आने लगा। साकेत, प्रिय प्रवास, कामायनी जैसे महाकाव्यों के लिए लक्षण छोटे पड़ने लगे तो राम की शक्ति पूजा जैसे छोटी रचना को भी महाकाव्यात्मक गरिमा से सम्पन्न देखा जाने लगा। इसी प्रकार रघुवंश में रघुकुल को ही केन्द्र बिन्दु में रखकर महाकाव्यात्मक स्वरूप की अवधारणा प्रस्तुत की गयी है। रामावतार पोद्दार नें रघुवंश को ही दृष्टि में रखकर अपने विशालकाय महाभारतीय महाकाव्य का प्रणयन किया है। अपने विदेशी मित्र डॉ0 खर्न की प्रेरणा से रामावतार पोद्दार प्रभावित हुए, यदि कालिदास अपने जीवन में मात्र एक ग्रन्थ लिखते तो उसका स्वरूप क्या होता? इस विचारोत्तेजना से प्रभावित रामावतार पोद्दार जी ने प्रत्युत्तर में महाभारती को प्रणय किया। तात्पर्य यह है कि डॉ0 खर्न के आन्तरिक इच्छा की यथा साध्य समपूर्ति महाकाव्य महाभारती में हुई है। यह काव्य महाकाव्य की रूढ़िबद्ध

परम्परा से कुछ भिन्न और उसके लक्षणों में उस तरह से उपयुक्त नहीं बैठती है तो फिर भी यह महाकाव्य की आधुनिक अवधारणा के बहुत नजदीक है।

जीवन्त कथानक :- महाभारती की कथावस्तु का चयन वैदिक एवं पौराणिक गाथाओं में से अगस्त्य, लोपामुद्रा, रोहिणी, विश्वामित्र, मेनका, पुरूरवा उर्वशी, दुष्यन्त, शकुन्तला, इत्यादि घटनाओं को कवि ने अपनी उर्वर कल्पना एवं पौढ़ प्रतिभा द्वारा सजगता एवं स्वाभाविता से काव्य रूप में आबद्ध किया है। पन्द्रह सर्गों में निबद्ध यह कथा समाज में व्याप्त विषमता, दुःख-दैन्य, प्रजा के कष्ट, आदि को दूर करने के लिए अगस्त्य द्वारा निर्दिष्ट गणमात्र के नूतन उद्भावक विश्वामित्र के महत् प्रयासों की चर्चा की गयी है। अतः इसका कथानक प्रख्यात है कथा के प्रारम्भ में प्रकृति में व्याप्त प्रलय लीला, सृष्टि का विकास, शम्बर के जाल में बँधे विश्वामित्र एवं शम्बरी की प्रणय गाथा से इस काव्य का प्रारम्भ हुआ है। और आयु की शासन व्यवस्था से इस कथा का समापन हुआ है। अतः इस कथा में स्वतः गरिमा विद्यमान है।

उदात्त गुण सम्पन्न नायक :- यद्यपि इसमें केन्द्रीय पात्र विश्वामित्र है जो क्षत्रिय वंश के ऐसे नेता हैं जिनमें क्षात्र तेज का मूर्तिमंत्र रूप साकार हो उठा है, वे अगस्त्य के विन्ध्य विजय के पश्चात् सुदूर दक्षिण में आर्य सभ्यता के रथ के ध्वजावाहक बने हैं। वह साहसी, सत्यान्वेषी, जन कल्याण में निरत, मानवता प्रेमी और सघंर्षो में संकल्पवान होकर डटकर खड़ा होने वाला नायक है, इसी प्रकार अगस्त्य और वशिष्ठ व्रह्म तेज के जीवन्त रूप में चित्रित हुए हैं।

उदान्त रस योजना :- महाभारती श्रृंगार वीर रस की रचना है। अंशों के बहुलता की दृष्टि से वीर रस का प्रामुख्य है। श्रृंगार रस उसका सहायक बनकर आया है। रौद्र, वीभत्स, वात्सल्य आदि रस यथा अवसर अपनी-अपनी गरिमा से अभिव्यंजित हुए हैं। वीर रस के युद्ध वीर, कर्मवीर, दानवीरता के पर्याप्त उदाहरण इसमें मिलते हैं। वियोग श्रृंगार के उर्वशी और शकुन्तला से सम्बन्धित स्थल, मार्मिक, ढ़ंग से लिखे गये हैं।

गरिमामय शैली :- महाभारती में चरित काव्यों के अनुरूप शैली का प्रयोग हुआ है। प्रकृति के कोमल-कठोर, रहस्यमयी सत्ता के संकेतक और आलंकारिक रूप में वर्णन है। उषा की लालिमा, संध्या की कालिमा, नक्षत्रों की नीरवता, युद्ध प्रस्थान,युद्ध, नदी, पर्वत,

समुद्र, नगर, आश्रम आदि वर्णनों का सतर्कता एवं शालीनता से किया गया है। भाषा तत्सम बहुला संस्कृत निष्ठ शब्दावली जिसमें यथानुकूल ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रचुर प्रयोग है। पोद्दार रामावतार ने अनुप्रास के साथ यमक और यम का भास, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त व्यतिरेक अर्थान्तरन्यास इत्यादि प्रमुख अलंकारों का निरूपण हृदय स्पर्शी रूप में किया है। इनकी वर्णन पद्धति प्रभावशाली है। वस्तुभाव का निरूपण जिस अभिव्यंजना प्रणाली से हुआ है, उसमें उदात्तता के साथ सरसता और सजीवता पात्रों के संवाद, चरित्रानुकूल और उक्तियाँ हृदय स्पर्शी बन पड़ी है। पोद्दार की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी माधुर्य व्यंजक प्रवाहमयी भाषा है। जिसमें प्राचीन छन्दों का यत्किंचित परिवर्तित कर नये रूप में प्रयुक्त है। छन्दों के प्रयोग में लयात्मकता का विशेष ध्यान रखा गया है।

महत् उद्देश्य :- पहले कहा गया है कि इसकी रचना की प्रेरणा में डॉ0 खर्न की जिज्ञासा रही है जिस पर यह कहा जाय कि रामावतार पोद्दार पूर्ण रूप से खरे उतरे हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। इसके साथ कवि ने सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त विषमता, आर्य-असुर संघर्ष से उत्पन्न वैचारिक क्रान्ति के कारण समाज में आयी विद्रर्पूता के संकल्प सिद्ध प्रयासों का प्रभावशाली वर्णन है। अतः इसका उद्देश्य राजा द्वारा प्रजा का न्यायपूर्वक पालन, रंजन, संरक्षण अपनी संस्कृति की रक्षा जैसे महत् उद्देश्य की सफल अभिव्यंजना इस महाकाव्य में की गयी है।

सारांश यह है कि महाभारती में विविध कथाओं के सुश्रृंखलित रूप में ऐसी आधिकारिक विन्यास किया गया है जिसमें सभ्यता के अवरोधक तत्वों को दूर कर स्नेह प्रेम के माध्यम से उनसे मानव मात्र की ऐहिक और आयुष्मिक उन्नति की कथा-व्यथा विद्यमान है। पुरूष पात्रों में उदात्ता, गम्भीर आचरण की पवित्रता, औदार्य उत्साह वादमिता और कार्य पटुता है, तो उर्वशी रम्भा, मेनका, लोपामुद्रा, शकुन्तला आदि में अपरूप सौन्दर्य स्त्रीयोचित गरिमा औदार्य, माधुर्य, प्रेम जैसे उच्च गुणों से विभूषित हुए हैं। शान्त रस में पर्यवसित कथा में अंगीरस वीर और सहायक श्रृंगार रस है। रसों का मार्मिकता एवं पात्रों के घात-प्रतिघात से वर्णन है। यद्यपि इसमें महाकाव्य के सभी लक्षणों का सम्यक परिपालन नहीं हुआ है फिर भी यह आधुनिक विचारों का प्रतिपादन करने वाला श्रेष्ठ महाकाव्य है।

द्वितीय खण्ड : मनोविज्ञान

प्रथम अध्याय
मनोविज्ञान का स्वरूप

द्वितीय अध्याय
महाभारती में मानव-मूल मनोवृत्तियाँ

तृतीय अध्याय
महाभारती में अन्तर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व
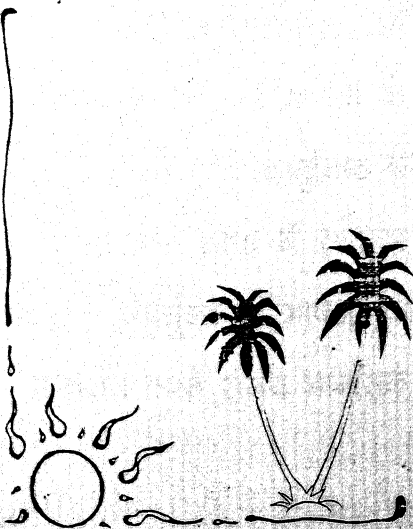
मनोविज्ञान का स्वरूप

विश्व के सभी प्रकार के ज्ञानों का मूल स्रोत दर्शनशास्त्र हैं जिससे हर प्रकार के ज्ञान की धारा प्रवाहित होती हैं जिस समय से मनुष्य ने अपने तथा पराये की पहचान की हैं उसी समय से दर्शनशास्त्र की उत्पत्ति प्रारम्भ हुई। इसी प्रकार से शरीर के बनावट के सम्बन्ध में चिन्तन करना जीव विज्ञान का।

इसी प्रकार से मनोविज्ञान का सूत्रपात इसी समय से मानना चाहिए जिस समय से मनुष्य ने घृणा, द्वेष, प्रेम, ईर्ष्या, दुःख एवं सुख के सम्बन्ध में चिन्तन करना प्रारम्भ किया। मनोविज्ञान के अध्ययन से हमें प्राणीमात्र के क्यों, कैसे, कितना आदि प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होते हैं। किसी प्रकार का विशेष व्यवहार मनुष्य क्यों एवं किस प्रकार करता है उसकी क्या-क्या विशेषतायें हैं वे कितने प्रकार के हैं उसके अनुभवों की रूपरेखा क्या है? तथा उनकी पहचान क्या है? आदि प्रश्नों के उत्तर भी हमें अन्य विज्ञानों की भाँति मनोविज्ञान द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

मनोविज्ञान से तात्पर्य -

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के मनोविज्ञान को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया हैं। मनोविज्ञान का जेम्स के अनुसार मनोविज्ञान मानसिक जीवन (जगत) उसके व्यापार एवं दिशाओं का विज्ञान हैं। वुडवर्थ महोदय का मत है कि व्यक्ति की क्रियाओं को मनोविज्ञान कहा जाता हैं। मनोवैज्ञानिक वोरिंग की धारणा हैं कि मनोविज्ञान व्यक्ति के स्वभाव का अध्ययन है उस व्यक्ति का जो कि जीवित प्राणी हैं तथा क्षण में परिवर्तित होने वाले संसार, घटनाओं मनुष्यों एवं वस्तुओं के साथ तदात्मय स्थापित कर उन्ही के अनुसार वर्ताव करता है।

नारमन एल0मन0 भी अपनी पुस्तक मनोविज्ञान में निम्नांकित परिभाषा प्रस्तुत की हैं। मनोविज्ञान प्राणियों के कतिपय व्यापारों के उपकरणों अथवा भाषा व व्यवहार के विविध रूपों द्वारा वस्तुनिष्ठ करके उनका अध्ययन करता है ब्रम्ह प्रतिवेदन या प्रतिक्रिया को साधारण भाषा में व्यवहार कहा जाता हैं।

उपर्युक्त परिभाषओं का विश्लेषण आवश्यक हैं जेज्ज महोदय ने मनोविज्ञान की परिभाषा करते समय मानसिक जीवन के व्यापार की चर्चा की है। इसके अर्न्तगत मस्तिष्क

के विकास उसकी बनावट आदि का प्रश्न उपस्थित होता हैं। ऐसे स्थित में प्रेक्षक दूसरों के इच्छा सोचनें के ढंग आदि को प्रयागात्मक विधि के कैसे अनुभव कर सकता हैं मनोविज्ञान के क्षेत्र मे भवों का विशेष स्थान हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में प्रवृत्तियों का विकास एवं प्रकटीकरण इन्ही के द्वारा होता हैं। अस्तु जेम्ज की कुछ मात्रा में स्वीकार्य हैं। वुडवर्थ व्यक्ति की क्रियाओं की चर्चा की हैं क्रियाओं से तात्पर्य हैं? उनकी परिधि क्या है? इससे कुछ भी स्पष्ट नहीं होता यह परिभाषा इतना व्यापक क्षेत्र रखती है। कि इसमे व्यक्ति का उठना बैठ्ना सोना जागना आदि समस्त क्रियाओं का समावेश हो जाता हैं।

व्यक्ति के स्वभाव की चर्चा बोगि महोदय करते हैं। मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ है मन का विशेष ज्ञान अर्थात मन में उठ्ने वाले विचार का अध्ययन। मन इतना सूक्ष्म हैं कि इसकी गति एवं निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है मन चेतन तथ अवचेतन दोनों अवस्थाओं में क्रियाशील रहता हैं। परिणाम स्ववरूप मनुष्य के व्यवहार स्वाभाव आदि में अन्तर आ जाता है। उक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्षो की प्राप्ति होती हैः-

1. मनोविज्ञान के कार्य व्यापार भाव विचार एवं इच्छा आदि है। मानसिक जीवन में भावों का अधिक महत्व है, क्योंकि व्यक्ति की प्रवृत्तियों का यह विकसित रूप है।
2. मनोविज्ञान व्यक्ति की क्रियाओं का अध्ययन करता है।
3. मनोविज्ञान मन का विज्ञान है जिसका प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव पर लक्षित होता है। या ये कहे कि स्वभाव के अध्ययन पर मन का अध्ययन आधारित है। जिससे व्यक्ति का निर्माण होता है।

साहित्य क्या है?- साहित्य को विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है, लेकिन हम साहित्य के विस्तार में न जाकर संक्षेप मे ही विचार करेगें। संस्कृत में साहित्य शब्द का अर्थ सहित होने का भाव - सहितस्य भावः साहित्य से लिया गया है। हिन्दी में साहित्य अंग्रेजी में लिटरेचर शब्द के समानार्थक रूप में प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी विद्वान डी0 क्विनेस ने साहित्य को दो भगों में बाँटा है - 'ज्ञान का साहित्य' एवं 'शक्ति का साहित्य'। ज्ञान के साहित्य का कार्य सिखाना है तथा दूसरे का कार्य प्रभावित अथवा सुचालित करना हैं।

हिन्दी साहित्यकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य को सत्वोद्रेक या हृदय की

मुक्तावस्था के लिये किया हुआ शब्द विधान स्वीकार करते हैं।(1) डॉ0 गुलाब राय साहित्य को इस प्रकार व्यक्त करते हैं *"साहित्य संसार के प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों भावों और सकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति हैं और वह हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का साधन करनें कारण संरक्षणीय हो जाती हैं।"(2)*

अंग्रेजी विद्वान आईजिक डिजरेली साहित्य को ऐसे प्रतिभा जन्य व्यक्तियों के लिये प्रतिभा प्राप्त करनें का एक प्रशस्त मार्ग स्वीकार करते हैं जिनके जीवन में मान अथवा धन का आभाव हो, रिकावैस्ट के अनुसार साहित्य अनुभवों का विश्लेषण तथा निष्कर्षो का एकता में संश्लेषणात्मक कार्य हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं में संस्कृत की परिभाषा हमे सहभाव से शब्द और अर्थ विचार और भाव के साहचर्य के अतिरिक्त किसी अन्य अर्थ की प्राप्ति नहीं होती।

डी0 क्विनसे द्वारा प्रस्तुत साहित्य की परिभाषाओं में ज्ञान के साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है। जो हमारे ज्ञान को परिवर्तित करता हैं यथा गणित, दर्शन तर्कशास्त्र जवकि प्रभावित करनें से तात्पर्य हैं भावनाओं अथवा मन के विचारों को प्रभावित करना। डिजरैली महोदय की परिभाषा में प्रतिभा से तात्पर्य व्यक्ति के गुण एवं प्रतिभा प्राप्त करनें से उसके लक्ष्य की ध्वनि निकलती हैं।(3)

रिकावैस्ट व्यक्ति के प्रत्यक्ष अनुभव की चर्चा करते हैं जब वे अनुभवों के विश्लेषण की बात करते हैं। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभवों को नवीन रंग देकर प्रस्तुत करता हैं उनकी विस्तृत व्याख्या करके उनका निष्कर्ष हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, जिससे मानसिक क्रियाओं अनुभव करना एवं क्रिया करना तीनों की अभिव्यक्ति होती हैं आचार्य शुक्ल का हृदय मुक्तावास्था से भी तात्पर्य कुछ ऐसा ही हैं। हम किसी वस्तु का निरीक्षण करते है, हमारे मन में प्रतिक्रिया होती है,उस प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरुप हम साहित्य रचना में प्रवृत्त हो जाते है। डॉ0 गुलाब राय विचारों, भावों, संकल्पों से मानसिक क्रियाओं किं शाब्दिक अभिव्यक्ति से माध्यम की तथा हित का साधन होने से लक्ष्य की ओर संकेत करते हैं।

---

(1) चिंतामणि - आचार्य राम चन्द्र शुक्ल।

(2) काव्य के रूप - डॉ0 गुलाब राय, पृ0 23

(3) केशव काव्य, मनोवैज्ञानिक विवेचन - डॉ0 धर्म स्वरूप गुप्त, पृ0 138

उक्त परिभाषओं के विश्लेषण को हम तालिका में प्रस्तुत कर रहे हैं।

परिभाषा	मानसिक क्रिया	माध्यम	लक्ष्य एवं कार्य
1. शक्ति के साहित्य से तात्पर्य भावनाओं अथवा मन के विचारों को प्रभावित करना है। (डी0 क्विन्से)	भावनाओं, विचारों	X	प्रभावित करना
2. साहित्य प्रतिभाजन्य व्यक्तियों के लिए प्रतिभा प्राप्त करने का एक मार्ग है। (डिजरैली)	प्रतिभा	X	प्रतिभा प्राप्त करना
3. साहित्य अनुभवों का विश्लेषण एव निष्कर्षो का......... संश्लेषण कार्य है। (रिकावैस्ट)	अनुभव	X	विश्लेषण एवं संश्लेषण
4. साहित्य......सत्तोद्रेक या हृदय की मुक्तावस्था के लिए किया हुआ शब्द विधान है। (आचार्य शुक्ल)	सत्तोद्रेक	शब्द विधान	मुक्तावस्था
5. साहित्य ......मानसिक प्रतिक्रिया है अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। ..... हिते के साधन के द्वारा संरक्षणीय हो जाती है।	विचारो, भावों, संकल्पों	शाब्दिक	अभिव्यक्ति हित का साधन

साहित्य तथा मनोविज्ञान का सम्बन्ध :-

उक्त तालिका का मनोवैज्ञानिक ढंग से विवेचन करने पर हमें विदित होता है, कि साहित्य का सम्वन्ध मन, भाव, संकल्प एवं प्रतिभा आदि मानसिक क्रियाओं से है, जिनकी अभिव्यक्ति शब्द अथवा लिपि के माध्यम से होती है। मनोविज्ञान व्यक्ति के भाव विचार एवं व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान है। अतः साहित्य और मनोविज्ञान का गहरा सम्वन्ध है, प्रथम व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है एवं द्वितीय उस

अभिव्यक्ति माध्यम द्वारा साहित्य की मानसिक क्रियाओं उसकी मान्यताओं एवं व्यक्तित्व की जानकारी करने में सामर्थ्य प्रदान करता है।(1)

महाभारती में मानव-मूल मनोवृत्त्तियाँ

सहज प्रवृत्तियाँ सामान्य विवेचन

हिन्दी में सहज प्रवृत्ति को अंग्रेजी के इन्स्टिक्ट के पर्यायवाची शब्द के रूप में ग्रहण किया जाता है। जीव वैज्ञानिकों एवं मनोवैज्ञानिकों के अनुसार एक जीव अथवा शिशु का समस्त जीवन दो प्रयत्नों का प्रतिनिधित्व करता है- प्रथम आत्मरक्षण एवं द्वितीय जाति रक्षण।

वस्तुतः मानव एवं पशु में आत्म रक्षण एवं जाति रक्षण के सामान्य कार्य व्यापार अथवा उद्देश्य कुछ सहज प्रवृत्यों द्वारा संचालित दृष्टिगत होते हैं। उनका प्रभाव इतना होता हैं कि ये हमे विशिष्ट परिस्थितियों में विशेष प्रकार से कार्य करनें एवं अनुभव के लिये प्रेरित करतें हैं। मकड़िया अपना जाला, चिड़ियाँ अपना घोसला सहज प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर बनाती हैं। इस निर्माण में भी आत्म रक्षा की भावना निहित है। वास्तव में ये सभी प्रवृत्त्यों की परिभाषा निम्न प्रकार प्रस्तुत की हैः-

मैक्डूगल महोदय के अनुसार - ''सहज प्रवृत्यों की एक जन्मजात व्यवस्था है जो आंगिक क्रियाओं को किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण करनें की मन्त्रणा देती है तथा इसी की उपस्थित मे विशिष्ट भावात्मक उत्तेजना का अनुभव करने एवं उसके अनुसार कार्य करनें के लिये प्रेरित करती है, जिसकी अभिव्यक्ति उपस्थित वस्तु सम्बन्धित एक विशेष प्रकार की क्रिया में संलग्न हो जाती हैं।

मेरी स्टुअर्ट के अनुसार 'अनुभव एवं क्रिया करनें की जन्मजात प्रवृत्ति ही सहज प्रवृत्ति कहलाती हैं।'

डव्ल्यू वैलेनटाइन के 'अनुसार मानव में जन्मजात वृत्तियाँ ही सहज प्रवृत्तियाँ होती हैं। उपर्युक्त परिभाषाओं से हमें सहज प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में निम्न तथ्यों की उपलब्धि होती है।

(1) केशवशास्त्र - डॉ0 धर्मस्वरूप गुप्त - पृ0 140.

(1) सहज प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं।

(2) सहज प्रवृत्तियों में ज्ञानात्मक संवेदनात्मक तथा क्रियात्मक क्रियाओं का समावेश रहता है।

(3) ये स्वभाविक है, अनुभव पर आधारित नहीं।

(4) सहज प्रवृत्तियों के विकास में किसी वस्तु का आलम्बन रूप में उपस्थित होना आवश्यक है।

अस्तु मानव में विशिष्ट परिस्थित में किसी वस्तु अथवा दृश्य के प्रत्यक्षीकरण से भावात्मक उत्तेजना उत्पन्न करानें में जो विशिष्ट जन्मजात वृत्ति कार्य करती है, उसे हम सहज प्रवृत्तियों की संज्ञा देते हैं।

सहज प्रवृत्तियों का वर्गीकरण :- विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने सहज प्रवृत्तियों का विभिन्न ढंग से वर्णन किया है। कुछ मनोवैज्ञानिक आत्मरक्षा तथा सन्तानोत्पत्ति की पवृत्तियों को ही दो प्रधान सहज प्रवृत्तियाँ स्वीकार करते हैं।

कर्क पौद्रिक महोदय - ने पाँच सहज प्रवृत्त्यों का उल्लेख किया है :-

(1) आत्म रक्षा की प्रवृत्ति

(2) सन्तानोत्पत्ति की प्रवृत्ति

(3) सामूहिक जीवन की प्रवृत्ति

(4) परिस्थितयों को अनकूल करनें की प्रवृत्ति

(5) आदर्श पालन की प्रवृत्ति

ड्रेवर महोदय - सहज प्रवृत्तियों के दो ही वर्ग मानते हैं:-

(1) रूच्यात्मक (2) प्रतिक्रियात्मक

वुडवर्थ सहज प्रवृत्तियों को तीन भागों में बाँटते हैं।

1. शरीर रक्षार्थ सहज आवश्यकताओं से सम्बन्धित हमारी प्रतिक्रिया यथा, भूख, प्यास, कष्ट, चोट, इत्यादि से वचाना, थकावट आदि।

2. दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रतिक्रिया जैसे, सामूहिक जीवन, काम, तृप्ति पुत्र कामनाआदि।

3. खेल सम्वन्धित प्रवृत्तियाँ जैसे- चलना, दौड़ना, खेलना, हँसना, आत्मगौरव एवं आत्महीनता का भाव।

मैकडूगल महोदय ने सहज प्रवृत्तियों को मुख्यतः दो वर्गों में बाँटा हैः-

1. सामान्य स्वभाविक प्रवृत्तियाँ।
2. विशिष्ट सहज प्रवृत्तियाँ तो केवल शारीरिक अर्जित क्रियाएं हैं जिनमें भावात्मक क्रियाओं का समावेश नहीं होता। भावात्मक क्रिया के अभाव में सामान्य स्वभाविक प्रवृत्तियों का काव्य में कोई स्थान नहीं है। खेल आदत आदि प्रवृत्तियाँ आदि शारीरिक क्रियाएं हैं, जिनकी अभिव्यक्ति काव्य में न के बराबर होती है। अतः इन प्रवृत्तियों का हमारे आलोच्य विषय से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

विशिष्ट सहज प्रवृत्तियों के अन्तर्गत मैकडूगल ने चौदह प्रवृत्तियों को स्थान दिया है। उनका विचार है कि इन चौदह प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है। ड्रेवर महोदय द्वारा वर्णित सभी प्रवृत्तियों का भी इसमे समावेश हो जाता है। मैक्डूगल द्वारा प्रस्तुत सहज प्रवृत्तियों की सूची इस प्रकार है ।

1. पलायन
2. युयुत्सा
3. निवृत्ति अथवा विकर्षण
4. पुत्र कामना अथवा सन्तानोत्पत्ति
5. प्रार्थना व दैन्य
6. काम
7. कौतूहल अथवा जिज्ञासा
8. आत्म समर्पण
9. अहं अथवा आत्म गौरव
10. सामाजिकता
11. भोजनोपार्जैन
12. संग्रह
13. निर्माण
14. हास्य

कुछ विद्वान मैक्डूगल द्वारा बताई गई स्वभाविक 14 प्रवृत्तियों को स्वीकार नहीं कर

पाते। कुछ विद्वान मैगडूगल द्वारा दिये गये वर्गीकरण को संशोधित रूप देकर छह मूलभूत प्रवृत्तियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है-

1. रागात्मक प्रवृत्ति
    1. काम
    2. संतति पालन
    3. सामाजिकता
    4. आत्म समर्पण
2. विरागात्मक प्रवृत्ति
    1. पलायन
    2. विकर्षण
    3. युयुत्सा
3. आत्म रक्षा की प्रवृत्ति
    1. संग्रह
    2. निर्माण
    3. भोजनोपार्जन
    4. दैन्य अथवा प्रार्थना
4. जिज्ञासा की प्रवृत्ति
5. आत्म गौरव या अहं की प्रवृत्ति
6. हास्य की प्रवृत्ति

डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त ने भी साहित्य विज्ञान के अर्न्तगत मैक्डूगल द्वारा किये गये सहज प्रवृत्तियों के वर्गीकरण को संशोधित रूप में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत प्रयास एवं डॉ0 गुप्त द्वारा किये गये वर्गीकरण पर स्वतन्त्र रूप में विचार किये जाने पर भी दोनों में पर्याप्त साम्य है। जो संशोधित वर्गीकरण के प्रमाणित एवं पुष्ट होने की ओर संकेत करता है।

पिछले पृष्ठों में मानव ही सहज वृत्तियों का स्वरूप निर्धारण और उसके वर्गीकरण मनोविज्ञान के आधार पर किया गया है। यहाँ हम इन्ही प्रवृत्तियों के स्वरूप का निर्धारण करेगें। महाभारती में इस निर्धारण में रागात्मक विरागात्मक आदि प्रवृत्तियों के साथ मन

में उठनें वाले छन्दों का भी विवेचन करेगें।

महाभारती में काम वृत्ति :- फ्रायड केअनुसार यह मन शक्ति लिवडो केरूप में हमे कार्य और विचार के लिये प्रेरित करती है। इससे स्त्री पुरूष का आकर्षण ही नहीं अपितु, श्रद्धा, स्नेह, ममता, सहानुभूति वत्सलता आदि का भाव समाविष्ट हो जाता है। महाभारत में काम के अनेक स्थल दिखाई पड़ते हैं। उर्वशी, पुरूरवा, मेनका, विश्वामित्र, शकुन्तला, दुष्यन्त आदि रूप में वत्सल अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं तदोपरान्त शंकर कुमारी पार्वती का अनिद्य सौन्दर्य दोनो के मन में जिस रस की उत्पत्ति होती हैं निश्चित ही यदि वे एक ओर उसमें पवित्रता हैं तो दूसरी ओर लज्जा। यदि उसमे आकर्षण है तो दूसरी ओर संकोच और कौतूहल भी।

संम्मुख नमिता गिरिजा पुष्पांजलि देती-सी
झुक कर प्रभु चरणांगुलि प्रकाश रजलेती सी
उन्मीलित लोचन में भरती-सी शिव स्वरूप
श्रृंगार समर्पित आत्म-भाव ज्यों प्रणव स्तूप। (1)

इस स्वरूप के आकर्षण में कितनी पुलक कितना आनन्दातिरेक है-

शिव उर समाधि में चुभा काम का कुसुम बाण
मुखरित समस्त देवता कंठ में मन्त्र गान
पार्वती प्राण में ऋतु सामग्री का प्रवेश
क्षण परिवर्तित विष्णु प्रिया सी उमा मेष। (2)

इसी प्रकार पुरूरवा से रक्षित उर्वशी पुरूरवा के शक्ति पौरूष ही नहीं, उसके सुदर्शन (काश) पर मुग्ध हुई थी। यद्यपि अप्सराओं के जीवन में काम वासना के रूप में ही वताया गया हैं। फिर भी कवि ने इस प्रथम अवसर पर जिस पुलक आनन्दातिरेक सामाजिक वर्जनाओं का निषेध कर मानव के प्रति अनुरक्ति नृत्य में ताल, लय का भंग आदि की घटनायें पाठक के मन में पुलक प्रीति की ही सृष्टि करती हैं। इस काम में मंगल भावना का अधिष्ठान पोद्दार रामावतार ने बड़े दक्षता से किया है उर्वशी कहती हैः-

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग, पृ0 65

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग, पृ0 65

कोमल करतल पर लिखा किसी ने मुकुलमन्त्र

फूलों सा खिलता गया सुगन्धित देह-तन्त्र

बँध गई देव सुन्दरी मनुज भुज में सहर्ष

विजय शोणित ने किया सुधा का प्रथम स्पर्श। (1)

इस प्रथम मिलन में शारीरिक मिलन नहीं हो पाया इस अभिलषित आकाँक्षा का अभिव्यक्ति कवि ने इस प्रकार किया है-

चलनें की बेला अपलक लोचन अमृत-सिक्त

कुछ भरी अधभरी इच्छाएँ कुछ रिक्त-रिक्त

तन्वी तन उड़ता रहा रश्मि रूपान्तर तक

अन्तर्मन ढोता रहा अश्रु कण अम्बर तक। (2)

यहाँ यह स्मरणीय है कि मैक्डूगल ने काम और प्रेम को अलग-अलग दृष्टि से देखा है। एक युवती किसी युवक को देखकर उससे आकृष्ट हो जाती है अपने प्रति किये गये कार्य के प्रति कृतज्ञ होती है। परस्पर मिलनें की चाह उत्पन्न हो गई। यही लैंगिक आकर्षण काम प्रवृत्ति का द्योतक है।

It (Lust) is an essential elements in the emotion conative attitude of human lovers toward one another, and that no matter how much the attitude and the feeling of refined lovers may be modified and complicated by others tendinous just never the less strikes the ground tone......."the preparation of a svetadle individual of opposite in evokes the I impulse of approach and at the some time trends to bring about that state of tombstone or turgescence of the sense or gans which is necessary......"3.

इसी प्रकार यह काम भावना प्रिय के सान्निध्य की आतुरता उसके लिये त्याग प्रेम मनोभाव की अभिव्यंजना करता है। कामुकता में व्यक्ति इन्द्रिय लोलुप रहता है। जबकि प्रेम में त्याग की प्रधानता होती है उर्वशी और शिव पार्वती के प्रेम वर्णन सम्बन्धी दोनों स्थलों की तुलनाकर हम इस भाव की सहज पुष्टि कर सकते है। इसे हम युग के शब्दों

---

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग, पृ0 79

(2) महाभारती, द्वितीय सर्ग, पृ0 81

(3) An outline of psychology : M.C. Dugall, Page No, 338.

में इस प्रकार लिख सकते हैं :-

"In sexual love attitude the affectionate behavior of an individual is directed towards a member of the opposite sex. The relationship is a reciprocal one, each of the paie rebealing in his behavior. his love for the other"1

रामावतार पोद्दार ने दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रसंग में इन दोनों मनोभावों का सन्तुलित मार्मिक हृदय वर्जक वर्णन किया है। उर्वशी और पुरूरवा के प्रेम में सुरक्षा के भाव को कृतज्ञता के कारण तदोपरान्त दैहिक आकर्षण जबकि दुष्यन्त शकुन्तला के प्रसंग में रूपाकर्षण और प्राप्त की आतुरता वर्णित हैं। यहाँ यह उल्लेख करना अप्रसांगिक न होगा कि काम प्रेम की इन संवेदनाओं की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रतिक्रियाओं के माध्यम से व्यक्त हुई है। प्रफुल्ल चेहरा नेत्रों में मदालस रक्तिमा सरसता किसी न किसी बहाने से प्रिय का दर्शन सलज्ज कपोलों में उभरती हुई लालिमा का वर्णन कवि ने अत्यन्त मार्मिक रूप से किया है।

मन मदन बना तन सुमन बना
साँसें सुगन्ध बन गई चपल
उनकी आँखों की आभा से
खिल गया विकल मेरा उत्पल
मिल गया अपरिचय का परिचय
झर गया अधर पर स्वयराग
भर गया प्रथम आनन्द स्वाद
मेरे जीवन में सानुराग। (2)

निष्कर्ष यह हैं कि भिन्न लैंगिक व्यक्ति परस्पर प्रत्यक्ष दर्शन से सामीप्य की अभिलाषा व्यक्त करतें हैं। भावात्मक दशा में तीव्र उत्तेजना प्राप्त कर उनके व्यवहार एवं क्रिया कलाप वदल जातें हैं।

वियोग की दशा में स्वोसोछ्वास शैथिल्य विकलता आदि की अभिव्यंजना रामावतार पोद्वारा ने बड़े स्वाभाविक रूप से किया है।

1. Emotions is man and animal : P.T. Young, Page 372-73.

(2) महाभारती, दसम सर्ग, पृ0 357

कवि ने लिखा है-

अब मैं उदास, अब मैं उदास
मेरी रूपाकृति मौन मलिन
बीते कितनें सुधि रिक्तमास
अंगुलियों पर गिन-गिन कर दिन
तन मन वन उपवन सब उदास
हो गई सजल विश्वास दृष्टि
मेरे कपोल पर झरर-झरर
नीरव निशीथ में अश्रु वृष्टि। (1)

रागात्मक प्रवृत्ति का दूसरा रूप विशुद्ध प्रेम मनोंभाव या वात्सल्य मनोंभाव के रूप में दिखाई देता है। सन्तति पालन की प्रवृत्ति में माता-पिता द्वारा पुत्र प्रेम उसके रूप सौन्दर्य के प्रति आह्वाद का मनोवैज्ञानिकों ने प्रेम के अर्न्तगत वर्णित किया है।

Shands points out when a man has a acquired sentiment of love for a person or other object. He.is apt to experience tender emotion in its presence fear or anxioty when it is janges anger when it is threatend, soroow when it is last joy. When the object prospers or it is restored to him gratitude towards him who does good to it......... and so on."2

महाभारती में विश्वामित्र एवं शकुन्तला, कण्व एवं शकुन्तला के प्रसंगों में इन भावों का वर्णन हुआ हैं। कण्वाश्रम में विश्वामित्र ने शकुन्तला को देख उसमें अपनी प्रिया मेनका के रूप शशि की झलक पाकर अत्यन्त स्नेह से आप्लावित हो गये। कन्या की पीठ पर सुरक्षा सांत्वना से युक्त हाथों का फेरना विश्वामित्र के मनोभावों को व्यक्त करता हैं।

हो गये खड़े ऋषि विसमय से
पड़ गया पीठ पर स्वयं हस्त
कुछ नहीं समझ पाई फिर भी
तत्क्षण हर्षाकुल तन समस्त। (3)

---

(1) महाभारती, दसम सर्ग, पृ0 367

2. An outline of social psychology : M.C. Duggal, Page 106.

(3) महाभारती, दसम सर्ग, पृ0 342

दूसरी तरफ शकुन्तला पिता के स्नेह से अपूर्व अभिभूत ऋषि के क्रिया कलापों के मर्म को समझ नही सकीं।

मैं नाच उठी उनकी सुधि में
पर भेद नहीं कुछ जान सकी
क्यों रहे देखते वे मुझको
संधान सत्य का पा न सकी
XXXXXXXXXXX
वे पितृतुल्य मर गये भाव
वात्सल्य विभा से मैं विभोर
जब जब उठती स्मृति की सुगन्ध
सुख का न ओर दुःख का न छोर। (1)

तात्पर्य यह है कि सकाम भाव से शारीरिक रूपाकर्षण प्रेम दाम्पत्य की सहज अनुभूति एवं कामरहित वृत्तियों में स्नेह सौहार्द आदि का व्यावहारिक विवेचन रामावतार ने विभिन्न परिस्थितियों के पृष्ठभूमि के रूप में किया है। ऐसे वर्णन सरल, माधुर्य, प्रधान, मादक एवं आकर्षक रूप में व्यंजित है इन भावों की अभिव्यंजना हेतु कवि ने शब्दों के कोमल रूपों का प्रयोग किया है। दूसरा पाठ कभी आनान्दानुभूति में आकण्ठ निमग्न हो जाता है।

महाभारती में भावात्मक प्रवृत्तियों के साथ-साथ विरागात्मक प्रवृत्तियों का भी निदर्शन मिलता हैं विरागात्मक या प्रवृत्ति या प्रतिकूल परिस्थित में उत्पन्न होती है जिनसे घृणा, क्रोध, उदासीनता, विकर्षण, पलायन , युयुत्सा आदि भाव जाग्रत होते हैं।

सबसे पहले हम क्रोध तद्जन्य युयुत्सा प्रवृत्ति का वर्णन करेगें। गीता में कहा गया है कि विषयों के चिन्तन से मनुष्य का मन विषयासक्त हो जाता है और उसकी पूर्ति न होने पर क्रोध उत्पन्न हो जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार क्रोधाविष्ट व्यक्ति लडाकू बन जाता है। सामर्थ्य पर काबू नहीं रख पाता, क्योंकि क्रोधाविष्ट व्यक्ति को क्रोध का भाव उसे अन्धा कर देता है। वशिष्ठ और विश्वामित्र का प्रसंग इसी मनोभाव को पुष्ट करता

---

(1) महाभारती, दसम सर्ग, पृ0 343

हैं। वशिष्ठ के आश्रम में कामधेनु सुतानन्दनी की मनोभिलाषित आकांक्षाओं की पूर्ति करनें की सामर्थ्य को देखकर विश्वामित्र में राजस भाव जाग्रत हो जाता है। माँगनें पर वशिष्ठ द्वारा अस्वीकार को सुन वे आवेश में आकर युद्ध की घोषणा कर देते हैं चिन्तन तद्‌जन्य लोभ मोह की उत्पत्ति का कवि ने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया हैं। मन में लोभ को दबाकर परोपकरार्थ रूप में परोपकारी बनकर विश्वामित्र ने कहा–

समदर्शी नृप हित कामधेनु सम्पदा पूर्ति
इच्छित फलदायी यह सजीव कामना मूर्ति
अनिवार्य राज्य ऐश्वर्य हेतु हितकारी सृष्टि
परमार्थ लाभ के लिये विकल लोभिनी दृष्टि।(1)

लोभ या मोह की पूर्ति मे बाधा पड़नें पर क्रोध की अभिव्यक्ति सहज ही होती हैं विश्वामित्र कहते हैं–

उभरा मुझमें धीरे-धीरे अब राज भाव
पर सोंचा व्यर्थ करूँ क्यों मैं ऋषि से दुराव?
अप्रकट क्रोध को उडा दिया उर अम्बर में
पर एक अनल कण शेष कहीं अन्तरतर में।(2)

मनः जायते क्रोधा के पश्चात् वुद्धि का विनाश कितना शीघ्र होता हैं। यह महाभारती कार्य को भली प्रकार विवदित हैं। कवि ने इस पूरे प्रसंग का चित्रांकन बड़ी सहजता स्वाभाविता से किया हैं विश्वामित्र की याचना दुराग्रह में परिवर्तित हो गई। और यह दुराग्रह युयुत्सा वृत्ति को को पुष्ट करनें लगी तो दूसरी तरफ वशिष्ठ की धीरता समदर्शिता स्थिरता जहाँ उनके चरित्र के उज्ज्वल पक्ष को दर्शित करती है; वहीं विश्वामित्र के मन में एकाग्रता के लिए उद्‌दीपन का कार्य करती है।

भौतिक तन बल पर गगन अस्त्र का अणु प्रहार
हुंकारों पर हुंकार परस्पर रणोच्चार

---

(1) महाभारती, षष्ठ सर्ग, पृ0 207

(2) महाभारती, षष्ठ सर्ग, पृ0 209

गर्जित वशिष्ठ अध्यात्म क्रोध ज्यों अशनिपात

शब्दाग्नि धूम से दिवस दीप्ति बन गई रात

मेरी सेनाएँ हुई भस्म ऋषि विधि बल से

तब मैनें शस्त्र निकाला निज अन्तस्तल से

जीवित न बचा कोई इतना आक्रमण सफल

भीषण प्रहार से तपोभूमि टलमल-टलमल

देवों को ज्यों दानव बनना पड़ता रण में

रचती प्रभुता अंगार मन्त्र क्रोधित मन में

अकुलाता जब आकोश प्रशर नर अहंकार

मदमत्त शक्तियाँ स्वयं उगलती अन्धकार

मानव स्वभाव स्थित गति पर ज्यों नित अवलम्बित

अधरों का शब्दामृत भी बन जाता हैं विष घृत

प्रतिकूल पन्थ में ज्यों अनकूल प्रेरणा गति

इस ज्योतित युद्ध में कुछ वैसी ही मेरी मति। (1)

कौतूहल (जिज्ञासा) :- मनोवैज्ञानिकों ने कौतूहल या जिज्ञासा को सहज प्रवृत्ति स्वीकार किया है। जो कुछ भी हमारे चतुर्दिक अस्वाभाविक किन्तु विशिष्ट घटना या वस्तु दिखाई देती है, जिज्ञासा हमारें मन में उत्पन्न होने लगती है। महाभारती कार ने अतीन्द्रिय सौन्दर्य दर्शन या विश्वामित्र के मन में नन्दिनी के द्वारा उत्पन्न भौतिक सुख साधनों सम्भारों के वर्णन के समय जिज्ञासा अपने चरम रूप में वर्णित होती है। वशिष्ठ के द्वारा अप्रतिम स्वागत प्राप्त कर आश्चर्यचकित विश्वामित्र वशिष्ठ से कहतें हैं -

किस तत्व सिद्ध से प्रभु हे! इच्छित आयोजन?

साक्षात्कार हित अति अधीर अब अर्न्तमन गुरुवर

अगस्त्य से मिल न सकी यह स्वप्न सिद्धि

हे ब्रम्ह प्राण! जो हुई प्रकट वो कौन ऋद्धि?

श्रुत कथा हुई प्रत्यक्ष आज विधि कानन में

---

(1) महाभारती, षष्ठ सर्ग, पृ0 210-11

देखी प्रज्ञार्जित शक्ति साधना जीवन में

किस महाचेतना से सम्भव इच्छाभिषेक?

हो गया स्तब्ध, हो गया स्तब्ध मेरा विवेक

क्या भोग भरे तप की तात्त्विक संसिद्धि यही

क्या महाव्योम विज्ञान सुलभ श्री वृद्धि यही

ऋषि देव! अपेक्षित आत्म प्रश्न का समाधान

जिज्ञासित दिव्योत्तर हित मैं हे महाप्राण। (1)

सासांरिक वस्तुओं और घटनाओं की अलौकिकता में जो प्रश्नाकुलता होती है उसकी परिणित दार्शनिक चिन्तन मे सहज ही हो जाती है। धीरे-धीरे व्यक्ति चिन्तन की गम्भीरता में निमग्न हो जाता है। और सृष्टि के मूल रहस्यों की जानकारी हेतु व्याकुल हो जाता है।–

कौन वह कवि कुबेर था कृपण

छिपा ली जिसने भू सम्पत्ति?

कौन सा था वे कलाविज्ञान

कि जिसके चालक में ऋषि शक्ति?

दृश्य ही नहीं जगत का विम्ब

प्राप्त भर ही न होगी सिद्धि

ज्योति जीवन का अगम रहस्य

अभी भी ओझल शेष समृद्धि

चेतना का अन्तिम अस्तित्व

चेतना में ही केवल लीन

विश्व का वहता हुआ प्रवाह

नित्य ही प्रतिपल प्राण नवीन। (2)

सामाजिकता :– मनुष्य सामाजिक प्राणी है। सृष्टि के आदिकाल से जीवन यात्रा प्रारम्भ कर जब उसमें चिन्तन की क्षमता उत्पन्न होगी। सामाजिकता पहला मनोभाव है, जिसका

---

(1) महाभारती, षष्ठ सर्ग, पृ0 206

(2) महाभारती, एकादश सर्ग, पृ0 406-407

प्रादुर्भाव उसके मन में हुआ था। यद्यपि सामाजिकता को मनोवेग युक्त नहीं कह सकते क्योंकि यह एक प्रकार का आन्तरिक मनोभाव है बाह्य प्रतिक्रिया की स्थित कम ही होती हैं। लोपामुद्रा, कण्व, पुरूरवा, अगस्त्य के जीवन की घटना विन्यास में कवि ने सामाजिकता के भाव को पुष्ट किया है। अगस्त्य और विश्वामित्र के मन में अदम्य आकांक्षा थी कि उन्हें ऐसी सिद्धि प्राप्त हो जाये कि वह मानव मात्र को सर्वतोभावेन सुखी कर सके। इस साधना में अगस्त्य को कुछ सफलता मिली थी। वशिष्ठ द्वारा विश्वामित्र के स्वागत इसी सामाजिकता का परिचय मिलता हैं।

सकल मानव हो एक समान
अनुभव सा लगता वह खेल
प्राण पर पड़ता काल प्रभाव
मनुज मिटता सुख दुःख को झेल (1)

शकुन्तला पुत्र भरत के राजा वनने पर वह जिस मनोराज्य की कल्पना करता हैं, उसमे सामाजिकता कूट-कूट कर भरी है-

जन मन का जाग्रत इन्द्र कमी

स्वर्गिक निर्माण करेगा ही
स्वर्णिम भविष्य समता पथ पर
आलोकित चरण धरेगा ही।
गणमन्त्र तभी गूँजेगा जब
मानव प्रबुद्ध हो जायेगा
मानस का सारस्वत प्रकाश
जब सत्य हेतु अकुलायेगा। (2)

पश्चिम के समाज शास्त्रियों ने सामाजिक समझौते का उल्लेख कर यह प्रतिपादित करनें का प्रयास किया है कि जब मानव ने मानव को पहचाना होगा, तब परस्पर के अस्त्रों को फेक दिया होगा और गले मिले होंगे। बैठकर जिस सामाजिकता का सूत्रपात

---

(1) महाभारती, एकादश सर्ग, पृ0 376

(2) महाभारती, त्रयोदश सर्ग, पृ0 471

हुआ उसी के विकसित रूप आज हमे विधि-निषेधों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। परिवार, ग्राम, प्रान्त, देश और विश्व क्रमशः हमारी कौटुम्बिक भावाना के उदार से उदारतम रूप हैं चतुर्दश सर्ग में दुष्यन्त पुत्र भरत की अन्तर्व्यथा में इसी सामाजिकता का आदर्श रूप वर्णित है।

आयातित तुष्टियाँ इतनी कि चितप्रवाह निर्मल
न कृषि उद्योग ऐसा कि ग्रस्त अभाव से जन
न भोगी भावना इतनी की स्वस्थ स्वदेश कुण्ठित
भविष्य स्वप्नता ऐसी की सम सम्पन्न जीवन
कहूँगा मैं भरत से अबकि नृपता नहीं स्थाई
भविष्य जलादेगा व्यक्ति सत्ता की ध्वजा को
मुकुटमणि अंश का अधिकार निश्चय प्राप्त होगा
स्वशसित विश्व की प्रत्येक अनुशासित प्रजा को। (1)

महाभारती में अन्तर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व

अन्तः संघर्षः- फ्रायड ने लिबडो ग्रन्थि की बहुत चर्चा की है यह मनुष्य की मूल प्रेरक शक्ति काम और जिजीविषा से सम्बन्ध रखती हैं। इसी परिक्षेप्य में मनोविश्लेषण वादियों ने मन के क्रियाकलापों का अध्ययन विश्लेषण किया हैं प्रत्येक व्यक्ति का मन अपने परिस्थियों के अनुकूल अहं का निर्माण करता हैं इसके कारण ही उसकी वैक्त्विक चेतना और सामाजिक निषेधों के मध्य द्वन्द्व उत्पन्न हो जाते हैं। फ्रायड ने ही इन्हे अन्तर्द्वन्द्व वताया हैं। इस अन्तर्द्वन्द्व के मूल में उन शक्तियों की चर्चा की गई हैं इसे अंग्रेजी में इग, इडो, सुपर इगो नाम से अभिहित किया गया हैं।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में इड का महत्वपूर्ण स्थान होता हैं क्योंकि यह सामाजिक और स्वाभाविक अवस्था है। इगो के कारण इस प्रारम्भिक अवस्था से उसके मन में संघर्ष होता है। इस संघर्ष में सुपर इगो निर्णायक की भूमिका अदा करता हैं। क्योंकि अन्तर्मुखी अथवा बहिर्मुखी प्रधान व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में सुपर इगो से प्रभावित अवश्य होते हैं व्यक्तित्व के विरुद्ध परिस्थितियों के आने पर इसका इगो विद्रोह करता है। इस

विद्रोह को परिस्थितियों के कारण अच्छा व बुरा दोनों कहा गया है। (1)

पोद्दार रामावतार ने बाह्य संघर्ष की भी चर्चा अनेक स्थानों पर की है। जिसके एकाध स्थलों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या पिछले पृष्ठों में युयुत्सा मनोवृत्ति के परिप्रेक्ष्य के रूप में कर चुके हैं। यहाँ हमारा मंतव्य इड और इगो तथा सुपर इगो के मध्य चलने वाले संघर्ष की यत्किंचित व्याख्या करना अभीष्ट हैं।

विश्वामित्र श्रेष्ठ युवक स्वाभिमानी क्षत्रिय एवं उदात्त विचारों का पुरूष हैं किन्तु परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनी की उन्हें जीवन में दो वार पराजय का मुख देखना पड़ा। वशिष्ठ के सम्मुख कामधेनु पुत्री गाय की याचना के सन्दर्भ में एवं कठोर तपस्या में संलग्न अप्सरा मेनका के प्रसंग में। दोनों पराजयों से अभिभूत उद्वेलित विश्वामित्र का आन्तरिक संघर्ष अपने चरम अवस्था में पहुँच जाता हैं। उसका इगो कविद्रोह करने के लिये संघर्ष करनें को प्रेरित करता है। वह चिन्तन करता है।

करूँ क्या आलोक की अवहेलना?
छोड़ दूँ ब्रह्माग्नि से अब खेलना?
हार जाऊँ क्या वशिष्ठ विकास से?
अब बातें करूँ क्या आकाश से? (2)

जव अहं का प्रादुर्भाव होता है, उस समय मन अनेक संकल्पों विकल्पों से युक्त होता है, पराजय की ग्लानि एक ओर है तो जिजीविषा और यौवन शक्ति उस पर विजय प्राप्त करनें के लिये कृत संकल्प हैं। इन दोनों के द्वन्द्व को रामावतार पोद्दारा ने अत्यन्त सूक्षमता से निरुपित किया है।

भूल सा मै। गया पृथ्वी पुत्र हूँ
कहूँ किस मुँह से कि जीवन सूत्र हूँ
तपस्या से प्रण न पूरा कर सका
नहीं जन-मन प्रकोश बिखर सका
मनुज का गतिशील मन तो एक रे

---

(1) ए आउट लाइन ऑफ ह्यूमन साइकोलॉजी : एलिस हैविलाक के आधार पर

(2) महाभारती, अष्टम सर्ग, पृ0 263

आत्म का एकत्व विश्व विवेक रे

महाकरूणाम या चिन्तन मर्म हैं

नहीं निष्क्रिय कभी मानव-धर्म है। (1)

पराजित और हताश मन वाले व्यक्ति अन्तर्मुखी हुये तो इन परिस्थितयों में लिवडो ग्रन्थि कार्य नहीं करती और वह लज्जा ग्लानि या आत्म हत्या के लिये सोचने लगता है जबकि वहिर्मुखी व्यक्ति अपने 'सुपर इगो' से प्रभावित होकर अपनी इन भावनाओं को ज्ञान देकर कर्म के मार्ग में प्रवृत्त होकर अपनी भावनाओं का उदात्तीकरण करते हैं।(2)

रामावतार पोद्दार ने विश्वामित्र के मन मे उठनें वाले प्रबल झंझवातों का चित्रांकन मनोविज्ञान की सुदृढ़ पृष्ठभूमि में अंकित किया है। विश्वामित्र जैसा वहिर्मुखी व्यक्तित्व अपने इगो के कारण ही अपने मन के भावों को उदात्त बनाता है। उसका चिन्तन देखिये-

सृष्टि नूतन रचूँ ऐसी शक्ति क्या?

भला विश्वामित्र ऐसा व्यक्ति क्या?

स्वप्न देखा था कभी निर्माण का

शून्य में उड़ते हुए ग्रह यान का

भूल क्या मैं गया अपनी भावना?

कर रहा किस शक्ति की मैं अर्चना?

ओ तपस्वी तुम्ही विश्वामित्र हो

पराजय में भी विजय के चित्र हो

मनुज पूजन भी महत अराधना

किन्तु अब कर रहे कैसी साधना?

जूझते हो तुम अरे किस प्यास से?

लड़ रहे हो तुम किस प्रणम्य प्रकाश से?

तुम्हें अवगत है कि अब तुम कौन हो?

सूर्य हे! किस व्योम में तुम मौन हो?

---

(1) महाभारती, अष्टम सर्ग, पृ0 265

(2) मनोविज्ञान लेखक फ्रायड अनुवाद ....

चेतना का अमृत देना हैं तुम्हें

स्वयं कुछ भी नहीं लेना हैं तुम्हे। (1)

कवि ने सुपर इगो की चर्चा अत्यन्त स्वभाविक रूप में की है। यहाँ यह लिखना समीचीन प्रतीत होता हैं कि 'सुपर इगो' को कुछ लोग नैतिक अहं कहते हैं। वस्तुतः यह मन की ऐसी प्रवृत्ति है जो सदा सर्वदा नैतिक विचारों का समर्थन करती है, ऐसा पूर्णरूपेण नहीं कहा जा सकता, फिर भी कवि उन परिस्थितियों की रचना करता है। जिनसे इड, इगों का संघर्ष सुपर इगो के माध्यम से समाविष्ट या पर्यवसित हो जाता है।

विश्वामित्र के प्रसंग में हम यह सहज रूप से कह सकते हैं कि उसने वशिष्ठ से गाय की माँग स्वार्थ की पूर्ति के लिये नहीं किया था अपितु सुख साधनों की क्षमता को लोक हितार्थ उपयोग करनें का संकल्प किया था। जिसमें उन्हें सफलता हाथ लगी थी किन्तु उनके इसी 'सुपर इगो' ने उनकी भावनाओं का उदात्तीकरण किया है। कवि ने लिखा है-

बार-बार पुकार किसकी आ रही?

कौन कुछ अर्न्तजगत में कुछ गा रही?

स्मरण करती कौन मन वातास में?

गूँजती वह अभी भी आकाश में

द्वन्द्व की रमणीयता गतिभर गई

दिव्यता से देह आज सिहर गई

हृदय में किस हृदय की वह हूक थी

गन्ध पीती हूई किसकी कूक थी?(2)

एकादश सर्ग में लोपामुद्रा की स्मृति के माध्यम से यह अन्तर्द्वन्द्व निरूपित हुआ है। बात यह है कि आत्ममंथन की प्रक्रिया अतीत के द्वार खोलती है। जीवन के पौढ़ावस्था वयस में पूर्व स्मृतियाँ कितनी मादक हृदय को उद्वेलित करनें वाली होती हैं। इसे लोपामुद्रा से अधिक कौन जान सकता है। यौवन के प्रथम उर्न्मष में नवागन्तुक परिचय मनोविकार जन्य अन्तर्द्वन्द्व सुधियों का आस्वादन मन को कितना निरीह बना देता हैं।

---

(1) महाभारती, अष्टम सर्ग, पृ0 265-67

(2) महाभारती, अष्टम सर्ग, पृ0 268-69

किन्तु इस संघर्ष में अहं की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती हैं।

अरे मन तूने यह क्या किया?
स्वयं को सोच रही मैं स्वयम्
तोड़ देता है अन्तःकरण
अलौकिक बल से लौकिक नियम। (1)

मुग्धा से मध्या नायिका बनने की कथा को वह इस प्रकार व्यक्त करती हैं:-

बह रहा कैसा झंझावत
कि मेरे मन में झमक-झकोर
झूमता हैं क्यों जीवन वृा
कहाँ से आई चपल हिलोर।(2)

मनोविश्लेषण वादी वैज्ञानिकों ने यह सिद्धान्त स्थापित करनें का प्रयास किया है कि चेतन मन की आकांक्षायें जब पूर्ण नही हो पाती, उसका सुपर इगो इन भावनाओं का दमन करता है, तब यह भावनायें सुप्त अवस्था में अचेतन मन में एकत्रित होती रहती है। और अनुकूल परिस्थिति पाते ही स्वप्नों के माध्यम से व्यक्त होती हैं। इसलिये मनोवैज्ञानिक ने इस दबाव को मार्गान्तरीकरण के द्वारा अथवा स्वप्न संघनन के द्वारा अभिव्यंजित करनें का प्रयास करतें हैं। पोद्दार रामावतार ने दुष्यन्त शकुन्तला के पुत्र भरत के प्रति माँ की ममता जितनी उदार है, उतनी ही शकुन्तला की उच्च भावना (सुपीरियारिटी काम्पलेक्स) से प्ररित होकर वह पुत्र विषयक दुश्चिन्ता से ग्रस्त होती हैं। जंगल में भला भरत को उच्च साम्राज्य की प्राप्ति कहाँ हो सकती हैं। शकुन्तला के मन की अवदमित कामनाएँ मार्गान्तरीकरण के माध्यम से इस कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

सोती शकुन्तला जब सुत के संग रात में
भर देती वात्सल्य सुधा उस पद्य गात में
स्वप्न देखती वह कि भरत गुरुकुल में पड़ता
श्वेत अश्व पर बैठ हरित गिरी पर ही चढ़ता

---

(1) महाभारती, एकादश सर्ग, पृ0 380

(2) महाभारती, एकादश सर्ग, पृ0 381

कभी स्वप्न में सागर तट पर भरत खड़ा सा

सिंह पीठ पर धनुष लिये वह नहीं डरा सा

कभी अनार्यो की सेना का संचालक वह

कभी युद्धरत आर्य प्रतिष्ठा का पालक वह

स्वप्न देखती माता पुत्र विकास विमा का

करतीर वह अनुमान भविष्यत की प्रतिभा का

नींद टूट जानें पर निज प्रिय को निहारती

दीप दीप्ति हित प्रति हरिणियें को पुकारती

छिपा प्रभांचल में रहता जब सुप्त बाल रवि

कहते वे प्रियतमे स्वप्न में मुस्कराती क्यों

मौन मुखाकृति पर प्रसन्नता विखराती क्यों? (1)

फ्रायड ने अवदमित काम कुण्ठओं की अभिव्यंजना के लिए नृत्य, संगीत, चित्रकलाओं का उल्लेख किया हैं। पोद्दार रामावतार ने पुरूरवा और उर्वशी प्रसंग में इस तथ्य की सविस्तार व्याख्या की हैं। उद्दाम कामवासना अवदमित होकर हमारे अवचेतन मस्तिष्क में हलचल मचा देती हैं। उर्वशी यद्यपि अप्सरा हैं काम कला में निष्णात हैं उद्दाम यौवन विलास की प्रवीणा हैं फिर भी राक्षस से त्राण पानें में सहायक पुरूरवा के नैसर्गिक मानवीय सौन्दर्य से अप्रभावित हुए बिना नही रहती हैं, अधूरे मिलन को छोड़कर उसे आ जाना पड़ा रातदिन उसे चतुर्दिक प्रेमी के दर्शन होते थे। और सभा में नृत्य के समय काम की अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त आंगिक मुद्राओं के माध्यम से कामवासना की अभिव्यंजना मार्गान्तरीकरण के माध्यम से किया है।

झंझा सी नाच रही थी मैं सन्-सनन-सनन

श्रंगार सदन में रणन-रणन युग यवन क्वणन

सन्तुलन हीन नर्तन से मुनि किंचित शंकित।

सुविशाल लाल लोचन में रवि तत्काल उदित

अलसित कटि गति में लचक लोच का कलाभाव

---

(1) महाभारती, द्वादश सर्ग, पृ0 422-423

उत्ताल ताल आरोहण का श्लथ पथ पड़ाव
भुज भ्रकुटि ग्रीव अभिव्यंजन रण में अनुचित स्वप्न
पद्यार्पित प्रतिभा स्कन्ध भाव में उर्ध्व स्खलन
नासिका नयन मधुराधर मुख मुद्रा उमंग
पति-पति प्रसंग रति प्रणति भाव द्युति निस्तरंग
आनन्द अलंकृत झंकृत में झनक झिझक झीम
द्रिम-द्रिम मृदंग रव में ज्यों असमय द्रिमिर द्रीम
गुरूदेव क्षमा मैं हुई वंचिता गरिमा से
इन्द्रासन रिक्त रहा उर्वशी मधुरिमा से
भौतिक आकर्षण से सुर शोभा हुई मलिन
मैं समझ ना पाई शुभ था या कि अशुभ वह दिन। (1)

सारांश यह है कि रामावतार पोद्दार ने मानव मन की मूल वृत्तियों काम, क्रोध, लोभ, मोह, पलायन, शिक्षा, सामाजिकता संग्रह निर्माण इत्यादि रागात्मक एवं विरागात्मक मनोभावों का वर्णन मनोवैज्ञानिक पीठिका पर किया है। इन मनोभावों का वर्णन सिद्धान्तों के लक्षणानुवधावन पद्धति पर न कर वातावरण और परिस्थित जन्य किया हैं। किसी अपूर्व अद्वितीय अपूर्व सुन्दरी को देख उसके मन में आकर्षण होना सहज ही स्वभाविक होता हैं। अगस्त्य, लोपमुद्रा, विश्वामित्र, मेनका विश्वामित्र, पुरूरवा, उर्वशी, दुष्यन्त, शकुन्तला, ऐसी ही प्रणयी है। जो काम के आवेग में बँधकर अपने पद और गरिमा के अनुसार कार्य करनें में असमर्थ रहे। युवा ऋषि अगस्त्य राजा पुरूरवा विश्वामित्र जिन्हे काम का पूर्व अनुभव था। फिर भी इस नैसर्गिक सौन्दर्य को देखकर अपने आचरण को सन्तुलित नहीं कर सकें। कवि ने इन मनोभाव को संवेग के स्तर तक पहुचाया। है। क्योंकि मनोविज्ञान वेत्ता ये मानते हैं कि संवेग भावों का आचरण बद्ध कृतित्व है। इतना अवश्य की अवचेतन मन में सुप्त यह काम भावना अपने मांगलिक और आदर्श रूप में व्यंजित हुई है। किशोरी लोपामुद्रा की आंगिक चेष्टाओं से लुब्ध अगस्त्य का मन उसकी तरफ आकुष्ट हुआ तो उर्वशी अपने रक्षक के प्रति कृतज्ञ होकर उसके प्रेम में बँध गई। तपोनिरत विश्वामित्र

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग, पृ0 83-84

मेनका की उद्दीपक काम क्रियाओं से संवलित आंगिक चेष्टाओं के कारण मनोविकार ग्रस्त हुए क्योंकि उनके मन में उनका इगो सर्वोच्च था। दुष्यन्त और शकुन्तला की काम व्यंजना में शकुन्तला की काम भावनायें मुग्धा नायिका से आगे बढ़कर यह था। नायिका की अनुभूतियों का हृदयावर्जक वर्णन कवि ने मनावैज्ञानिक भित्ति पर किया है। इसी प्रकार क्रोध ा, मोह, लोभ और वात्सल्य की अनुभूतियों का कुशल चित्रांकन कवि ने किया है। यहाँ यह स्मरणीय है कि कवि ने सहज नैसर्गिक मनोवृत्तियों का उल्लेख है उद्भव विकास और तद्जन्य अन्तर्वाह्य चेष्टाओं क्रियाओं के माध्यम से इन संवेगों का वर्णन किया हैं। संवेगो के वर्णन में कवि ने परिस्थिति का विशेष रूप से वर्णन किया है क्योंकि मनोविज्ञान वेत्ता इस धारणा को स्वीकार करते हैं कि मनोविकार कुण्ठा व संत्रास अवदमित कामवासनाओं के मूल में परिस्थितियाँ ही कार्य करती हैं। इन मनोविकारों की अभिव्यंजना के लिए स्वप्न संघनन मार्गन्तीकरण और कलाओं का माध्यम लिया है। यह फ्रायड के मनोविज्ञान के आधार पर हुआ है।

कवि रामावतार न तो मनोविज्ञान के विद्यार्थी, न थे और न उसके व्याख्या कार। महाभारती महाकाव्य मनोवैज्ञानिक सूत्रों के सैद्धान्तिक विवेचन सम्बन्धी ग्रन्थ नहीं है। फिर भी कवि ने पात्र परिचय उनके अन्तस के मनोभाव, उन मनोभावों के कारण उत्पन्न हानें वाली कायिक, वाचिक, सात्विक चेष्टाएँ आचरण और व्यवहार का सहज सरल और स्वभाविक चित्रण किया है। जिसमे कुछ तो प्राक्तन कथा का योगदान था और कुछ कवि की सहज स्वभाविक मनोवैज्ञानिक धारणायें काम रही थी

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता हैं कि महाभारती सिद्धान्तों का पिष्टपेषण न होकर भावों की मनोवैज्ञानिक भित्ति पर चित्रण हुआ है।

तृतीय खण्ड : संस्कृति

प्रथम अध्याय
संस्कृति का स्वरूप

द्वितीय अध्याय
महाभारती लौकिक तत्व
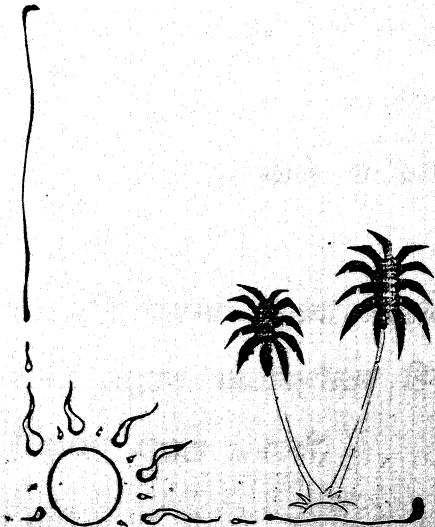
संस्कृति

संस्कृति की परिभाषा:- संस्कृति शब्द समउपसर्ग पूर्वक डुकृञकरणे धातु से किन प्रत्यय का योग करनें पर निष्पन्न होता है। सम् और परि उपसर्ग पूर्वक डुकृञ धातु से भूषण एवं संघात अर्थ अभीष्ट होने पर सुअ् आगम होता हैं।(1) इस प्रकार संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है :- भूषण भूत सम्यक कृति। इस प्रकार संस्कृति से परिष्करण या परिमार्जन की क्रिया अथवा सम्यक रूपेण निर्माण का अर्थ ग्रहण किया जाता है।(2)

ऋगवेद में संस्कृति(3) तथा यजुर्वेद(4) और ऐतरेय ब्राहम्ण(5) में संस्कृति(6) शब्द का प्रयोग मिलता हैं। डॉ0 पी0वी0 काणे का मत हैं कि ऋगवेद 5/76/2 में प्रयुक्त संस्कृति का अर्थ धर्म (वर्तन है)(7) तथा सायण ने धर्म का अर्थ यज्ञ(8) माना है। इस प्रकार सायण के मत सें ऋगवेद मे संस्कृति शब्द संस्कार युक्त यज्ञ के लिया हुआ हैं।(9) यजुर्वेद में संस्कृति शब्द का प्रयोग भाष्यकार उबट के मत से सत्कार(10) के अर्थ में और भाष्कार महीधर के मत से 'संस्कार'(11) अर्थ में हुआ हैं।

---

(1) सं परिम्यां करोतौ भूषणे। अष्टाध्यायी : 6/1/137

(2) संस्कारैः आत्मधर्मादिभिः जीवनं संस्कारोतीति संस्कृतिः।

(3) न संस्कृतं प्र भिमीतो गामिष्ठान्ति नूनमश्विनोपश्तुतेह। ऋग्वेद - 5/76/2

(4) तन्नौ संस्कृतम्। यजुर्वेद - 4/34

(5) सा प्रथमा संस्कृति र्विश्ववारा। यजुर्वेद - 7/14

(6) आत्म संस्कृतिर्वावाश्ल्यिानि ऐतर्यजमान आत्मं संश कुरूथ। ऐत्तेय ब्राम्हण 6/5/1

(7) धर्म शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, डा0 पी0वी0 काणे, पृ0 176

(8) धर्म मक्ष ऋग्वेद। 5/76/1

(9) अश्विनौ सस्कृतम् धर्म न प्रमिदीतः। धर्म समीप्ये नोनमिदानी मिह यज्ञैः। ऋग्वेद-5/76/2 का सायण भाष्य

10. सा प्रथमः संस्कतिः सः प्रथमः सोमसत्कारः क्रियते सोमक्रये। यजुवेद 7/14 का उबट भाष्य ।

(11) सा प्रथमा मुख्या संस्कृतिः सोमसंस्कारः। यजुर्वेद 7/14

(सभी उद्धरण छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्यों का सांस्कृतिक अनुशलीन डॉ0 विशम्भर दयाल अवस्थी)

बाबू गुलाब राय ने संस्कृति शब्द का सम्बन्ध 'संस्कार' से माना है, जिसका अर्थ है 'संशोधन करना', 'उत्तम बनाना', 'परिष्कार करना'। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं।(1) डॉ० मनमोहन शर्मा के अनुसार संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति संस्कार शब्द से मानना अधिक युक्ति संगत होगा, क्योंकि संस्कार का अभिप्राय किसी वस्तु के मल (दोष) को दूर कर उसको सिद्धि साधक वनाना है। मलापयन और अतिशयाधान, संस्कारों के ये दो रूप हैं, जिनसे न केवल शरीर किन्तु आत्मा या अन्तःकरण भी शुद्ध होता है। सम्यक संस्कारों से युक्त कृतियाँ संस्कृति है।(2)

संस्कृति का समानार्थी अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' है, जिसका अर्थ हैः कृषि, परिष्कार, सभ्यता की स्थिति।(3)

आक्सफोर्ड डिक्सनरी में 'कल्चर' शब्द की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि मन का शिक्षण तथा परिष्करण जिनसे रूचि तथा व्यावहारिक आचरण का निर्माण होता है, संस्कृति के उपादान है। संस्कृति सभ्यता का बौद्धिक पार्श्व है, जिससे हम सर्वोत्तम के साथ अपना सम्पर्क स्थापित करते हैं।(4)

डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र का मत है कि संस्कृति का अर्थ हुआ, क्रिया अथवा वह अवस्था जो समूचे मानव जीवन को अपवित्रता की ओर से हटाकर पवित्रता की ओर तथा अशुद्धि की ओर से हटाकर शुद्धि की ओर ले जाए।(5)

ई०बी० टाइलर – संस्कृति, ज्ञान, विश्वास, कलाकृति, नैतिक नियम आचार व्यवहार तथा मनुष्य की अन्य उपलब्धियों को व्यक्त करने वाला शब्द है।(6)

---

(1) भारतीय संस्कृति की रूप रेखा, बाबू गुलाब राय, पृ01

(2) भारतीय संस्कृति और साहित्य, डॉ0 मनमोहन शर्मा, पृ0 24

(3) रिवाइज्ड एडीसन, 1962 पेज0 257

(4) आक्सफोर्ड डिक्शनरी,

(5) भारतीय संस्कृति, बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ03

(6) Culture is that compex whole which in cludes knowledge peliefart morals law custom and other capablities required by man S.A. member of society.

डॉ0 देवराज संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएँ समझनी चाहिए, जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध वनाने वाली हैं। इस दृष्टि से हम विभिन्न शास्त्रों दर्शन आदि में होने वाले चिन्तन, साहित्य, चित्रांकन आदि कलाओं एवं परहित साधना आदि नैतिक आदर्शो तथा व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा दे सकते हैं।(1)

डा0 मंगल देव शास्त्री – 'किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन-उन आदर्शो की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए।(2)

डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल – 'संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगींण प्रकार है। हमारे जीवन का ढ़ंग हमारी संस्कृति है.............. जीवन के नानाविधि रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।'(3)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – 'आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक संघटन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य बोध को तीव्रतर करने की योजना, ये सभ्यता के चार स्तम्भ हैं। इन सवके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती है।'(4)

डॉ0 नगेन्द्र 'संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहाँ उसके प्राकृत राग द्वेषों का परिमार्जन हो जाता है।'(5)

डॉ0 राम जी उपाध्याय ने लिखा है कि 'प्राकृतिक जीवन को व्यवस्थित और शालीन बनाकर संवारना तथा जीवन में आध्यात्मिक, कलात्मक और सेवात्मक पक्ष की प्रतिष्ठा और विकास करना संस्कृति है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संस्कृति मानव के विकास की प्रक्रिया है। संस्कृति का मौलिक अर्थ सुधारना अथवा सुन्दर या पूर्ण बनाना है।'(6)

---

(1) हिन्दी साहित्य कोष, पृ0 801-802

(2) भारतीय संस्कृति का विकास, पृ0 04

(3) कल्प वृक्ष, लेख ; संस्कृति का स्वरूप पृ0 04

(4) अशोक के फूल, पृ0 81

(5) साकेत एक अध्ययन, पृ0100

(6) भारतीय संस्कृति का उत्थान, डॉ0 रामजी उपाध्याय, पृ004

सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता के क्षेत्र से है और संस्कृति का सम्बन्ध मूल्यों के क्षेत्र से। सम्भ्यता तथा संस्कृति दोनो मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया के कार्य या परिणाम है। जब यह क्रिया उपयोगी लक्ष्य की ओर गतिमान होती है तब सभ्यता का जन्म होता है और जब वह मूल चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर अग्रसर होती है, तब संस्कृति का उदय होता है।(1)

सभ्यता को मानव के विकास की समस्त चेष्टाओं का बाह्य रूप कहा जाता है और संस्कृति उनका आन्तरिक रूप है।(2)

संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से है और सभ्यता का सम्बन्ध मानवीय कार्य कलापों से हैं। इस प्रकार संस्कृति शब्द बौद्धिक उन्नति का पर्यायवाची है और सभ्यता शब्द भौतिक विकास समानार्थक है। सभ्यता सांस्कृतिक विचारधारा का बाह्य क्रियात्मक रूप है। संस्कृति या बौद्धिक विचारधारा सभ्यता अर्थात् विकास में परिणित हो जाती है।(3)

डॉ0 कमला प्रसाद पाण्डेय का मत है कि संस्कृति जीवन बोध का पर्याय है; और सभ्यता उसको कर्मरूप में परिणित करने का माध्यम।(4) डॉ रामरतन महानागर के अनुसार संस्कृति भावमय तथा ज्ञानमय है और सभ्यता कर्ममय।(5)

सभ्यता का सम्बन्ध सामाजिक शिष्ट व्यवहारों से होता है; जबकि संस्कृति हार्दिक गुणों के प्रकाशन में दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि सभ्यता शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा। बोलचाल वेशभूषा और व्यवहार में साधुता सभ्यता को सूचित करती है और यह दुःख कातरता, परसेवा, करूणा और परस्वार्थ साधन आदि हार्दिक गुणों के रूप में संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है।

---

(1) संस्कृत का दार्शनिक विवेचन, पृ0 188 डॉ0 देवराज।

(2) कामायनी में काव्य, संस्कृति, सभ्यता और दर्शन, पृ0 307

(3) भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता - पूर्वाभास, पृ0 3-4

(4) छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि-डॉ0 कमला प्रसाद पाण्डेय, पृ0 42

(5) सामयिक जीवन और साहित्य, पृ034

भारतीय संस्कृति का स्वरूप :-

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक संस्कृति है। भारतवर्ष में आध्यात्मिकता के अन्तर्गत जीव, ईश्वर, जगत और माया के स्वरूप का ज्ञान और परमात्मा की प्राप्ति को मानव जीवन का परम पुरूषार्थ माना गया है। मानव जीवन के लक्ष्य अर्थात् पुरूषार्थ चार माने गये हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

धर्म का भारतीय जनजीवन में सर्वोपरि महत्व है। जन्म से लेकर मृत्यु तक और घर से लेकर समाज तक सर्वत्र धर्म का शासन रहा है। भारतवर्ष में सम्पूर्ण मानव जीवन को क्रमशः चार वर्णो एवं चार आश्रमों में विभक्त कर पृथक-पृथक वर्ण, धर्म तथा आश्रम धर्म का विधान किया गया है। धर्म से आस्तिक्य भाव जागरित होता है। ईश्वर का चिन्तन करते हुए सांसारिक क्लेशों से विमुक्त मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयास करना मानव जीवन का लक्ष्य है। अस्तु ज्ञान के क्षेत्र में अद्वैतवाद और साधना के क्षेत्र में उपासना तथा मूर्तिपूजा को प्रश्रय मिला है।

हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति जन्मतः सुखोपयोग करता है और कोई जन्म से ही जीवन यापन करता है। इस सुख-दुःख के मूल में हमारे पूर्वजन्म के कर्मो (प्रारब्ध) का हाँथ होता है। अतएव हमारे यहाँ पूर्वजन्म परलोक और कर्मवाद पर दृढ़ आस्था पायी जाती है। भारतीय संस्कृति में अधिकार से अधिक कर्तव्य पर जोर दिया गया है।(1)

भारतीय संस्कृति का विकास प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में हुआ है। गुरूकुलों के संचालक और आश्रमों के प्रतिष्ठापक ऋषियों नें भारतीय संस्कृति को दिव्य रूप प्रदान किया है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में ग्राम्य और अरण्य जीवन को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का सम्बन्ध ा आश्रमों एवं अरण्यों से ही रहा है। भारत में लौकिक अभ्युदय की उपेक्षा नहीं हुई, तथापि वरीयता निःश्रेयस अर्थात् पारलौकिक कल्याण को ही प्राप्त हुई है। यही कारण है कि आध्यात्मिकता को भारतीय संस्कृति का केन्द्र कहा गया है।(2)

---

(1) आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत, डॉ0 केशरी नारायण शुक्ल, पृ0 117

(2) भारत की संस्कृति और कला, डॉ0 राधाकमल मुखर्जी, पृ023

भारतीय संस्कृति के तत्व :-

भारतीय संस्कृति के स्वरूप पर विचार करने वाले विद्वानों ने भारतीय संस्कृति के भिन्न-भिन्न तत्वों का उल्लेख किया है। कुछ प्रमुख विद्वानों ने इस प्रकार अपने मतों का उल्लेख किया है -

बाबू गुलाबराय ने भारतीय संस्कृति के निम्नलिखित तत्व स्वीकार किये हैं(1)-

1. आध्यात्मिकता 2. परलोक और आवागमन में विश्वास

3. समन्वय वृद्धि 4. वर्णाश्रम-विभाग

5. बाह्य और आन्तरिक शुद्धि 6. अंहिसा, करूणा, मैत्री और विनय

7. प्रकृति प्रेम 8. उत्सव प्रियता

डॉ0 राम जी उपाध्याय के अनुसार संस्कृति के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं (2) :-

1. सार्वजनीनता 2. सर्वाङ्गीणता 3. देवपरायणता 4. धर्मपरता

5. आश्रम व्यवस्था 6. आध्यात्मिकता 7. कर्मफल और जन्मान्तरवाद

8. सर्वे सुखिनः सन्तु 9. निःसीमता 10. सनातनता

11. ऋषि एवं ग्राम की प्रधानता

12. उपरिस्थायिता।

डॉ0 मुंशी राम शर्मा ने 'वैदिक संस्कृति और सभ्यता' नामक ग्रन्थ में निम्नलिखित तत्त्वों के आधार पर वैदिक संस्कृति का समालोचन किया है। (3)

1. संस्कृति और संस्कार

2. योग और संस्कृति

3. संस्कृति और चातुर्वण्य

4. संस्कृति और काँडत्रय

5. संस्कृति और विकास पद्धति

---

(1) भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, गुलाबराय, पृ0 6-12

(2) भारतीय संस्कृति का उत्थान, डॉ0 राम जी उपाध्याय, पृ0 11-13

(3) वैदिक संस्कृति और सभ्यता - डॉ0 मुंशीराम शर्मा पृ0 46-235

डॉ0 मंगलदेव शास्त्री ने भारतीय संस्कृति का विकास नामक ग्रन्थ में निम्नलिखित तत्वों के आधार पर वैदिक संस्कृति का विवेचन किया है।(1)

1. समष्ट्रि भावना
2. चातुर्वण्य व्यवस्था
3. चातुराश्रम
4. राजनीतिक आदर्श
5. वैयक्तिक जीवन
6. संस्कार 7. धर्म

डॉ0 मदन लाल गोपाल गुप्त के मत से भारतीय संस्कृति की विशेषतायें निम्नलिखित हैं-(2)

1. अमृत्व 2. आध्यात्मिकता 3. लक्षणमुक्त जीवन 4. शाश्वत जीवन चतुस्सूत्रीय जीवन क्रम 5. सार्वभौम सिद्धान्तों पर आधारित समाज व्यवस्था 6. कर्म तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त 7. समस्त जड़ चेतन प्रकृति के प्रति एकात्मकता की भावना 8. लोकमंगल अथवा लोककल्याण की भावना

डॉ0 वल्देव प्रसाद मिश्र ने भारतीय संस्कृति नामधेय ग्रन्थ में भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसके निम्नलिखत तथ्यों का निर्वचन किया है (3):-
1. धर्म 2.वर्णव्यवस्था 3. धर्मार्धिका मोक्ष 4. त्रिमार्ग कर्म, ज्ञान, भक्ति (अवतारवाद)
डॉ0 महेन्द्र कुमार वर्मा ने भारतीय संस्कृति के 19 मौलिक तत्वों का उल्लेख किया हैः-
1. आध्यात्मिकता 2. धार्मिकता 3.. त्याग एवं तपस्या 4. अनेकता में एकता(4) 5. कर्म पुनर्जन्म और भाग्य पर विश्वास 6. समन्वय वादिता 7. उदारता 8. विश्व बधुन्त्व 9. गतिशीलता एवं अवसरानुकूलता 10. सन्तोष एवं शान्ति 11. अंहिसा 12. सहिष्णुता 13. संयम 14. गुरूजनों की सेवा एवं अभिवादन 15. नारी पूजा 16. वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था 17. ज्ञान का महत्व 18. अवतारवाद 19. गोपूजा
डॉ0 विश्वम्भर दयाल अव्स्थी ने अपनी पुस्तक वैदिक संस्कृतिऔर दर्शन में निम्न तत्वों का उल्लेख किया है :-

---

(1) भारतीय संस्कृति का विकास प्रथम खण्ड पृ0 125

(2) मध्यकालीन हिन्दी काव्यों में भारतीय संस्कृति पृ0 53-72

(3) भारतीय संस्कृति पृ 0111-129

(4) भारतीय संस्कृति मूलाधार पृ0 8-16

1. संस्कार | 2. अवतारवाद | 3. आचार औरधर्म
4. वर्णाश्रम व्यवस्था | 5. पुनर्जन्म और परलोक 3
6.साधना मार्ग | 7. आध्यात्मिकता

उपर्युक्त परिभाषाओं एवं संस्कृति सम्बन्धी तत्वों को निदर्शन के पूर्व यहां यह आवश्यक है कि महाभारती में चित्रित प्रतिसंसार के स्वरूप का निदर्शन यत्किंचित रूप में कर लिया जाय। तत्पश्चात् संस्कृति के मुख्य तत्वों का सोदाहरण विवेचन किया जायेगा।

रामावतार पोद्दार का महाभारती काव्य संस्कृति के विकास साधना और सरस्वती के साक्षात्कार का काव्य है। लेखक ने लिखा है कि कल्पनाभिलाषी काव्यादर्श को भारत के भौगोलिक परिवेश में ही नहीं सीलोदात्त सांस्कृतिक जागरण के चेतना चित्र भी शब्द ज्वारीय प्रेरणा प्रदान करते रहे। प्रागैतिहासिक स्वप्न सत्य से अनुप्राणित इस कलाकृति के प्रायः सभी अलौकिक और लौकिक पात्र भारतीय जनमानस से पूर्व परिचित हैं। किन्तु इनके चरित्र चित्रण में समयानुसार मनोरम और क्रान्तिकारी परिवर्तन किये गये। युक्ति-जीवित काव्य संशोधन के उपरान्त भी कल्पना-जगत की भारतीयता नष्ट नहीं हुई है सत्य और सौन्दर्य के कलात्मक शब्द समर में शिवत्व की मर्यादा अक्षुण्य रहे इसकी ओर श्लील दृष्टि सदा सचेष्ट रही। इस काव्य का मूल उद्देश्य वैदिक विश्व वांङमय का रसमय उद्घाटन करना ही अभीष्ट था। परन्तु प्राचीन सभ्यता और संस्कृति-विशिष्टता की साहित्यिक उपेक्षा भी नहीं की गयी। आदिकाल से ही प्रकृति-समृद्ध भारत का रागात्मक सम्बन्ध जन-जीवन से जुड़ने लगा। कथा-श्रृंखला के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध में कहीं-कहीं पौराणिक शैली का भी अनुसरण करना पड़ा और कहीं-कहीं शास्त्रकारों के समान उपयुक्त स्थान पर औपनिषदिक तत्व के भी सारग्राही मधु संकलन करने का मौलिक प्रयास किया गया।(2)

महाभारती में इस प्रकार ग्रन्थकार ने अपने इस महाकाव्य में जिस भौगोलिक एवं सामयिक सभ्यता के विकास की गाथा का पुनरीक्षण किया है उसमें हमें तीन प्रकार की

---

(1) वैदिक संस्कृति और दर्शन - डॉ0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी पृ0 76

(2) महाभारती, पृ0 सं0 10

संस्कृति दिखाई पडती है देव संस्कृति, वैदिक संस्कृति, आसुरीय संस्कृति और इन्हीं से विकसित होती आधुनिक मानव संस्कृति।

कवि ने बड़ी कुशलता से मानव सृष्टि के पूर्व स्वर्ग में इन्द्र एवं देवों की संस्कृति के स्वरूप की व्याख्या संक्षिप्त रूप में की है। देव संस्कृति के अन्तर्गत देवों का अक्षय यौवन, सुरपति इन्द्र का उद्दाम विलास, अप्सराओं का उन्मुक्त नर्तन, सुर, सुरा, सुन्दरी पर आधारित इस संस्कृति का स्वरूप द्रटव्य है इस संस्कृति का प्रतिनिधि नायक ऋषियों की तपस्या से भयभीत अपने पद की रक्षा के षड़यंत्र में लिप्त रहता है।

सुर-स्वत्व-सुरक्षा प्रथम कर्म
यह देवलोक का भी स्वधर्म -
समयानुसार
क्या नर-अन्तर्गत देव-दनुज?
अमराधिकार के योग्य मनुज?
भ्रामक विचार (1)

विश्वामित्र की तपस्या को खण्डित करने के लिए रम्भा प्रयोग का स्थान द्रष्टव्य है।

अनिवार्य प्रथम रम्भा-प्रयोग
कर सकता ऋषि-तप मलिन भोग,
यह निर्विवाद
हे सहस्त्राक्ष! कामास्त्र प्रखर
चंचल-चंचल अप्सरा-लहर
प्रिय रूप-स्वाद!
है शक्ति-सफल सौन्दर्य सुरा
तप-स्खलनः आनन्द-उरा
इन्द्रास्त्र प्रवल
फेकूँगा मैं ही रूप-जाल
फँस जाएगा तपसी मराल, -
लख स्वर्गिक फल (2)

---

(1) महाभारती, पृ० सं० 227

(2) महाभारती, पृ० सं० 229-230

इस प्रकार कवि ने एक ओर देवताओं की स्वार्थ लिप्सा उनके क्रिया कलाप और स्वत्व पूजन की चर्चा कर इस संस्कृति का यत्किंचित निदर्शन किया है।

आसुरी संस्कृति - आज के पुरातत्व वेत्ता एवं इतिहासकार धीरे-धीरे इस मत के समर्थक होते जा रहे हैं कि ईराक से लेकर बैब्रोलोनिया एवं मेसोपोटामियाँ की मूल संस्कृति आसुरी संस्कृति रही है ये असुर किसी न किसी देवता की कठोर तपस्या कर तद्जन्य शक्ति सामर्थ्य एवं भोग-विलास की वस्तुएं संग्रहीत कर देवों से युद्धकर अपनी संस्कृति का विकास करते थे। असुरों का आक्रमण, पराजितों का नर संहार और सत्व प्रदर्शन इस संस्कृति के प्रमुख तत्व रहे हैं। जिसका प्रतिनिधि महाभारती काव्य में शम्वर असुर था पर स्त्री अपहरण की मूल भित्ति पर इनकी सभ्यता टिकी हुई थी साम, दाम, दण्ड, भेद, येन, केन, प्रकारेण इनके सांस्कृतिक तत्व थे।

शम्वर के राज्य-राग में भी संतुलन नहीं
कल-बल छल में कृत निर्मल अन्तःकरण नहीं।
सभ्रान्त आर्य-असि-पथ में भी कतिपय अभाव
मानव होकर भी मानव से दर्पित दुराव। (1)

वैदिक संस्कृति - कवि ने अगस्त्य, लोपामुद्रा के प्रसंग में वैदिक संस्कृति के अनेक सूत्रों का उद्घाटन किया है। इस युग में चातुर्य वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था पूर्ण रूपेण स्थापित हो चुकी थी। इस संस्कृति को यज्ञमयी संस्कृति कहा गया है। वानप्रस्थ आश्रम में दीक्षित ऋषि कुटी बनाकर रहते थे वैदिक मंत्रों से यजन, सोमपान इस संस्कृति की अनिवार्य विशेषताएं थी। ऋषि कहता है-

मैं न शुष्क ऋषि, सामवेद का भी विधिवत् ज्ञाता हूँ।
इन्द्र-काव्य की मनः शक्ति का भा-रत स्मृति दाता हूँ।
सुनता हूँ संगीत विश्व मानव के अन्र्तर का
सोमपान करता हूँ प्रतिपल शब्द-यज्ञ के स्वर का! (2)

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 156-157

(2) महाभारती, पृ0 सं0 550

उस तपोभूमि के ऋषि ऋचीक सहृदय कुलपति

अर्पित उस प्रातः गुरु को नित प्रणाभ प्रणति

मेरी सहोदरा सत्यवती उनकी भार्या

कितनी श्वेता वह स्नेहमयी भद्रा आर्या। (1)

वशिष्ठ विश्वामित्र अगस्त्य इत्यादि ने इन आश्रमों की स्थापना की जिसमें अतिथि सत्कार, कष्ट सहिष्णुता, अहिंसा, प्रकृति प्रेम, धैर्य इत्यादि सांस्कृतिक गुण विकसित होते रहे हैं।

ऋषि सेवा में पीछे न किसी से रहा कभी

अभ्यागत के दुःख को न आज तक सहा कभी

वासी प्रसूनमाला-सा अर्न्तमन न क्लान्त

असमय संकट में भी न हिमानी धैर्य भ्रान्त

कर्त्तव्य-आचरित आश्रमवासी आत्मतुष्ट

सीमित सात्विक आहार-उत्पलित देह पुष्ट। (2)

इन गुरुकुलों में तरूण विद्यार्थी रहकर वेदाध्ययन वाद-विवाद करके ज्ञान प्राप्त करते थे।

आदिम संस्कति :- कवि रामावतार पोद्दार ने आदिम सभ्यता और तद्जन्य उसकी संस्कृति के कुछ सूत्रों का उल्लेख किया है देवजाति के अतिशय विलासिता के कारण प्रलय हुई और उससे मानव की आदिम सभ्यता का विकास हुआ। लेखक ने लिखा है

मनुज मन से भू-देव-विकास

मनुज-मन से भू-देव-विनाश

एक आती-सी आकुल ज्योति

एक जाता-सा जीर्ण प्रकाश ! (3)

लेखक ने इस आदिम सभ्यता के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कहा है कि जिजीविषा और स्वत्व रक्षा में तत्पर मनुष्य ने अनेक तत्वों का दर्शन किया है

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 135

(2) महाभारती, पृ0 सं0 139

(3) महाभारती, पृ0 सं0 119

तिमिर-नर पशुवत् था उदण्ड

नग्नता पर न पड़ी थी दृष्टि

मांस-मादक आखेट-स्वभाव

ज्ञात थी नहीं गुहा की सृष्टि।

प्राप्त कालान्तर में क्षण-बुद्धि,

हस्त में अनगढ़ प्रस्तर-शस्त्र

ताम्र-तन सघन रोम-आवर्त,

व्याघ्र-हित दुखित ऋक्ष-सा वस्त्र।(1)

इस प्रकार मानव ने पशु-पक्षियों एवं प्रकृति के क्रिया-कलापों से अनेंक सांस्कृतिक तत्वों की सृष्टि की है।

हुआ ज्यों-ज्यों उर-बुद्धि-विकास,

महत्त्व विमण्डित मानव देह। 1

शीत-सुख हित जब चर्म प्रयोग,

वन-मनुज बना स्वयं पशुपाल। 2

कुटी-रचना में लोचन लीन,

ग्रीव में प्रिय-प्रवाल के हार! 3

देखकर वन कपोत दाम्पत्य

परिष्कृत किंचित् प्रणय-विचार।4

मिली ज्यों-ज्यों स्वाभाविक सिद्धि,

छिप गये पशुवत विविध विकार!5

जहाँ पर जितनी जीवन-ज्योति,

वहाँ पर उतनी उर की शुद्धि! 6 (2)

वैज्ञानिक संस्कृति - सम्पूर्ण मानव ने अपनी बुद्धि चातुर्य से जिस सभ्यता का विकास किया उसे आज हम वैज्ञानिक सभ्यता या आधुनिक सभ्यता कहते हैं। पूरी सभ्यता में सामान्य मानवीय भावना, सर्व जन हिताय चिन्तन करूणा, इत्यादि विकास स्वाभाविक

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 120

(2) महाभारती, पृ0 सं0 122-24

नीति से हुआ है। अगस्त्य के दक्षिण प्रवास के सम्बन्ध में एवं दुष्यन्त पुत्र भरत के स्वप्न के माध्यम से आधुनिक सभ्यता में निहित कुछ सांस्कृतिक तत्वों का और जीवन मूल्यों का उल्लेख हुआ है।

अब चाह रहा कि बनूं दक्षिण-अधिवासी
कोई न कहे कि अगस्त्य अधीर प्रवासी
कंटकित स्वजन-संघर्ष न मन को भाता
अपनो से ही टकराना मुझे न आता ! 1
मानवता का मधु विविध सुरभि से संभव
जितने पंछी, उतने ही नव-नव कलरव
शोणित न नियन्त्रित होता तट-बन्धन से
जीवन को मिलना ही होगा जीवन से ! 2
उज्ज्वल भविष्य रोहिणि! मानवता का
लहराएगी पृथ्वी पर प्रेम पताका
पति से मेरा आशय कह देना जाकर-
अब गिरि ही नहीं, पुकार रहा रत्नाकर ! 3
स्वातन्त्र्य सिद्धि के लिए समर होगा ही
एकात्म-चेतना-मन्त्र अमर होगा ही
संशोधन से संस्कृत वैचारिक धारा
चिन्तन-प्रवाह का साक्षी प्राक् किनारा ! 4 (1)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने विभिन्न सभ्यताओं का विकास क्रम प्रस्तुत कर आधुनिक मानव की श्रेष्ठ सभ्यता का निदर्शन कराया है।

देव, असुर, मानव, सभ्यताओं के विकास से कवि ने जिन सांस्कृतिक मूल्यों का निदर्शन किया है। उसमें आध्यात्मिकता स्वर्ग-नर्क पर विश्वास, समन्वयवाद, वर्णाश्रम व्यवस्था, आन्तरिक एवं वाह्य, अहिंसा, करूणा पर दुःख कातरता, व्याम विनय, सारल्य, धर्म आचार एवं साधना तथा जीवन के कुछ प्रमुख संस्कारों का वर्णन मिलता है इन तत्वों

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 174-177

के मध्य सामान्य सुख-दुख, हास-उल्लास, मानवोचित्त प्रेम, आन्तरिक चिन्तन, विज्ञान साधना का उल्लेख हुआ है। यहां इन्हीं तत्वों का निदर्शन किया जा रहा है। इसीलिए शोध ाकर्ता ने अत्यन्त संक्षिप्त रूप में कवि द्वारा निदर्शित कुछ सभ्यताओं का वर्णन कर इन्हीं तत्वों का उल्लेख किया है।

महाभारती में लौकिक तत्त्व

वर्ण आश्रम एवं जाति व्यवस्था :-

इतिहास एवं समाज विज्ञानी कहते हैं कि आरम्भ में गुण और स्वभाव के आधार पर चातुर्य वर्ण व्यवस्था बनी और इसमें परिवर्तन समय-समय पर होता रहा है। कवि पोद्दार ने वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत इस प्रश्न को उठाया है वशिष्ठ और विश्वामित्र के संघर्ष में ब्राह्य तेज को श्रेष्ठ बताकर विश्वामित्र की संघर्ष गाथा मानिसक द्वन्द्व का निरूपण और उन्हें ब्राह्मणत्व की प्राप्ति इस वर्ण व्यवस्था पर प्रकाश डालती है।

क्षत्रिय शोणित बल सौर्य सिद्ध हित बना मंत्र
बलिदान यज्ञ से रक्षित आंशिक प्रजातंत्र ! (1)

कवि इस व्यवस्था पर प्रश्न करता है -

वर्णमय जीवन-विभाजन न्याय क्या?
मनुजता-हित यही एक उपाय क्या?
जन से प्रतिबन्ध दैहिक चर्म का?
यही क्या उद्देश्य मानव-धर्म का। (2)

कवि ने प्रारम्भिक आश्रम ब्रह्मचर्य की व्याख्या करता हुआ कहता है कि आश्रम में रहकर छात्र शिक्षा के साथ ही साथ यज्ञ की क्रिया विधान का भी ज्ञाता हो जाता था -

मैं बाल्यकाल से उस आश्रम का आकर्षण
विद्या-विवेक से सुर्योदित नित सागर-मन
वन-हवन-पवन से श्वासों में सात्विक सुगन्ध
विधिवत् समिधा-सम्भार उठाकर सबल स्कन्ध।।

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 270

(2) महाभारती, पृ0 सं0 287

(3) महाभारती, पृ0 सं0 135

माता-पिता पुत्र से मिलने आश्रम आते थे इस अवस्था में छात्र अनुशासित जीवन व्यतीत करता था। विश्वामित्र ने अपनी इस शिक्षा-दीक्षा का उल्लेख करते हुए कहा है –

सीखी गुरुकुल में प्राणायाम-कठिन मुद्रा
कानन में कभी नहीं उभरी इच्छा छुद्रा
अनिवार्य योग-अभ्यास अर्थ वर्ण-आश्रम में
भटका न कभी भी यौवन-मन अति तम-भ्रम में। (1)

गुरुकुल में सभी शिष्यों से समान व्यवहार आचरण करते थे। उच्चावच्च का कोई भेद भाव नहीं था। शिष्य ऋषि सेवा के साथ ही अभ्यागतों की सेवा करने में सदैव तत्पर रहे हैं।

हूँ राजपुत्र, –इस प्रमद प्रश्न पर नहीं ध्यान
सहपाठी-साथी सचमुच भ्रातानुज-समान
पर्णासन पर ही पंक्तिबद्ध श्रुति-शास्त्र-पाठ
वसनों में कहीं नहीं किंचित् राजसी ठाठ।
कर्त्तव्य-आचरित आश्रमवासी आत्म-तुष्ट
सीमित सात्त्विक आहार-उत्पलित देह पुष्ट। (2)

गृहस्थ आश्रम की झलक अगस्त्य लोपामुद्रा, वशिष्ठ, अरून्धती के प्रसंग में यत्र-तत्र चर्चा हुई है। विश्वामित्र बशिष्ठ के पास जब पहुँचते हैं तो वशिष्ठ सद्गृहस्थ की भाँति उनका स्वागत और सम्मान करते है।

गैरिक गृहस्थ सा रस शीतल आचार सकल
देखा वशिष्ठ को मैंने प्रिय व्यवहार कुशल
राजोचित आसन दान कन्द फल जल अर्पण
शिष्टता नमित ऋषि शिष्यों का सम्भाषण। (3)

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 138

(2) महाभारती, पृ0 सं0 139

(2) महाभारती, पृ0 सं0 204

इसी तरह वानप्रस्थ आश्रम के लिए कण्व, विश्वामित्र, वशिष्ठ, अगस्त्य आदि के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है।

गन्धर्व विवाह :- युवक युवती परस्पर सहमति से जो प्रेम विवाह करते हैं उसे गान्धर्व विवाह कहा जाता है। दुष्यन्त शकुन्तला का विवाह, उर्वशी पुरूरवा का विवाह इसी कोटि के हैं। कवि ने लिखा है -

प्रत्येक विहग ने किया आज
दिन भर सुहाग का सुखद गान
गन्धर्व-रीति से छितराया
सन्ध्या ने अपना निशि-बितान
मन से मन का सम्मिलन-पर्व
नयनों में नयनों का विलास
बाँहों में बाँहों की उमंग
उभरी-उभरी-सी आत्म प्यास
कलिका न आज मैं अनाघ्रात,
मन में गुन-गुन-गुन-गुन गुंजन
शिर पर सुहाग-कुंकुम प्रसाद
ऋषि-स्वीकृति-शून्य प्रणय-बन्धन! (1)

इसी प्रकार बन्दीगृह में विश्वामित्र और शम्बरी का विवाह गन्धर्व विवाह के अर्न्तगत आयेगा -

शम्बर कन्या से जिस दिन प्रिय परिणय-बन्धन
आलिंगित अपराजिता-लता से तरु चन्दन
नूतन यज्ञानिल से ज्योतित आर्यत्व-प्राण
उद्भासित मेघों में अटका हेमिल बिहान (2)

कण्व ऋषि के आश्रम में आये हुए दुष्यन्त का स्वागत सत्कार शकुन्तला ने किया और यह अतिथि सत्कार गन्धर्व विवाह में परिवर्तित हो गया। शकुन्तला की उँगली में

---

(1) महाभारती,

(2) महाभारती

मुद्रिका पहनाकर दुष्यन्त ने इस विवाह की पुष्टि की है। सान्ध्य कालिक आकाश की लालिमा के समान दुष्यन्त ने शकुन्तला को सौभाग्य का दान किया।

गन्धर्व रीति से छितराया सन्ध्या ने अपना निशि बितान
शिर पर सुहाग-कुंकुम प्रसाद
ऋषि-स्वीकृति-शून्य प्रणय-बन्धन!
मेरी अनामिका में वे स्मृति-
मुद्रिका पिन्हा कर चले गए -
प्रिय पुनर्मिलन आश्वासन के
दो शब्द सुना कर चले गए! (1)

वानप्रस्थ आश्रम :- मनुस्मृति में लिखा है कि विधि पूर्वक स्नातक गृहस्थ आश्रम के सुख भोग के उपरान्त वन का आश्रय लेता है। इस आश्रम में रहकर वेदाध्ययन, योगाभ्यास, सत्संग और प्रभु साक्षात्कार करता हुआ व्यक्ति अपना जीवन-यापन करता है।।

महाभारतीकार ने वशिष्ठ, विश्वामित्र, दुष्यन्त, पुरूरवा इत्यादि ऋषि एवं राजाओं के आरण्यक निवास के समय वानप्रस्थ आश्रम का वर्णन किया है। इस आश्रम में ही रहकर वशिष्ठ ने कामधेनु जैसी दुर्लभशक्ति प्राप्त कर आश्रमीय पद्धति का संचालन करते थे। तो दूसरी तरफ प्रतिहिंसा से आप्लावित विश्वामित्र ने जंगल में जाकर कठोर तपस्या की थी। इसी प्रकार पुरूरवा ने आयु को और दुष्यन्त ने भरत को राजगद्दी सौंपकर आगामी जीवन को सार्थक बनाने के लिए जंगल चले गये थे।

वशिष्ठ आश्रम में विंश्वामित्र के आगमन पर कवि ने वसिष्ठ के शान्त प्रभाव पर्थ तेजोप्दीप्ति, आभामण्डल का वर्णन किया है। वह वानप्रस्थ आश्रम की ही देन थी।

समुचित अवसर पर देखी उनकी रूप-धूप
ऋषि-तेज-समक्ष मलिन कितना मद-महिम भूप!
यमुना में गगा-धार-सदृश सत्कार सजल
स्नेहिल सौरभ से प्रात-प्रसन्न मुखोत्पदल!

---

(1) महाभारती

ज्योति वशिष्ठ को किया सविधि मैंने प्रणाम

निष्काम देह हो गई कदाचित् द्रुत सकाम!(1)

सन्यास आश्रम :- सन्यास आश्रम जीवन का चतुर्थ और अन्तिम आश्रम है। मुनस्मृतिकार ने लिखा है कि मनुष्य को प्रजापति की प्राप्ति के लिए यज्ञोपवीत, पंचग्नियों को प्राण अयोग आदि में आरोपण कर सन्यासी हो जाना चाहिए।

डॉ0 मुंशीराम शर्मा ने क्रम सन्साय, ब्रह्मचर्य से सन्यास और वैराग्य जनित सन्यास का उल्लेख किया है।

सन्यासी को सांगदोष हर्षा आदि द्वन्दों से विमुक्त होकर ब्रह्म में ही अवस्थित होना चाहिए। ऐसा विधान मनुस्मृति (6/81) में किया गया है।

महाभारती में दो प्रकार के सन्यास आश्रम की व्याख्या की गयी है। ऋषि युत ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर तदनुरूप परिवेष से वेस्तित जीवन यापन करता था। जिसका उदाहरण अगस्त्य है -

गैरिक संयम से अनुशासिक युवा-काल

ज्यों राग-नियंत्रित स्वर-संलग्न मृदंग-ताल

चितवन-दर्पण में अनुरंजित नित प्रभा-चित्र

उन्नीत दृष्टि-संकल्प बना था प्रकृति-मित्र।(2)

दूसरे प्रकार वह सन्यास है जिसमें आसक्तियों के प्रति तीव्र विराग उत्पन्न होता है कवि ने लिखा है -

आशक्ति त्याग देती जब इन्द्र आशा

गैरिक बन जाती तब रक्ता अभिलाषा

अनन्द-पद्य पर सुरभित होती वाणी

गुंजरित चेतना भी बनती ब्रह्माणी!(3)

सन्यास आश्रम की कुछ विशेषताओं का उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है :-

---

(1) महाभारती

(2) महाभारती

(3) महाभारती

प्रहरी पर्वत-संरक्षित तपस्थली कानन
कूजित पक्षी से पर्ण-मुखर तरु-गृह-प्रांगण
हिलती हरियाली पर रवि-रथ की उजियाली
दिन की लाली के नीचे वन की अँधियाली!
सौगान्धिक यज्ञानिल का सत्व प्रवाह मन्द
छू रहा प्रकृति कण-कण को हवन-प्रसंग-छन्द
चेतना-विपिन में जड़ता को भी ज्योति प्राप्त
साधना सिद्धि-सम्पन्न चतुर्दिक शान्ति व्याप्त
शुचिता की शीतलता ही वन प्रान्तर-प्रसाद
गैरिक गरिमा-अभिव्यंजित-वातावरण स्वाद

आचार और धर्म :- आचार और धर्म के मूल में हमारा नीति बोध है जिसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि नीति शास्त्र दर्शन का वह पक्ष है जिसमें मानवीय व्यवहार का मूल्यात्मक विवेचन किया जाता है। इस विवेचन में औचित्य अनौचित्य, शुभ अशुभ का विचार विशेष रूप से होता है और यथासम्भव नैतिक व्यवहार को नियमवद्ध करने का प्रयास भी किया जाता है। नीति शास्त्र का मुकात कभी तत्व मीमांसा की ओर तो कभी धर्म दर्शन की ओर रहता है।(1)

भारतीय सामाजिक जीवन में आचार शास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्तिगत आचार नियमों के साथ सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सरोकारों से सम्बन्धित नियमों का विस्तृत उल्लेख इन शास्त्रों में मिलता है। आन्तरिक और बाह्य शुद्धि साक्षात्कार त्याग, तपस्या इत्यादि इसी आचार शास्त्र के निदर्शन है।

महाभारती वैदिक संस्कृति एवं पौराणिक काल की घटनाओं की व्याख्या करती है। वैदिक काल में यज्ञ अतिथि सत्कार, सात्विक जीवन आन्तरिक ब्रह्म शुद्धता पर विशेष बल दिया जाता था। ऋषियों के सात्विक जीवन और ज्ञानार्जन के सन्दर्भ में कवि कहता है-

---

(1) मानविकी पारिभाषिक कोष दर्शन - सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र, पृ080

ऋषि कर्म न सीमित मात्र ज्ञान अर्जन में
होता जीवन चरितार्थ सफल सर्जन में
अग्रिम आभा रस करूणा ही छलकाती
बुझ बुझ कर भी जलती ममता की बाती। (1)

इसी प्रकार शकुन्तला प्रसंग में राजा द्वारा आश्रम में प्रवेश के आचार का पालन करते हुए दुष्यन्त को दिखाया गया है।

सारथी, राजसी अहम् त्याग
विधिवत् गुरूकुल तक जाना है
तामसी तत्त्व-तारल्य कभी
दृग से न वहाँ बिखराना है
सिंहासन श्रेष्ठ न ऋषि पद से
ऊँची मुनि-महिमा नृप-मद से
पावन, --अति पावन हृदय-कलश
इच्छाओं के उच्छल नद से!
मन्त्राभिषिक्ति भू-सीमा से -
रोकना इधर ही भृगु-रथ को
जाऊँगा नंगे पाँव वहाँ
अवलोकित कर आश्रम-पथ को (2)

कवि ने निर्भीकता, कर्म परायण, दया, मैत्री सत्व गुणों का उल्लेख किया है। आचार्य शास्त्रों में विहित विधानों अर्न्तगत किया है। धर्म का व्युत्पत्ति परक अर्थ धारण करना, या पालन करना। विभिन्न परिस्थितियों में धर्म के अनेंक रूप कहे गये हैं। मुख्य रूप से सामान्य धर्म असाधारण धर्म विशेष धर्म और अपाद धर्म के चर्चा की जाती है। मनुस्मृति में धर्म के सामान्य लक्षण इस प्रकार वताये गये हैं-

धृतिः दामा दमोऽस्तये शोचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशकं धर्म लक्षणं।मनुस्मृति 6/92 1

(1) महाभारती, पृ0 सं0 192

(2) महाभारती, पृ0 सं0 252-53

लेखक ने सामान्य धर्म में कहे गये सभी लक्षणों के उदाहरण इस काव्य में प्रतिपादित किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

प्राथमिक शत्रुता-शुद्धि : बुद्धि का स्नेह-कार्य
अर्पित अनार्य मैत्री सदैव ही शिरोधार्य
चेतना चाहती महामुक्ति की विश्व-विजय
अनिवार्य मनुजता-हित विवेक का विष्णु-प्रलय
सिद्धावस्था का धैर्य-संतुलन : शान्ति सिद्धि
प्रतिशोध शमन से मिलती सारस्वत समृद्धि
सरिताओं से सागर ज्यों अति गम्भीर-धीर,
सह लेते महापुरूष चुप रह कर असह पीर! (1)

सेवा, करूणा, कर्तव्य, परायणता के गुणगान कवि ने अनेंक स्थानों पर किया है।

मानव सेवा करूणा के बिना असंभव
करूणा ही मानव का साश्वत कलरव
कर्तव्य भूमि से श्रेष्ठ न स्वर्ग-निकेतन
इसलिए महत्तम केवल मानव-जीवन (2)

कवि ने अहिंसा करूणा विनय शारल्य पर बहुत जोर दिया है। जिसकी व्याख्या हम आगे करेंगे। यहाँ आसाधारण या आपद धर्म के उदाहरण देना प्रासंगिक होगा। कवि ने विशेष या आपद धर्म के रूप में युद्ध की अनिवार्यता पर बल दिया है। देश की रक्षा हित युद्ध की आवश्यकता पर बल देते हुए –

आत्म-रक्षा-हित बल अनिवार्य
शौर्य के लिए रूधिर की शुद्धि
स्तत्व का जिसे न पैतृक ज्ञान,
मलिन हो जाती उसकी बुद्धि ! (3)

---

(1) महाभारती, पृ० सं० 199

(2) महाभारती, पृ० सं० 189

(3) महाभारती, पृ० सं० 100

इसी प्रकार वशिष्ठ विश्वामित्र युद्ध के स्वमत्व वशिष्ठ द्वारा प्रतिकार को आपद् ध
ार्म की संज्ञा दी गयी है -

युद्ध को भी समझो तुम यज्ञ,
करो रक्ताग्नि ज्वलित तत्काल
शौर्य-समिधा के बल पर वीर,
न झुकने दो नगपति का भाल ! (1)

अहिंसा :- यद्यपि महाभारती में अनेंक युद्धों का वर्णन है फिर भी कवि ने अहिंसा का प्रतिपादन अनेंक स्थानों पर किया है। यह एक विचित्र विरोधाभास दिखाई पड़ता है। कि अहिंसा के स्थापना हेतु युद्ध की स्वीकृति दी गयी है। शस्त्र बल विश्व के लिए प्रायः अभिशाप वने हैं। महाभारतीकार कहता है -

शस्त्रबल का अतिशय प्राबल्य
वुद्धि में भर देता है ताप
असंभव नहीं कि अति समराग्नि
विश्व-हित बने कभी अभिशाप!(2)
शक्ति-संचालित शासन तंत्र,
ऐक्य-संवल प्रभुसत्ताधार
प्रजा-सुख-सिद्धि राज्यगत लक्ष्य,
धर्म उज्जवल भूपति-अधिकार(3)

इसीलिए सब विह्वल होकर कवि विचारक के भूमिका से कहता है -

अरे, वह युग कभी क्या आ सकेगा धरातल पर-
कुटुम्बी शासकों का जब अहिंसा-अस्त्र होगा? -
हृदयता-धीरता-दृढ़ता-अलंकृत सत्यता के -
नियंत्रित हस्त में संयमित समता-शास्त्र होगा? (4)

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 116

(2) महाभारती, पृ0 सं0 102

(3) महाभारती, पृ0 सं0 114

(4) महाभारती, पृ0 सं0 495

अहिंसा :- अहिंसा के मूल में पर दुख कातरता और करूणा रहती है। दुःखी, व्याकुल, संतप्त हृदय को करूणा नया जीवन देती है कवि कहता है :-

मानव सेवा करूणा के बिना असंभव

करुणा ही मानवता का शाश्वत कलरव

कर्त्तव्य-भूमि से श्रेष्ठ न स्वर्ग-निकेतन

इसलिए महत्तम केवल मानव-जीवन(1)

करुणा प्रेम से ही प्रार्दूभूत होती है यद्यपि हिंसा प्रतिशोध अधिकार प्राप्त करने में सहायक होता है। तथापि विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि दमन से कभी शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

दमन से ही न समादृत शान्ति

प्रेम से भी शासित जन-प्राण

मन्त्राणय नित हंसिल न्याय -

सुरक्षित रखता राज्य-विधान। (2)

त्याग :- कवि ने काव्य में त्याग जैसे उच्च मृदादर्श के रूप में स्थापित किया है। समूचा महाभारती काव्य वैयक्तिक एवं सामाजिक त्याग की घटनाओं से मुखरित है। विश्वामित्र, वशिष्ठ, अगस्त्य सभी ऋषियों ने इसी भावना से प्रेरित होकर अपने जीवन को उदाप्त वनाया है।

अमृतमय सदा आत्म-अनुभूति,

त्यागमय दिव्य प्रेम-पथ पूर्ण

वासनाओं की राग-तरंग

नीर-नर्तन-सी मोहक घूण 3)

कवि ने प्रतिपादित किया है त्याग पर आधारित कर्म निष्काम होते हैं और इससे ही जगत का कल्याण होता है।

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 189

(2) महाभारती, पृ0 सं0 114

(3) महाभारती, पृ0 सं0 372

त्याग कर अति ऊँचा आदर्श,

महत् उसका पावन परिणाम

स्वतः हो जाता जीवन दिव्य

काम यदि बन जाये निष्काम! (1)

समन्वय :- भारतीय संस्कृति की अनन्यतम् विशेषता है कि वह समन्वय पर आधारित है। अवदात भावना से प्रेरित होकर ऋषियों ने वर्ण, जाति, धर्म सभी में समन्वय के दर्शन हुए हैं, विश्वामित्र की कुबेर साधना, वसिष्ठ की सिद्धि अर्थ और धर्म के समन्वय के उदाहरण है। अगस्त्य चिन्तन करते हैं कि उनकी दृष्टि से उत्तर और दक्षिण भारत एक है। विन्ध्य को पार कर दोनों प्रदेशों के मानवों को मिलाना उनका चरम काम है।

विध्यांचल के उस पार प्यार रमेश अशेष

हिमगिर से सागर तक फैला है दिव्य देश।

मानव मिलाप से मधुर न कोई हृदय धर्म

सम-सत्य-संतुलन-हेतु अर्थ-उन्नमित कर्म। (2)

तो दूसरी तरफ विश्वामित्र का संकल्प आज भी प्रासंगिक है।

मिटाना है भेद आर्य-अनार्य का

जानते, क्या मूल्य है इस कार्य का? -

बनोगे मृत-विधि इतिहास के

मन्त्र होगे तुम भविष्यत्-श्वास के! (3)

इतना ही नहीं सबको समरस समान भोग दिलाने की कामना विश्वामित्र की उदात्त समन्वय भावना की प्रतीक है :-

कर्म का मुध मिले सबको स्नेहमय

प्राण-धारा करे समरस की विजय

शुलभ हो शुचि भोग का संयोग-सुख

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 375

(2) महाभारती, पृ0 सं0 149

(3) महाभारती, पृ0 सं0 267

दूर को क्रमशः असह दयनीय दुख

स्वर्ग-सुख अधिकार सबको प्राप्त हो,-

मनुजता इतनी कभी विधि-व्याप्त हो!(1)

और विश्वामित्र की यह उदात्त भावना उसके त्याग पर दुःख कातरता और समन्वय की त्रिवेणी से आत्यायित है।

मैं रहूँ न रहूँ, रहे मानव अभय

नित्य होती रहे समता की विजय

उर छलकता रहे सुर-उल्लास में

झनझनाता रहूँ मैं इतिहास में!(2)

कवि ने राजा के नीति सिद्धान्तों में समन्वय को महत्वपूर्ण स्थान दिया है वह कहता है -

सौम्य शासन वह न्याय-निमग्न,

जहाँ समता-हित उचित प्रबन्ध

नहीं जिसमें बसन्त की दृष्टि

तिमिरमय उसके लोचन अन्ध।

विश्व में एक मनुज परिवार

यही है विश्व-धर्म का ज्ञान

स्वत्व की जिसे नहीं पहिचान,

संकुचित मानव वह नादान!

देश बन्धन सुविधा-सम्पृक्त,

हृदय का राज्य किन्तु उन्मुक्त

सभ्यता की भी अपनी ज्योति,

सूक्ष्म संस्कृति एकात्मा-युक्त ! (3)

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 285

(2) महाभारती, पृ0 सं0 290

(3) महाभारती, पृ0 सं0 386

कवि आधुनिक मौलिक वादियों और अतिवादियों के कारण संसार में व्याप्त हिंसा अवसाद से विश्व संस्कृति की रक्षा के लिए समन्वय का आह्वान करता है -

कहूँ किस भाँति किससे मैं कि भारतवर्ष को अब--
समन्वित करो दैहिक और आत्मिक शक्ति-गति से
बचाओ विश्व को संतुलित जीवन-दृष्टि लेकर,
ग्रसित होने न दो गतिशीलता को कभी अति से। (1)

संस्कार :-

विश्व के सभी इतिहास एवं पुराविद् इस वात पर सहमत हैं कि भारतीय आर्य संस्कार प्रधान जीवन यापन करते थे। संस्कारों का अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक, और वौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठान हैं। (2)

भारतीय स्मृतिकार सोलह संस्कारों की चर्चा करते हैं। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्यन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्रासन, चूडाकर्म, कर्णभेद, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास और अन्त्येष्टि। इन संस्कारों में कुछ ही संस्कारों की चर्चा महाभारती में हुई है। महाभारती में जिस राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था का चित्रण है उसमें वानप्रस्थ आश्रम की विशिष्ट महत्ता है। इसलिए वालक के प्रारम्भिक संस्कारों का वर्णन इसमें नहीं मिलता है। वेदाध्ययन, विवाह, सन्यास, इन्हीं सस्कारों की विस्तृत चर्चा है।

वेदाध्ययन :- विश्वामित्र, वशिष्ठ, अगस्त्य इन्होंने अपने आश्रम बनाये हैं और अपने व्रह्मचर्य जीवन में गुरूकुल में रहकर वेदाध्ययन और अपने-अपने वर्ण के अनुसार शस्त्र एवं शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की है। कुलपति ऋचीक के आश्रम में विश्वामित्र में वेदाध्ययन के साथ-साथ प्राणायाम जनित यौगिक साधना सीखी थी।

सीखी गुरुकुल में प्राणायाम-कठिन मुद्रा
कानन में कभी नहीं उभरी इच्छा छुद्रा
अनिवार्य योग-अभ्यास अर्थ वर्ण-आश्रम में

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 533

(2) हिन्दू संस्कार, डॉ0 राजवली पाण्डेय

भटका न कभी भी यौवन-मन अति तम-भ्रम में।

पर्णासन पर ही पंक्तिबद्ध श्रुति शास्त्र पाठ

वसनों में कहीं नहीं किंचित राजसी ठाठ (1)

विवाह :- विवाह के साथ ही युवक गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते थे, मनुस्मृति में कहा गया है कि गुरू की अनुमति से सवर्ण कन्या से विवाह करके स्वगत गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। आयु का चतुर्थ भाग गुरूकुल में द्वितीय भाग विवाह कर पत्नी सहित गृहस्थ आश्रम में, तृतीय भाग वन में, और चतुर्थ भाग सन्यास के रूप में ग्रहण करना चाहिए।(2)

इसी पृष्ठ भूमि में ग्राम्य, दैव, आर्य, प्रजापत्य, आसुरी, गन्धर्व, राक्षस और पैशाच विवाहों की चर्चा शास्त्रों में की गयी है। महाभारती में ब्राह्माण्य देव, प्रजापत्य, आसुरी और गन्ध ार्व विवाह की चर्चा है।

प्रजापत्य विवाह के अन्तर्गत लोपामुद्रा और अगस्त्य के विवाह का उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है। यज्ञोपरान्त आरण्यक विधि से हवन कर पुरोहित द्वारा परिणय मन्त्र तथा अन्य शुभ आचरण कृत्य सम्पादित कर दोनों सपत्नीक बने।

निर्झर तट पर नूतना पार्वती पाणिग्रहण

यज्ञोरान्त आरंजक विधि से आर्य हवन

सम्पन्न सकल शुभ कर्म युवा ऋषि के द्वारा

रवि को ज्यों परिणय मन्त्र पढ़ाये लघु तारा

देखी मैने सज्जित की लज्जित सुषमा

चरितार्थ हुई शंकर सम्मुख गिरजा उपमा(3)

---

(1) महाभारती, पृ0 सं0 148

(1) मनुस्मृति 4/1 एवं 6/33

चतुर्थ खण्ड : दर्शन

प्रथम अध्याय
दर्शन का स्वरूप

द्वितीय अध्याय
महाभारती में ब्रह्म एवं जीव का स्वरूप

तृतीय अध्याय
महाभारती में जगत् एवं माया का स्वरूप

चतुर्थ अध्याय
महाभारती में मोक्ष का स्वरूप एवं उसके साधन
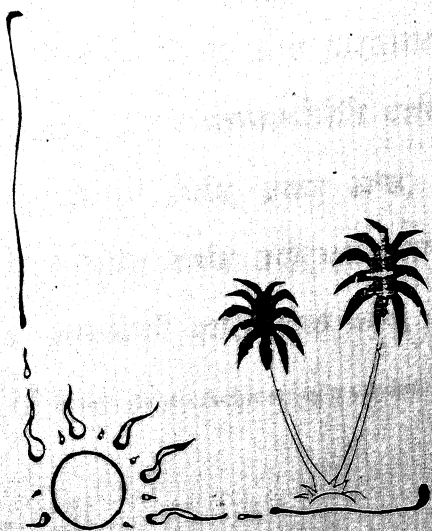
दर्शन

दर्शन शब्द ''दृशिर प्रेक्षणे'' धातु में करण कारतक में ल्युट प्रत्यय का योग करने पर निष्पन्न होता है। जिसके माध्यम से प्रेक्षण किया जाये; उसे दर्शन कहते हैं।(1)

प्रेक्षण का अर्थ है; प्रकृष्ट रूप में देखना।(2) अतः ज्ञान-दृष्टि या दिव्य दृष्टि से यथार्थ तत्व को देखना ही दर्शन शब्द का अमिधेय है ।(3) आशय यह है कि जिसके द्वारा आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान हो; वही दर्शन है। यह दर्शन या तो इन्द्रिय जन्य निरीक्षण हो सकता है या प्रत्ययी ज्ञान अथवा अन्तर्दृष्टि द्वारा अनुभूत हो सकता है।(4)

दर्शन का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द फिलासफी ग्रीक भाषा के दो शब्द से मिलकर बना है। फिलास = प्रेम, सोफिया = ज्ञान या विद्या। अतः फिलासफी का अर्थ; हुआ ज्ञान या विद्या का प्रेम।(5)

मानविकी पारिभाषिक में दर्शन शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि दर्शन ज्ञान के प्रति अनुराग का नाम है। यहाँ ज्ञान का अर्थ तथ्यों की जानकारी नहीं; वरन् विश्व और मानव-जीवन के गहनतम प्रश्नों के सम्बन्ध में अभिन्नता है। सुकरात ने दर्शन को आन्तरिक अध्ययन की ओर मोड़ा और कहा कि ''आत्मज्ञान ही दर्शन का मुख्य उद्देश्य है। दर्शन जीवन के मूल तथा विश्वव्यापी प्रश्नों और मूल्यों का व्यवस्थित अध्ययन है। यह अध्ययन कभी विश्लेषणात्मक होता है और कभी संश्लेषणात्मक।(6)

डी.वी. जॉन का मत है कि दर्शन उस विशेष ज्ञान की प्राप्ति का महत्व प्रकट करता है; जो जीवन के आचरण को प्रभावित करता है।(7) इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों के मत से दर्शन के अन्तर्गत वे आदर्श आते हैं; तथा वे मानदण्ड या मूल्य आते हैं; जिन्हें वह प्राप्त करना चाहता है।

---

(1) दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्।

(2) भारतीय दर्शन, डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी, पृ0 01

(3) दृश्यते यथार्थतत्त्वमनेनेति दर्शनम्।

(4) भारतीयं दर्शन, प्रथम खण्ड, विषय प्रवेश -डॉ0 राधाकृष्णान, पृ0 37

(5) भारतीय दर्शन उपोद्घात, आचार्य्र बल्देव उपाध्याय, पृ06

(6) मानविकी पारिभाषिक कोष, दर्शन खण्ड, सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 156

(7) It sign ified - Achieveing a wisdom that would influence the conduct of life - John. Dewey.

डॉ0 देशराज का मत है कि दर्शन सांस्कृतिक अनुभूति का विश्लेषण, व्याख्या एवं मूल्यांकन करने का प्रयत्न है। इसके द्वारा मानव संस्कृति, आत्म चेतना प्राप्त करती है।(1)

भारत वर्ष में दर्शन पारिभाषिक अर्थ में तत्वज्ञान अथवा ब्रह्म को ही दर्शन, श्रवण मनन और चिन्तन का विषय ही बतलाया गया है। (2)

अरस्तू – दर्शन ऐसा विज्ञान है जो परम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जाँच करता है।

प्लेटो – पदार्थो के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही दर्शन है।

फिक्टे – ज्ञान का विज्ञान ही दर्शन है।

कामटे – दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है।

सेलर्स – विश्व और मनुष्य की प्रकृति के विषय में एक व्यवस्थित विचार व ज्ञान प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास ही दर्शन है।

ब्राइटमैन – दर्शन की परिभाषा ऐसे प्रयास के रूप में दी जा सकती है जिसमें मानव अनुभूतियों के सम्बन्ध में समग्र रूप से सच्चाई से विचार किया जाता है या जो हमारी समग्र अनुभूतियों को बोधगम्य बनाता है।

भारतीय दर्शन का वैशिष्ट्य – भारतीय दर्शनों में आध्यात्मिकता पर विशेष बल दिया गया है। यहाँ सम्पूर्ण विधाओं को निम्नांकित दो वर्गो में विभक्त किया गया है :-

1. पराविद्या
2. अपराविद्या

जीवात्मा और ब्रह्म से सम्बन्धित ज्ञान अथवा आध्यात्मिक ज्ञान; पराविद्या का विषय है; जबकि शेष सम्पूर्ण ज्ञेय विषय; अपरा विद्या के अन्तर्गत समाविष्ट होते हैं। इन अनेंक रूपात्मक, क्षण-क्षण में विलक्षण रूप धारण करने वाले पदार्थो के अन्तः स्थल में विद्यमान रहने वाली एकरूपता; और अनेक्ता के भीतर एकता को खोज निकालना प्राचीन वैदिक ऋषियों की दर्शनशास्त्र को महत्वपूर्ण देन है।

जिस प्रकार परिवर्तनशील, ब्रह्माण्ड के भीतर एक अपरिवर्तनशील तत्व की सत्ता

---

(1) संस्कृति का दार्शनिक विवेचन – डॉ0 देवराज, पृ0 275-276

(2) आत्मा व अरे द्रष्टव्यः श्रोतब्यौ मन्तब्यौ निधिध्याशितत्यो मैतैय्यत्मनो वा। अरे दर्शनेन, श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्व विदितम् – बृह्दारण्यक उपनिषद। 2/4/5

विद्यमान है; उसी प्रकार पिण्ड के भीतर भी एक अपरिवर्तनशील तत्व की सत्ता विद्यामान है। ब्रह्माण्ड की नियामक सत्ता का नाम है ब्रह्म; तथा पिण्डाण्ड की नियामक सत्ता का नाम है आत्मा। प्राचीन दार्शनिकों ने ब्रह्माण्ड तथा पिण्डाण्ड का सर्वतो भावेन ऐक्य स्वीकार किया है और ब्रह्म तथा जीवात्मा की एकता का प्रतिपादन किया है।(1)

आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन :-

भारतवर्ष में दर्शन की निम्नांकित दो परम्पराएं रही हैं।

1. आस्तिक दर्शन की परम्परा।

2. नास्तिक दर्शन की परम्परा।
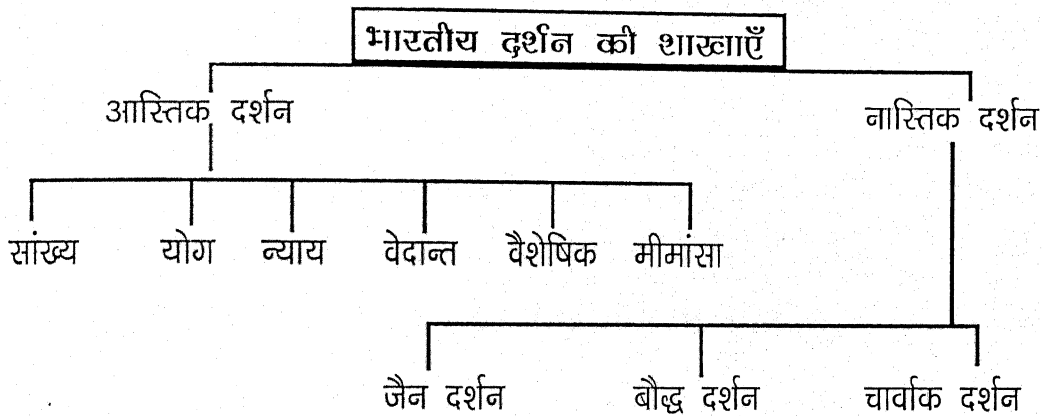
यहाँ आस्तिक शब्द का निम्नांकित तीन अर्थों में प्रयोग किया गया है।

1. लोक मान्यता के अनुसार ईश्वर पर आस्था रखने वाले व्यक्ति को आस्तिक कहते हैं।2

2. मनुस्मृति में वेद की निन्दा करने वाले व्यक्ति को नास्तिक कहा गया है। 3 इसका आशय यह है कि मनु के मत से वेद को प्रमाण मानने वाला व्यक्ति आस्तिक है।

3. पाणिनि के मत से परलोक के अस्तित्व पर विश्वास करने वाला व्यक्ति आस्तिक है।4

आस्तिकता के उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति

---

(1) भारतीय दर्शन : आचार्य बल्देव उपाध्याय, पृ0 19

(2) अस्ति ईश्वर इति मति यर्श्या स आस्तिकः, शब्द कप्लद्रुम, पृ0 198

(3) नास्तिको वेद निन्दकः, मनुस्मृति, 2/11

(4) अस्तिनास्ति दिष्टं मतिः

अस्ति परलोकः इत्येवं मतिर्यस्य सा आस्तिकः।

ईश्वर की सत्ता और परलोक के अस्तित्व पर विश्वास करता है; तथा वेद को आप्त-प्रमाण मानता है; वह आस्तिक है। किन्तु षड आस्तिक, दर्शनों और जैन दर्शन तथा बौद्ध दर्शन इत्यादि नास्तिक दर्शनों की क्रमशः आस्तिकता और नास्तिकता पर विचार करते समय उपर्युक्त तीन लक्षणों में से केवल वेद की आप्तवाक्यता अथवा प्रामाणिकता की स्वीकृति को ही मुख्य आधार माना गया है। इसीलिए वेद को प्रमाण मानने वाले दर्शन, आस्तिक (1) दर्शन तथा वेद को प्रमाण न मानने वाले दर्शन को नास्तिक दर्शन (2)कहलाते हैं।

श्रुति की आप्तवाक्यता पर विश्वास करने के कारण ही षड् आस्तिक दर्शनों को श्रौत दर्शन भी कहते हैं।

षड· आस्तिक दर्शन निम्नांकित है -

1. वैशेषिक दर्शन 2. न्याय दर्शन 3. सांख्य दर्शन 4. योग दर्शन 5. पूर्वमीमांसा दर्शन 6. उत्तर मीमांसा दर्शन।

आस्तिक दर्शनों की भाँति नास्तिक दर्शनों की संख्या भी छह है - 1. चार्वाक दर्शन 2. जैन दर्शन 3. वैभाषिक दर्शन 4. सौत्रानिक दर्शन 5. योगाचार दर्शन 6.माध्यमिक दर्शन।

भारतीय दर्शन की विशेषताएँ :-

१. आध्यात्मिकता :- भारतीय दर्शन आध्यात्मिकता पर आधारित है। त्रिविध ताप से सन्तप्त जीव की शान्ति और आव्यन्तिक दुःख निवृत्ति के लिए ही भारतवर्ष में दर्शन का आविर्भाव हुआ है। "आत्मानं विद्धिः" अर्थात् आत्मा को जानो; यही भारतीय दर्शन का मूल वाक्य है। आत्मा को ही मनन और चिन्तन का मूल विषय मानने के कारण भारतीय दर्शन में आध्यात्मिकता की सर्वोपरिता स्थापित हो गयी है।(3)

---

(1) वेद प्रमाण का नीह प्रोचुर्ये दर्शनानि सद्
न्याय वैशेषिकादीनि, स्मृतास्ते आस्तिकाभिधाः, भारतीय दर्शन, डॉ० पारस नाथ द्विवेदी, पृ० 03

(2) अवैदिक प्रमाणानां सिद्धान्तानां प्रदर्शकाः
चार्वा काद्याःषड्विधास्ते ख्याताः लोकेषु नास्तिकाः।

(3) हिन्दू धर्म कोष डा० राजबली पाण्डेय, पृ० 315

२. धर्म की प्रधानता :-

भारतवर्ष में सदाचार-पालन को आध्यात्मिक ज्ञान का प्रथम सोपान माना गया है। दर्शन और धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दर्शन उत्तम विचारों का प्रतिपाद करता है और दर्शन के द्वारा प्रतिपादित उत्तम विचारों के अनुसार आचार की व्यवस्था करना धर्म का काम है। दर्शन सिद्धान्त का प्रतिपादक है; तो धर्म व्यवहार का प्रदर्शक है। धार्मिक आचार के कार्यान्वित हुए बिना दर्शन की स्थिति निष्फल है। और दार्शनिक विचार के द्वारा परिपुष्ट हुए बिना धर्म की सत्ता अप्रीतिष्ठित है। धर्म के सहयोग से भारतीय दर्शन की दृष्टि व्यापक और व्यावहारिक है; तथा दर्शन की आधार शिला पर प्रतिष्ठित होने के कारण भारतीय धर्म आध्यात्मिकता के अनुप्राणित है। दुःख की निवृत्ति के कारणों की खोज से धर्म उत्पन्न होता है और दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति का एकमात्र उपाय दर्शन है।(1)

३.परम पुरूषार्थ मोक्ष :-

दुःखत्रय के अभिघात की जिज्ञासा(2) ही भारतीय दर्शन की उद्‌गम भूमि है। मानव जीवन के चार पुरूषार्थ माने गये हैं; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चारों पुरूषार्थों में मोक्ष श्रेष्ठ है। भारतीय दर्शन का आरम्भ ही संसार-बन्ध-मुमुक्षा या आत्यन्तिक दुःख जिज्ञासा से बना हुआ है। (3)

इस विश्व में प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण ऐहिक सुख आपतस्मरणीय होते हैं। भोग के उपरान्त ये ऐहिक सुख स्वयं निस्सार प्रतीत होते हैं। जन्म और मृत्यु की आवृत्ति से छुटकारा पाने पर ही जीव की व्यथा का अन्त होता है। यही मोक्ष है। इसीलिए भारतीय दर्शन में मोक्ष को मानव-जीवन का परम पुरूषार्थ बतलाया गया है।

४. चतुर्व्यूहात्मक दर्शन :-

चिकित्साशास्त्र की भाँति भारतीय दर्शन चतुर्व्यूहात्मक है।(4) जिस प्रकार आयुर्वेद में रोग, रोग हेतु, आरोग्य और भैषज्य पर विचार किया जाता है; उसी प्रकार दर्शन में

---

(1) भारतीय धर्म और दर्शन : आचार्य बल्देव उपाध्याय, पृ0 309

(2) दुःखत्र याभिधाताज्जिज्ञासा तद्‌भिघातके हैहेतव

दुष्टे सा पार्थः चैन्येकान्ताव्यन्ततोऽभावात्(सांख्य कारिका)

(3) अथ त्रिविध दुःखत्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरूषार्थः। (साख्य दर्शन 1/1)

(4) तुलसी दर्शन मीमांसा, डॉ0 उदयभान सिंह, पृ020

भी संसार, संसार हेतु, मोक्ष और मोक्ष के उपायों पर विचार किया जाता है।(1)

७. दुःख और उसका कारण :-

यह अनेक रूपात्मक जगत् दुःखदायक है पुनरपि जननं, पुनरपि मरणमं'' अर्थात् जन्म और मृत्यु का चक्र ही जीव का सबसे बड़ा दुःख है। इस दुःख का कारण अविद्या है। सम्पूर्ण दार्शनिक सम्प्रदाय इस विषय में एकमत है कि यह जगत दुःखदायक है। सभी पदार्थ, सुख, दुःख, और मोह से युक्त है, क्योंकि यह त्रिगुणात्मक है। त्रिगुणात्मक पदार्थो से युक्त संसार बन्धन कहलाता है और इसका कारण अज्ञान है। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न समझना ही अज्ञान है।(2)

८. समन्वयवादिता :- भारतीय दर्शन में बाह्य दृष्टि से विरोधी प्रतीत होने वाले विविध विचारों और सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित किया गया है। उपनिषदों में साधना और ज्ञान के स्तर भेद से त्रैतवाद, द्वैतवाद और अद्वैतवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। किन्तु अन्त में 'नेह नानस्ति किंचन'' कहकर त्रैतवाद और द्वैतवाद का अद्वैतवाद में समाहार कर दिया गया है।

इसी प्रकार यद्यपि षड़ आस्तिक दर्शनों में सैद्धान्तिक मतभेद दृष्टिगोचर होते हैं; वहीं पच्चीस तत्वों के ज्ञान को मुक्ति का हेतु माना गया है; तो कहीं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि; योग के इन आठ अंगों के माध्यम से परमात्मा को प्राप्त करने का उपदेश किया गया है; तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में प्रचलित विभिन्न दर्शनों में पात्रता-भेद से ब्रह्म को प्राप्त कराने वाले विभिन्न मार्गो का ही प्रतिपादन किया गया है। और ब्रह्म की प्राप्ति इन सभी दर्शनों का लक्ष्य है। ब्रह्मसूत्र या उत्तर मीमांसा दर्शन में औपनिषद वाक्यों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार गीता में ज्ञान, कर्म तथा भक्ति में समन्वय स्थापित किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन समन्वयवादी दर्शन है।

---

(1) तदिदं मोक्षशास्त्रं चिकित्साशास्त्रवच्चुतुर्व्यूहात्मकम् : सांख्य दर्शन1/1पर प्रवचन भाष्य की अवतरणिका।

(2) भारतीय दर्शन : डॉ0 पारस नाथ द्विवेदी, पृ0 4

ब्रह्म का स्वरूप

भारतीय दर्शन जहाँ एक ओर ब्रह्म से उद्भूत समस्त सृष्टि व्यापार की चर्चा करता है। वहीं पाश्चात्य दार्शनिक पदार्थ से चेतन की सत्ता निरूपित करता है। भारतीय दर्शन जिसे ब्रह्म कहता है पाश्चात्य विचारक उसे अतीन्द्रिय सत्ता अथवा परा सत्ता का उल्लेख करता है।

ब्रह्म शब्द बृह, वृद्धौ, बृहि वृद्धौ धातु में और वृहि बृहदौ मनिन प्रत्यय के सहयोग से बना है जिसका धात्वर्थ सबसे अधिक वृहत् और महान है। ब्रह्म शब्द वैदिक साहित्य में शताधिक स्थानों में आया है कहीं यह सहस्रशीर्ष सहसाक्ष और कहीं सहस्त्र पाकृ(1) कहा गया है और कहीं समस्त जगत में व्याप्त है। (2) ऐसे श्रुतियाँ मिलती हैं हिरण्यगर्भ विराट और देहाभिमानी पुरूष से सृष्टि विस्तार की चर्चा की गयी है। (3) कहीं-कहीं उसे सगुण साकार पाद निक्षेप से जगत् की परिक्रमा करनें का भी उल्लेख है। (4) उसे अनन्त विरोधाभासी गुणों से सम्पन्न बताया गया है।(5) ऋषियों ने उसे अपना वन्य जनक और विधाता कहा है।(6) उसमें सृष्टि पालक और संहारक दोनों की स्थितियों का उल्लेख मिलता है।(7)

इसी प्रकार अथर्ववेद में परम ब्रह्म को जगत का आधार जेष्ठ ब्रह्म चन्द्रमा और सूर्य उनके नेत्र कहे गये हैं।(8)

वस्तुतः वैदिक साहित्य में जिस ब्रह्म का निरूपण हुआ है उसके मूल में प्राकृतिक शक्तियों का विवेचन उन्हें देवता प्रतिरूप मानकर उस शक्ति की स्थापना की गयी है, जो बाद में धीरे-धीरे सगुण साकार रूप में विकसित हो गया है। उपनिषदों में इन्हीं ब्रह्म का

---

(1) ऋग्वेद, 10/90/1

(2) ऋग्वेद, 10/90/1, सायण भाष्य

(3) ऋग्वेद, 10/90/5

(4) ऋग्वेद, 1/22/17-18

(5) शुक्ल यजुर्वेद, 40/4-5

(6) शुक्ल यजुर्वेद, 32/10

(7) शुक्ल यजुर्वेद, 17/17, 17/27

(8) अथर्ववेद, 10/4/7-8

विस्तृत विवेचन है जहाँ उसे सत्य, ज्ञान और अनन्त (1) आनन्द रूप (2) जगत उत्पत्ति का कारक कहा गया है। (3) वहीं निर्गुण रूप में अक्षर, अप्रमेय, अजन्मा, अविनाशी और सूक्ष्म रूप में वर्णन हुआ है (4) ऐसे निर्गुण ब्रह्म का पता न तो इन्द्रियों से लग सकता, न ही मन वहाँ पहुँच सकता वस्तुतः वह सम्पूर्ण प्राणियों के परम कारण हैं। (5)

इस प्रकार वैदिक एवं औपनिषद धारा में सगुण एवं निर्गुण दोनों स्वरूपों का विस्तृत वर्णन किया गया है सगुण रूप में उन्हें सबका उपास्य सर्वत्र गमन करनें वाला ज्ञान उपासना आदि साधनों से ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। (6)

यह ब्रह्म जीव का काम्य ही नहीं सबको लीन करने वाला और जीव मात्र के लिए भोगों की सृष्टि करता है। (7) ऐसे ब्रह्म के चार पाद भूर्भुवः सप्तलोक पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ, पंच प्राण और अन्तःकरण चतुष्टय आदि विषयों का ग्रहण करनें वाले वैश्वानर नामक प्रथम पाद है।(8) ऐसे ब्रह्म सर्वज्ञ अन्तर्यामी जीवमात्र के उत्पत्ति और प्रलय के कारक प्रपंच से सर्वथा रहित शांत कल्याण मय और अद्वितीय तत्व उनके तृतीय चतुर्थ पाद हैं(9) इसी ब्रह्म के भय से पवन,सूर्य, अग्नि, इन्द्र आदि सभी प्राकृतिक शक्तियाँ अपना-अपना कार्य तत्परता पूर्वक सम्पादित करते हैं(10)

इस प्रकार औपनिषद ब्रह्म के रूप में सगुण, निर्गुण, अन्तर्यामी, सर्वकर्मा, सृष्टि के कारक और विनाशक विराट स्वरूप वाले हैं। ब्रह्म सूक्त, गीता तथा पौराणिक साहित्य

---

(1) तत्तिरीय उपनिषद, 2/1

(2) बृहदारण्यक उपनिषद 319/28

(3) छान्दोग्य उपनिषद, 3/14/1

(4) मुण्डकोपनिषद, 1/1/6

(5) बृहदारण्यक उपनिषद्, 4/4/25

(6) कठोपनिषद्, 1/2/15

(7) मुण्डकोपनिद, 1/1/9

(8) माण्डुक्य उपनिषद, 1/4

(9) माण्डुक्य उपनिषद्, 5

(10) तैत्तिरीय उपनिषद, 2/8

में निर्गुण ब्रह्म की अपेक्षा सगुण साकार ब्रह्म की लीलायें नाम लोक महिमा और क्रियाकलापों रस प्रेषण हृदयावर्जक रूप में हुआ है।

हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य में जिस ब्रह्म का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक निरूपण हुआ है उसमें सगुण निर्गुण दोनों रूपों नाम धाम विशेषताओं का उल्लेख कर ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति मार्ग के विविध साधना सोपानों का उल्लेख है आधुनिक काल में ज्ञान विज्ञान के विकास के कारण ब्रह्म के सगुण साकार रूप का वर्णन न कर उसे श्रेष्ठ आदर्श पुरूष बुद्धि के प्रतीक परम सत्ता एवं शक्तिमान के रूप में निरूपण किया गया है। भक्ति भावना के रूप परिर्वतन के कारण उपासना, वैयक्तिक और साम्प्रादायिक मन्दिरों और तीर्थ स्थलों तक ही सीमित रह गई उसका व्यावहारिक रूप विज्ञान सम्मत दृष्टि से युक्त ब्रह्म की अवधारणा विकसित हुई है।

जीवात्मा का स्वरूप

पिछ्ले पृष्ठों में निगुर्ण सगुण रूप का विहगावलोकन करते हुए कहा गया है कि वेदों, उपनिषदों, गीता और इनसे मिश्रित विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों दर्शन आदि में ब्रह्म की परिकल्पना भावमय रूप में वर्णित है इसी परिपेक्ष्य में जीव शब्द का अर्थ ब्रह्म से उसका सम्बन्ध एवं जीव की विशेषताओं का संक्षिप्त में विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

यद्यपि दार्शनिक मतों में जीव और आत्मा को मिलाकर के जीवात्मा कहा गया है अत् सातव्यगमने धातु में मनिण् प्रत्यय से आत्मन् शब्द बनता है इस शब्द का उल्लेख वैदिक साहित्य में सर्वत्र मिलता है। इसी प्रकार जीव प्राणधारणे धातु में घत्र् प्रत्यय के संयोग से जीव शब्द की सिद्धि की जाती है। जिसका अर्थ है आत्मा जब प्रकृति और देह से संयुक्त हो जाती है उसी की संज्ञा जीवात्मा है।

वैदिक साहित्य में ब्रह्म निरूपण तथा स्वतन्त्रय रूप के परिपेक्ष्य में जीवात्मा का उल्लेख मिलता है कहा गया है, कि ज्ञानी पुरूष शरीर में रहनें वाले अपनें प्राणों को अपनें वश में कर दीर्घ आयुष्य को प्राप्त करते हैं।(1)

ऋग्वेद के सूक्तों में मंत्र दृष्ट्रा ऋषि ब्रह्म के साथ अपने संयोग के विभिन्न रूपों

---

(1) अथर्ववेद, 2/34/5

की चर्चा कर आत्मा की स्थिति का बोध कराती है। (1) जीवात्मा के विशेषताओ का उल्लेख करते हुए मायाबद्ध जीवात्मा और मुक्त अमर जीवात्मा दोनों का उल्लेख किसी न किसी रूप में वैदिक साहित्य और उसके व्याख्याकारों के भाष्यों में मिलता है। वस्तुतः जीवात्मा मनुष्य के शरीर में निवास करती है उसका सिर देवों का कोष है अन्न प्राण और मन इस कोष की रक्षा करते हैं और यह मानव शरीर अष्ट चक्र नौ द्वारों वाला नगर है।(2)

इसी आत्मा का सम्बन्ध ब्रह्म के साथ अभिन्न रूप से सखा-सखी वृक्ष की डालियों में बैठे पशु-पक्षी आदि उदाहरणों द्वारा भावात्मक रूप में किया गया है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते

तपोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।। (3)

वस्तुतः आत्मा का दार्शनिक विश्लेषण उपनिषदों का मुख्य विषय है। साधक को क्षुप्त पिपासा रहित सत्य, काम और सत्य संकल्प होकर जीवात्मा की ही जिज्ञासा करनी चाहिए।(4) यह आत्मा दर्शनीय श्रवणीय, शरीर नश्वर है और वह अमृत और अशरीरी आत्मा का अधिष्ठान है। यह जीवात्मा बुद्धि वृत्तियों के अन्दर रहने वाला ज्योति स्वरूप है। न वह स्त्री न पुरूष न नपुंसक है जिस शरीर को धारण करता है वही उसका लिंग है।(5)

वस्तुतः उपनिषदों में शरीर को रथ और जीवात्मा को इसका रथी या स्वामी कहा गया है।(6)यही इन्द्रिय और मन के साथ इन्द्रिय विषयों का सेवन करता है। यही जीव कर्मानुसार परलोक में सुख-दुःख का भोक्ता बनता है और विभिन्न योनियों में जाकर कर्मो का क्षय करता है।(7) इस मनुष्य शरीर के विभिन्न नाड़ियों में जो प्राण प्रवाहित

---

(1) ऋग्वेद, 10/125/1

(2) अथर्ववेद, 10/1/2/3

(3) ऋग्वेद, 1/164/20, अथर्ववेद, 9/14/20

(4) बृह्दारण्यक उपनिषद, 3/5/1, छान्दोग्य उपनिषद; 8/7, बृह्दारण्यक उपनिषद 1/4/8

(5) श्वेताश्तर उपनिषद, 5/10

(5) कठोपनिषद, 1/3/3-4

(7) कठोपनिषद, 2/2/7

होते हैं। इन्हें सुषुम्ना नाड़ी का आधार लेकर निकला हुआ जीव मुक्त हो जाता है। उपनिषदों में जीव के देहान्त के पश्चात् अनेंक गतियों का विवरण मिलता है। आप्तकाम, निष्काम होकर ब्रह्म का चिन्तन करने वाले ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।(1)

दूसरी वह अवस्था है जिनके मन में भोगेक्षा अतृप्त रह गयी है। पुनः संसार में लौट्ते हैं या नर्क में जाकर दुःख भोगते हैं। ऐसे जीवों का निष्क्रमण देवयान, पितृयान, मार्ग द्वारा ऊपर गमन नहीं होता। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय उपनिषद में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्द मय कोष आदि आत्मा के आवरण या पंचकोषों का उल्लेख है साथ ही वृहदारण्यक उपनिषद् में आत्मा और मन के सम्बन्ध ों को भी निरूपित करते हुए कहा गया है काम, संकल्प, संशय, श्रृद्धा, बुद्धि, भय आदि मन के ही भाव हैं और जीव मन से ही देखता है।(2)

स्वप्नावस्था और जीवात्मा के सम्बन्धों का निरूपण अनेंक दृष्ट्रान्तों से किया गया है। वृहदारण्यक में कहा गया है जीवात्मा स्वप्न में अपने प्राणों को लेकर अपने शरीर में यथेष्ट विहार करता है।(3)

इसी तरह सुषुप्ति अवस्था में जीवात्मा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वह हृदयस्थ आकाश में शयन करने वाला है।(4)

जीव और आत्मा के सम्मिलित रूप से बने आत्मा का निवास हृदय रूपी गुफ़ा में कहा गया है।(5) इस जीवात्मा का सैद्धान्तिक और व्यवहारिक स्वरूप उपनिषदों में अनेक दृष्ट्रान्त देकर दृष्टान्त का स्वरूप बताया गया है। जिसका सैद्धान्तिक और सूक्ष्म विश्लेषण ब्रह्म सूक्त में मिलता है। उसमें कहा गया है कि जीवात्मा जन्म मरण रहित नित्य और शाश्वत है।(6) ईश्वर का अंश होने के कारण उसमें ईश्वर के गुण तो मिलते

---

(1) बृह्दारण्यक उपनिषद्, 4/4/6

(2) बृह्दारण्यक उपनिषद्, 1/5/3

(3) बृह्दारण्यक उपनिषद्, 2/1/18

(4) बृह्दारण्यक उपनिषद्, 2/1/17

(5) प्रश्न उपनिषद्, 4/7

(6) ब्रह्मसूक्त, 2/3/18

हैं, किन्तु जीवात्मा उन गुणों से अनभिज्ञ रहता है। हृदप्रदेश में रहने वाली जीवात्मा अणु की अपेक्षा विभु होता है। उसकी पाँच गतियाँ कही जाती हैं – आत्मज्ञानी जीव, ब्रह्म लोक जाने वाले जीव, पुण्यवान जीवात्मा, मृत्यु लोक में बारम्बार आने जाने वाले और नरकगामी आत्मा। वस्तुतः आत्मा न तो उत्पन्न होता है। न ही मरता है। शुभ-अशुभ कर्मानुसार सुख-दुःख का भोक्ता होता है। देहारान्तर काल में शरीर के वीज रूप में सूक्ष्म तत्वों से युक्त उत्क्रमण करता है। वस्तुतः जीव गुण धर्म और कार्यो की दृष्टि से ब्रह्म वैषम्य रखता है। जीव अल्पज्ञ है। ब्रम्ह सर्वज्ञ है ब्रम्ह उपास्य है, जीव उपासक है।(1)

इस प्रकार ब्रह्म सूक्त में अन्तर्यामी ब्रह्म को भूमा कहकर जीव से उसे महान बताया गया है। ब्रह्म सूक्त में भी उपनिषदों की भाँति स्वप्नावस्था, सुषम्नावस्था में जीव की स्थिति का उल्लेख कर उत्क्रमण के पश्चात् देवयान मार्ग, पितृयान मार्ग की संक्षिप्त चर्चा मिलती है।

इसी प्रकार गीता में भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश करते हुए कर्मधारी देह के कर्म और आत्मा से उसकी निर्लिप्तता बताने के लिए क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के माध्यम से जीव स्वरुप की दशा का वर्णन किया है। वहाँ कहा गया है कि नश्वर शरीर में जीवात्मा नित्य और अप्रमेय है। आत्मा न तो जन्म लेता है न मृत्यु होती है।(2)

इस प्रकार गीता में अनेक दृष्ट्रान्त देकर जीवात्म स्थिति का उल्लेख किया गया है। और कहा गया है कि वह अच्छेद अद्राष्ट क्लेरेह है वह मन इन्द्रियों से अतीत और निर्विकार है। गीता में आत्म प्राप्ति और उसके स्वरूप के लिए समस्त बुद्धियोग और स्थिति प्रज्ञता आदि का विवरण भी दिया गया है। कहना नहीं होगा कि वैदिक साहित्य में शरीर धारी आत्मा की भावुक कामनाएं उसकी भोगेक्षा अनन्त सुख प्राप्ति की लालसा और देहान्तर पश्चात् दिव्य सुख प्राप्ति का भावात्मक वर्णन आत्मा के सन्दर्भ में किया गया है वहीं उपनिषदों, ब्रम्हसूक्त, श्रीमद्गीता, भागवद्गीता और शंकराचार्य की टीकाओं में जीवात्मा के स्वरूप गुण, वैशिष्ट्य और देहान्तर स्थिति का दार्शनिक संश्लेषण, विश्लेषण हुआ है।

---

(1) ब्रह्म सूक्त, 1/2/3-4

(2) गीता, 2/18-20

जगत् का स्वरूप

गच्छतीति जगत् कहकर गतिशीलता को जगत बताया गया है। इसी तरह गम्लृ गतौ धातु में कुप्पि प्रत्यय के संयोग से जगत् बनता है। इसका एक पर्यायवाची शब्द संसार है जिसकी सिद्धि सृगतौ धातु में सम् उपसर्ग लगाकर घत्र् प्रत्यय से करते हैं जिसका अर्थ है गतिमान बना रहनें वाला।

वैदिक साहित्य में जगत् शब्द अनेक स्थानों पर प्रयुक्त है। नाशिदीय सूक्त में सृष्टि पूर्व ब्रह्म का ही उल्लेख किया गया है। उसी परमात्मा के मन में सृसृच्छा का आविर्भाव हुआ और उसी से इस जगत् की सृष्टि हुई है।(1)

अथर्ववेद के वृात्य सूत्र में सृष्टि प्रकरण पर प्रकाश डाला गया है जिसमें आत्मदर्शन के पश्चात प्रजापति द्वारा सृष्टि कार्य में संलग्न होना कहा गया है।(2)

इस तरह वृाक्त ब्रह्म से सप्त प्राण सप्त अपान और सप्त ज्ञान वनें जिनसे अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा, पौमान, जल और पशु रूप में दृश्य विद्यमान है।(3)
इसी वृाक्त के भूमि अंतरिक्ष दैव नक्षत्र ऋतु और सम्वत् सर कहे गये हैं। तात्पर्य यह कि परमात्मा ने सप्त मूल पदार्थो से - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, तन, मन और अहंकार से पृथ्वी सहित अंतरिक्ष की रचना की। ये तीनों पदार्थ क्रमशः सत्, रज, तम से होकर गुजरते हैं। इसी प्रकार यजुर्वेद में देव सृष्टि के रूप में सत्य लोक, सृष्टि और औषधि से परिजन में आदि के निर्माण की चर्चा है। (4)

ऋगुवेद का पुरूष सूक्त सृष्टि निर्माण के मूल में ब्रह्म को ही बताकर मानव समाज को विराट परमेश्वर का शरीर ही कहा गया है।

उपनिषदों में सृष्टि क्रम विकास का दार्शनिक विवेचन मिलता है वहाँ असत् से सत्य की(5) तो कहीं सत् से सृष्टि का निर्माण संकल्प द्वारा हुआ है। इससे तेज और

---

(1) ऋग्वेद, 10/129/4

(2) अथर्ववेद, 15/1/1/1

(3) अथर्ववेद, 15/2/15/9

(4) शुक्ल यजुर्वेद, 17/32

(5) छान्दोग्य उपनिषद, 6/2/1

जल(1) क्रमशः अन्न, अण्डज, जीवज, उद्भिज (2) अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा, विद्युत की सृष्टि हुई है।

वृहदारण्यक में सृष्टि पूर्व ब्रह्म का उल्लेख कर एकाकी रममाण न होने के कारण अन्न की इच्छा से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। यह जगत पूर्व में अव्याकृत था और बाद में नाम रूप के उपयुक्त हुआ। इसी में ऊर्ण नाभ (मकड़ी) की तरह ब्रह्म से जगत की स्थिति का वर्णन हुआ है।

स्वेताशवतर एवं मुण्डक उपनिषद में भी इसकी विस्तृत चर्चा है।(3) तात्पर्य यह है कि उपनिषदों का प्रिय विषय सृष्टि क्रम निर्माण की संकल्पना व्यक्त करना भी रहा है। ऐत्तरेय, तैत्तिरीय आदि उपनिषदों में ब्रह्म के संकल्प मात्र से सृष्टि निर्माण का उल्लेख है। अन्तर यह है कि कहीं लोक, लोकपाल, देवता और फिर मनुष्यों का वर्णन है तो कहीं आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, औषधियॉं अन्न एवं पुरुष क्रमशः उत्तरोत्तर सृष्टि विकास की चर्चा है। (4)

उपनिषदों की सृष्टि विकास के क्रम में कारण रूप व्रह्म की चर्चा कर परिणामवाद सिद्धान्त की उत्पत्ति मिलती है। जिसके अनुसार ब्रह्म ने जगत् की रचना की और बाद में स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गये। इसलिए कहीं इसे सत्य कहा गया है तो कहीं जगत् मिथ्यात्व भावना का भी उल्लेख भाष्यकारों ने किया है। इतना अवश्य है कि जगत् के मिथ्यात्व को यदि भाष्यकारों की स्वकल्पना मान ली जाय क्योंकि यह कल्पना प्रारम्भिक प्राचीन उपनिषदों में मृग तृष्णा सूक्ति में मुक्ता या रज्जु में सर्प की प्रतीति के उदाहरण नहीं मिलते हैं। इतना अवश्य है कि उपनिषदों में ब्रह्म को सत्य कहने के साथ ही जगत को भी सत्य नहीं तो उसके समान माना गया है।

वैदिक और औपनिषद धारा के अनन्नतर सूत्र रूप में जगत् का दार्शनिक विश्लेषण ब्रह्मसूक्त में मिलता है। जिसमें ब्रह्म से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी के

---

(1) छान्दोग्य उपनिषद, 6/2/3

(2) छान्दोग्य उपनिषद्, 6/3/1-2

(3) श्वेताश्वतर उपनिषद्, 6/10 एवं मुण्डक उपनिषद्, 1/7/7

(4) तैत्तिरीय उपनिषद्, 2/1

उत्पन्न होने का उल्लेख है। सृष्टि निर्माण के सिद्धान्तों में सत्कार्य वाद की संकल्पना ब्रह्मसूक्त के अंश एवं उसके भाष्यकारों की चर्चा है। क्योंकि असत् से कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस जगत् की सत्ता भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में है इतना अवश्य है कि ब्रह्मसूक्त में अपनी बात अत्यन्त सूक्ष्म रूप में कही गयी है। इसलिए भाष्यकारों ने स्व स्व सिद्धान्तों के अनुसार कहीं सत्कार्यवाद या परिणामवाद तो कहीं विवर्तवाद के रूप में सृष्टि निर्माण स्वरूप की बात कही है। इसी की पुष्टि शब्दान्तर से श्रीमद्भागवत गीता से हुई है जिसमें कहा गया है कि इस जगत् के कर्ता ब्रह्म हैं कल्पान्त में चराचर जगत् ब्रह्म की प्रकृति में विलीन हो जाते हैं और भावी सृष्टि के वे कारण बनते हैं।(1) गीता में सत्कार्यवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की गयी है।

इस प्रकार वैदिक औपनिषद साहित्य में वर्णित जगत् सम्बन्धी विचारधारा का विहंगावलोकन करते हुए यह कहा जा सकता है, कि मनुष्य सहित इस दृश्यमान संसार में जो कुछ भी है वह ब्रह्म निर्मित है और स्त्री पुरूषों के संयोग से मनुष्य अपने मायिक संसार की रचना करता है, जो उसकी मृत्यु के बाद उससे सम्बद्ध नहीं रहता है।

माया का स्वरूप

मा माने और माङ् माने धातु में या तथा ताप प्रत्यय के संयोग से माया शब्द निष्पन्न होता है इसकी व्युत्पत्ति ऽनय-ऽनय इति माया अर्थात् जिसके द्वारा नापा जाता हो। भागवत् में मा जो, या मा-मत अर्थात् वस्तुतः जो नहीं है किन्तु उसकी प्रतीत होती है उसे माया कहते हैं।

वैदिक साहित्य में माया के अनेक स्थान और अनेक अर्थों में प्रयुक्त है। कहीं यह प्रज्ञा, बुद्धि शब्द की शक्ति, कपट, आसुरी छल आदि के रूप में माया शब्द का प्रयोग हुआ है। डॉ0 राधाकृष्ण ने वैदिक संहिता में विशेष रूप से ऋगुवेद में प्रयुक्त माया शब्द पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं, "कि ऋगुवेद में जहाँ कही माया शब्द आया है वह केवल ईश्वर के सामर्थ्य एवं शक्ति का द्योतक है तो भी कभी-कभी माया और उससे निकले हुए मायिन और मायावन्त इत्यादि शब्दों का व्यवहार राक्षसों की इच्छा को प्रकट करता

(1) श्रीमद्भागवद् गीता, 9/7

है। इसके अतिरिक्त भ्रमजाल एवं प्रदर्शन के अर्थ में भी माया शब्द का प्रयोग हुआ है।(1)

ऋगुवेद के कुछ मंत्रों में माया का वर्णन इस प्रकार हुआ है कि वह जीव के हृदय में मोह उत्पन्न करने वाली है ऐत्तरेय ब्राम्हण में अद्‌भुत तथा इन्द्रजालिक चातुर्य अर्थ में माया का प्रयोग मिलता है।(2) इसी प्रकार प्राचीन उपनिषदों में माया का कम प्रयोग हुआ है। प्रश्न उपनिषद में इसे कपट अर्थ में(3) बृहदारण्यक उपनिषद में ईश्वर की शक्ति(4) तथा श्वेताश्वतर उपनिषद में उसकी प्रकृति(5) के लिए यह शब्द प्रयुक्त है।

इस प्रकृति के परा-अपरा, विद्या और अविद्या माया आदि भेद कुछ उपनिषदों में मिलता है। कठोपनिषद(6) में विद्या और अविद्या दोनों के विपरीत फल देने वाली और मुण्डक(7) उपनिषद में जीव को अविद्या ग्रन्थि से बद्ध कहा गया है। ब्रह्मसूक्त में माया शब्द एक वार प्रयुक्त है जिसमें स्वप्न की सृष्टि को माया मात्र कहा गया है।(8) गीता के अनुसार ईश्वर की माया त्रिगुणात्मिका(9) और जीवों को मुग्ध करने वाली है यही माया जीवों को अपने बन्धन में बाँधकर उससे अनेंक अकाण्ड, काण्ड कराती है। वहाँ भी परा-अपरा और अपरा के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार, अष्ट्र अंग उल्लिखित हैं।(10)

---

(1) भारतीय दर्शन, प्रथम खण्ड, पृ0 94

(2) ऐत्तरेय ब्राह्मण, 8/23

(3) प्रश्न उपनिषद्, 1/16

(4) बृहदारण्यक उपनिषद, 2/5/19

(5) श्वेताश्वतर उपनिषद, 4/10

(6) कठोपनिषद, 1/2/4

(7) मुण्डक उपनिषद, 2/1/10

(8) ब्रह्म सूक्त, 3/2/3

(9) गीता, 7/14

(10) गीता, 7/14

मोक्ष का स्वरूप

मोक्ष का अर्थ एवं स्वरूप :-

मोक्ष शब्द मृच्लृ मोक्षणे एवं मुच्मोचने मोदने च धातु में घञ् प्रत्यय के संयोग से वना है। जिसमें सांसारिक बन्धनों से छुटकारा तथा ब्रम्ह स्वरूप की प्राप्ति का वर्णन है। शब्दस्तोम महानिधि में लिखा है

1. मोचने संसार बन्धन-राहित्ये।

2. व्रह्मस्वरूपावात्तौ च। (1)

मुक्त के लिए मीमांसा में मोक्ष, न्याय और साख्य में अपवर्ग योग में कैवल्य और वौद्ध धर्म में निर्वाण के अभिधान दिये गये हैं। मोक्ष का सैद्धान्तिक एवं भावात्मक रूप प्राचीन काल से प्रतिपादित होता रहा है। अत्यन्त प्राचीन काल से जब मानव विवेक सम्पन्न होकर कायिक, दैहिक आवश्यकताओं से ऊपर उठकर चिन्तन रत हुआ होगा उस समय दुःख की निवृत्ति ही मुक्ति मानी गयी होगी। मृत्यु भय से छुटकारा तथा लौकिक सुखों की प्राप्ति ही जीव का काम्य था, देवी-देवताओं की कल्पना, मूर्त-अमूर्त शक्तियों की उपासना, आमंत्रण, अभियाचना, उपासना के मूल में यही कारक तत्व थे। वैदिक युग के बाद औपनिषद काल में अज्ञान बन्धन से छुटकारा एवं ज्ञान द्वारा ब्रह्म से साक्षात्कार को ही मुक्ति कहा गया है। अज्ञान, अविद्या, माया उसके कारक तत्वों के कारण हृदय में स्वपरत्व की भावना सांसारिक मोह एवं वासना आ जाती है जिससे जीव पुनरपि जन्मम्, पुनरपि मरणम् के बन्धन में बँध जाता है। अतः हार्दिक ग्रन्थि उच्छेद को ही अमरत्व कहा गया और यही मोक्ष था।

उपनिषदों में मोक्ष के निषेधात्मक तथा भावात्मक दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। कर्म बन्धन तथा माया से छुटकारा ही निषेधात्मक मुक्ति है। जबकि जीवात्मा का ब्रह्म से साक्षात्कार एवं दिव्य भोग भावात्मक मोक्ष है।

इसी प्रकार भागवत् में अज्ञान-कल्पित-कृतर्त्व तथा भोक्तृत्व का अनात्म भाव से परित्याग कर वास्तविक स्वरूप में स्थित होना मोक्ष कहा गया है।(2)

---

(1) शब्दसतोऽमहानिधि, पृ0 336

(2) भागवत्, 2/10/6

इसी प्रकार दार्शनिक ग्रन्थों में अपवर्ग के पश्चात् महत्वादि का कारण में लीन होना।(1) जीव को आत्मज्ञान होने पर अविद्या जनित दुःख का विनाश होना।(2) एवं दुःख की निवृत्ति को।(3) या कर्म चक्र की गति का बन्द होना ही मोक्ष है।(4)

तात्पर्य यह है कि मोक्ष का स्वरूप निर्धारित करते हुए यह कहा जा सकता है कि एक ओर जीवित रहकर अज्ञान, अविद्या, मोह-बन्धन का नाश कर स्वरूपानन्द की प्राप्ति ही मोक्ष है। तो दूसरी तरफ ज्ञान से ब्रह्म का साक्षात्कार उससे तादात्मय मोक्ष कहा जा सकता है। तो तीसरे रूप में जीवात्मा का किसी अन्य लोक में बसना पुनर्जन्म का न होना यही मोक्ष का स्वरूप संस्कृत के दार्शनिक ग्रन्थ ब्रह्मसूक्त, गीता, भागवत् तथा अन्य पौराणिक साहित्य में उपलब्ध होता है।

औपनिषद भाषा में सद्यः मुक्ति, क्रम मुक्ति, विदेह मुक्ति, ब्रह्म तादात्म की दृष्टि से पौराणिक शव्दावली मे सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य, सार्ष्टि या पाप-पुण्य का क्षय ब्रह्मलोक, शिवलोक अथवा ज्ञान, कर्म, भक्ति योग कर अनाशक्त भाव से जीवन यापन मोक्ष का ही स्वरूप निदर्शित करता है।

महाभारती में ब्रह्म का स्वरूप

पिछले अध्याय में काव्य एवं दर्शन का सम्बन्ध निरूपित करते हुए दर्शन के आधारभूत तत्वों में व्रह्म, जीव, जगत, माया मोक्ष, साधना का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में महाभारती में उपलब्ध ब्रम्ह एवं जीव के स्वरूप का विवेचन किया जा रहा है।

यहाँ यह लिखना असीमीचीन न होगा कि महाभारती के घटना भारतीय शक्ति सौन्दर्य एवं साधना की घटना है। आरम्भिक वैदिक युग से लेकर पौराणिक युग के मध्य विकसित होने वाले ब्रह्म के प्राथमिक स्वरूप का निदर्शन सम्पूर्ण काव्य में हुआ है। अतः इसी प्ररिप्रेक्ष्य में ब्रम्ह का निरूपण प्रस्तुत है।

---

(1) योगदर्शन कैवल्यपाद, 34

(2) योगदर्शन साधनपाद, 25

(3) न्याय दर्शन, 1/1/22

(4) वैशेषिक दर्शन, 5/2/18

ब्रह्म शब्द विउद्धव और ब्रह उद्धत धातु से बना है जिसे वृत्त और महान माना गया है।(1)

वैदिक साहित्य में ब्रह्म शब्द सृष्टिकर्ता, प्रजापति, सद्यरत शीर्ष अनन्त शक्ति सम्पन्न सत्ता के रूप में उल्लिखित हुआ है। जिसके महिमा का विस्तृत विवेचन वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। महाभारतीकार ने कहीं वैदिक काल का ही पौराणिक काल के कल्पना के अनुसार ब्रह्म का निरूपण करते हुए उसे गायत्री दृष्टि भूमा शक्ति ऐन्द्र दृष्टि आदि का उल्लेख किया है। कवि का कथन है कि देवों के अतिशय अहंकार के कारण, प्रकृति में परिवर्तन करने के कारण विनाश का दृश्य उपस्थित हुआ उसी ब्रह्म के नयनोन्मीलन से ऐसा परिवर्तन सम्भव हुआ है इसी कौतूहल का वर्णन कवि ने किया है।

कौन तुम! – किसने कहा? प्रश्नायु उत्तरहीन

उछल कर जल में प्रवाहित चेतना की मीन। (2)

ऐसे अनन्त व्रम्ह का परिज्ञान ब्रधाने सी तपस्या से प्राप्त किया था कवि ने लिखा है –

पंक विकसित सवाल पर एक्य, ब्रह्म, प्रस्फुटित आत्मजाल पूरी तपस्या का आधार बनाकर अगस्त्य, वशिष्ठ एवं विश्वामित्र ने उस ब्रम्ह के स्वरूप का दर्शन किया है। जिसे उपनिषदों में सूक्ष्म से सूक्ष्म ओर महत् से महत् कहा गया है। ईशावाश उपनिषद में ब्रम्ह को ही सम्पूर्ण जगत का आवास बताया गया है। महाभारती कार ने भी इस आत्मा का उल्लेख करते हुए विन्दु में इस विगत तत्व का दर्शन एवं आकाश के नीलिमा में उसके रूप का वर्णन किया है।

विष्णुता में आलोकित केन्द्र बिन्दु में विकसित आत्म विराट

श्वेतिमा में सारश्वत ब्रह्म नीलिमा में ही शिव विभ्रांस।।(3)

से इसी प्रकार तपस्यारत विश्वामित्र ने अपने सद्यसार के मध्य विश्व रूप में ब्रम्ह को देखा है। जिसका उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है।

---

(1) श्वेताश्वतर उपनिषद्, दार्शनिक अध्ययन डॉ0 वेदवती, पृ0 23

(2) महाभारती, प्रथम सर्ग, पृ0 26

(3) महाभारती, पृ0 119

नयनों में अंकित निलोज्जल शंकर स्वरूप

पाकर ज्यों हूण विशाखा-शशि कत्तिका धूप

नव शक्ति-शस्त्र- संसिद्ध-प्राण-शिव-विभु हर्षित

मानस त्रिनेत्र में श्री सन्निधि द्युति-उत्कर्षित

नीलिमा लालिमा में विलीन चम्पक प्रकाश

पुष्पित पलाश सा अग्नि-शक्ति का अट्टहास

कर में संकल्प-त्रिशूल, डमरू-डम-डम-त्रिताल

ताण्डव-रत-युगल चरण, वंकिम भ्रू-चपल भाल

मस्तिष्क-शिखर पर वक्र चन्द्र-सुस्मिता कान्ति

नख से शिख तक प्रालेय भाव-भैरवित क्रान्ति (1)

कवि ने प्रलय और मनु के प्रसंग में औपनिषद ब्रह्म का उल्लेख किया हैं जहाँ उसे सत्य ज्ञान अनन्त स्वरूप कहा गया है। यह जगत उसी से उत्पन्न हुआ और उसी में विलय हो जाता है। उसी ब्रम्ह का सगुण विस्तार सृष्टि है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश उसी से अस्तित्ववान बने हैं।

सृष्टि की महाचेतना एक

उसी से ही असंख्य विस्तार

एक ही जल कण से है बना

विराट-विचुम्बित् पारावार

सूक्ष्मता से ही निर्मित स्थूल,

आत्म-इच्छित ही तो आकाश(2)

कवि ने ब्रम्ह के निर्गुण रूप का उल्लेख सम्बंद्ध किया है। महाभारती के स्वरूप वर्णन के प्रसंग में इसके दिव्य अविनश्वर महाचेतना सम्पन्न रूप का वर्णन किया है।

अणु-परमाणु-पुंज में भी अश्रुत अनुगूँज भरी-सी

महाचेतना ही अनन्त में यहाँ-वहाँ बिखरी-सी

---

(1) महाभारती, पृ0 215

(2) महाभारती, पृ0 386-87

ज्ञान और विज्ञान जिसे छूकर न पकड़ पाता है,

वह अरूप ऐसा कि रूप से बाहर रह जाता है! (1)

इसी तरह योग शास्त्र में उल्लिखित नाद ब्रह्म का भी वर्णन कवि ने किया है जिसे शून्य शिखर पर ज्योति स्वरूप ब्रम्ह का दर्शन किया जा सकता है। यद्यपि उसका रूप निराकार है तथापि आत्मा अग्नि की ज्वाला के रूप में उसका दर्शन कर सकता है।

गगन-गुहा में कुहाहीन मन आत्म-प्रदीप जलाये

निराकार अस्तित्व चिरन्तन चिति में द्युति फैलाये

आदि नाद में जीवन-विधि-निधि तिरती-सी, तिरती-सी

एक किरण उस महाकाश में सुधि-समेत उडती-सी

आस्था के उस ज्योति-मार्ग पर रुकी प्रगति की पांखें

आँखों ने देखी अनन्त में परिचित ऋषि की आँखे

उस रहस्य-आलोक-लोक में आत्म प्राण-परिदर्शन

ज्योति तरंगित जय-यात्री का भेद-रहित अवगुंठन। (2)

सारांश यह है कि महाभारतीकार ने इस प्रकृति काव्य में ब्रह्म का स्वरूप विश्लेषण करते हुए वताया है कि वह ब्रह्म अनन्त है संसार में व्याप्त है, तीनों कालों से वह परे विराट स्वरूप है। सृष्टि के आरम्भ में जल के माध्यम से सम्पूर्ण भुवन को आच्छादित किये था। उसकी इंगित मात्र से ही पंचभूत में महाविस्फोट हुआ ऐसे निर्गुण ब्रम्ह में विरोधी गुणों का समन्वय है। वह सर्वद्रष्टा, सर्वान्तयामी, पालक और संहारक है। साथ ही सत्य अनन्त प्रज्ञांशु स्वरूप है। जिसे जो मन, वाक्, चक्षुन्द्रियों से परे है। और सम्पूर्ण प्राणियों के कारण स्वरूप है। जोगियो की उदीप्ति शिखा के समान शून्य शिखर पर अवस्थित रहता है और साधनावस्था में ही उसे देखा जा सकता है। महाभारती की कथा वैदिक, पौराणिक युगीन कथा है। अतः इसमें सगुण ब्रह्म के दिग्दर्शन नहीं होते हैं। विश्वामित्र, वशिष्ठ, अगस्त्य, लोपामुद्रा ऐसे ही ऋषि एवं ऋषिपत्नी हैं जिन्होंने अपनी साध ाना से अनन्त ब्रह्म के दर्शन कर उसे वाणी दी है। जो वेदों के रूप में उपलब्ध है इन्हीं

---

(1) महाभारती, पृ0 535

(2) महाभारती, पृ0 541

साधनावस्था के समय देखे गये ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन कवि ने यत्र-तत्र किया है। यद्यपि शिव-शक्ति, शारदा, प्रजापति, विष्णु आदि शब्दों का भी उल्लेख इस काव्य में हुआ है। जो उनके पौराणिक स्वरूप की अभिव्यक्ति न कर उनके यौगिक अर्थ की ही अभिव्यक्ति करते हैं। प्रजा का कल्याण करने वाला प्रजापति व्यापक विस्तृत पालक के रूप में, विष्णु संहारकर्ता के रूप में, शिव और रौद्र शक्तियों का ही उल्लेख है।

महाभारती में जीवात्मा का स्वरूप

महाभारती की कथा एक ओर वैदिक-युगीन ऋषियों की कथा है तो दूसरी ओर काम, प्रेम, सौन्दर्य, चेतना समन्वित प्रकृति काव्य है जिसमें दार्शनिक तत्वों के सैद्धान्तिक विवेचन का कम ही अवकाश है फिर भी कथा पृष्ठभूमि के रूप में जीव और आत्मा के अलग-अलग स्वरूप का निदर्शन यत्र-तत्र किया है। दार्शनिकों ने आत्मा को ब्रम्ह का अंश बताकर उसे नित्य अविनाशी, व्यापक आवरण रहित एवं स्वयं प्रकाश बताया है। जब यही आत्मा प्रकृति और देह से सम्बन्धित हो जाती है उसकी जीवात्मा संज्ञा होने लगती है। यहाँ पहले हम आत्मा के स्वरूप का उल्लेख कर तदुपरान्त जीव के लक्षण, कारक, उपादान और क्रिया-कलापों से सम्वलित रूप का उल्लेख करेंगे।

कवि की मान्यता है कि -

विविध-जीवन के केलि-कलाप
सकल जीवात्मा सचमुच एक!
कौन कब करे अरे, क्या खेल,
जानता इस रहस्य को कौन ? (1)

तन-मन पर ही आत्मा का अस्तित्व आधारित है जिसका परिष्कार करना जीव का लक्ष्य है।

जीवन से ही सम्भव जीवन का समाधान
हो जाते विकसित प्राण स्वयं ही महाप्राण
मन ही तन का अस्तित्व, आत्म आधृत जिस पर
करना है स्वतः परिष्कृत अपना अन्तर तर !(2)

---

(1) महाभारती, पृ0 105

(2) महाभारती, पृ0 217

वैयक्तिक साधना कर ही जीव आत्म स्वरूप का दर्शन करता है। आत्म अर्जित अमृत तत्व का अनुभव कवि ने इस प्रकार लिखा है।

विष्णु-शिव की सिद्ध मिलती जा रही
ब्रम्ह-तप-हित ज्योति अब अकुला रही
व्यक्ति-सीमित सिद्धि-फल अब पक रहा
आत्म-अर्जित अमृत-सत्य चमक रहा। (1)

इस आत्म तत्व दर्शन के लिए कवि ने करूणामयी धर्म का उल्लेख बार-बार किया है

मनुज का गतिशील मन तो एक रे
आत्म का एकत्व : विश्व-विवेक रे
महाकरूणामय चिरन्तन मर्म है
नहीं निष्क्रिय कभी मानव-धर्म है।(2)

दैहिक सुखों-दुखों से आत्म अनुभव असम्प्रक्त है। आत्मा तो सदैव आत्म रस में ही लिप्त रहती है। देह दौर्बल्य को विस्मृत कर ही आत्म प्रकाश को पाया जा सकता है।

योग-बल से ज्योति-अर्जन कर चुका
तिमिर का अज्ञान-कुसुम विखर चुका
देह के दौर्बल्य से अब दूर हूँ
जो न जलकर वह बुझे कर्पूर हूँ! (3)

इस आत्मा में सांसारिक गुण-दोषों का आभाव है

मुक्त मन पर व्याप्त नीलाकाश हो
जो न कभी उदास और निराश हो। (4)

विश्वामित्र की साधना प्रसंग में कवि ने आत्म के स्वरूप दर्शन का सोपान बद्ध वर्णन किया है मन, चेतना, जीवन और अभिनश्वर आत्म इन सोपानों के रूप हैं-

---

(1) महाभारती, पृ0 262
(2) महाभारती, पृ0 265
(3) महाभारती, पृ0 271
(4) महाभारती, पृ0 272

धीरे-धीरे ज्योति : स्मित ऋषि तपोभूमि पर उतरे,

मन-प्रवाह पर आत्म-ऋचा की शब्द-शक्ति ज्यों बिखरे

इन्द्र चेतना की चंचलता बनी आत्म-उज्जवलता

प्राप्त हुई अर्न्तमन से ही वाणी की निर्मलता!

मन से भी उत्पन्न चेतना और चेतना से मन

ज्यों जीवन से जीव, जीव से ही ज्यों अगणित जीवन

मनः शक्ति से रचित सृष्टि आधृत अनन्त द्युति-गति पर

नश्वरता में भी आभासित आत्म-महिम अविनश्वर!(1)

तपस्यारत विश्वामित्र को लोपामुद्रा आत्म तत्व के मन-बुद्धि, चिति और अहंकार इनका परिज्ञान कराती है। वह आत्म मंथन करती हुई विश्वामित्र से कहती है कि नश्वर मनुष्य का जीवन सुख-दुख के बिना अपूर्ण है। मनुष्य की दिव्य चेतना और आत्म विश्वास मानव को आत्म रूप समझने में सहायक होता है। इस ज्ञात रहस्य के सामने संसार तुच्छ लगता है।

एक मुझमें भी कोई और,

प्राण में भी प्राणों का वास

बिम्ब से ज्यों उज्जवल प्रतिबिम्ब,

छांह में भी ज्यों सूक्ष्म प्रकाश

समझ में गयी आत्म-अस्तित्व

ज्ञात हो गया रहस्य अपार

जब कभी ऊपर उठती ज्योति,

तुच्छ-सा लगता तम-संसार। (2)

जिस समय जीव को आत्म दर्शन होता है। इस शक्ति की अभिव्यक्ति बड़ी तत्परता से वह अनुभव करने लगता है। चतुर्दिक बसन्ती विभा विकीर्ण हो जाती है और आत्मा ज्योति बन्धनों के उस पार पहुँचने का प्रयास करने लगती है।

---

(1) महाभारती, पृ0 331

(2) महाभारती, पृ0 378

प्राण-मन-तन इस क्षण निर्बन्ध,

खुले हैं महासत्य के द्वार

पहुँचना चाह रही मैं आज,

ज्योति-बन्धन के भी उस पार। (1)

कवि की मान्यता है कि विविध माया, मोह जाल, ऐन्द्रिक सुख विलास में फंसा जीव आत्मज्ञान के लिए छटपटाता रहता है इस आत्म तत्व दर्शन की साधना अत्यन्त कठिन दुसाध्य और दुर्भसय है।

मनस्तत्त्व से आत्मतत्त्व की सूक्ष्म साधना होती

ज्ञानमयी विस्वास-किरण ही ब्रम्ह-चेतना ढ़ोती

महाध्यात्म-साधना-शिखर पर जाना नहीं सुलभ है

मन से बहुत दूर दिव्यात्मा का अविनश्वर नभ है

तर्क ज्ञान-उत्क्रान्त, कर्म विज्ञान-प्रेरणा देता

किन्तु आत्म-अनुभूति भाव भास्वर विवेक भर लेता

जब-जब देह विदेह हुआ संतोष-साधना जागी

अनुरागी से अधिक दिव्य बन जाता साधक त्यागी। (2)

स्वप्न में विश्वामित्र को सृष्टि के अनेंक रहस्यों का उद्घाटन होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में आत्मा का स्वरूप और उसके दर्शन की साधना का उल्लेख इस प्रकार हुआ है -

प्रेरित करती प्रथम कल्पना, तभी ज्ञान बढ़ता है

तन के चढ़ने के पहले मन ही गिरि पर चढ़ता है

मनोगुहा से बुद्धि और उर-धारा सदा निकलती

चेतन और अचेतन पथ में मनोदीपिका जलती।

आत्मा जहाँ झलकती, वह आकाश मनुज का मन है।

स्थूल जीव से प्रखर विश्व में, प्राण-सूक्ष्म जीवन है

---

(1) महाभारती, पृ0 382

(2) महाभारती, पृ0 539

स्वानुभूति से ही रहस्य का महाज्ञान मिल पाता

व्यर्थ नहीं मानव अपने सपने से बाहर जाता!(1)

सारांश यह है कि कवि ने आत्मतत्त्व निदर्शन के लिए भारतीय वांङ्मय में उपलब्ध आत्मदर्शन के तत्त्वों का उल्लेख पृष्ठभूमि के रूप में किया है। यह आत्म तत्त्व नश्वर शरीर पर ही अधिष्ठित रहता है। मन, बुद्धि के अन्तर्गत रहने वाला ज्योति स्वरूप है। ऐन्द्रिय सुख-दुख उपभोग से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्ञान योग साधना के द्वारा अन्तःकरण को निर्मल कर आत्म तत्त्व का दर्शन करता है। ऐसा आत्मज्ञानी निर्लिप्त रहकर आत्म रस में ही लीन रहता है।

महाभारती में जीव का स्वरूप

पूर्व पृष्ठों में आत्म स्वरूप का निर्दशन करते हुए हमने यह निरूपित करने का प्रयास किया है कि ब्रम्ह जगत का उपादान कारण है। और आत्मा उसी का एक अंश है। जवकि जीव अल्पज्ञ आनन्द से रहित सुख-दुख भुक्तभोगी है। यहाँ हम कुछ उदाहरण देकर महाभारती में उपलब्ध जीव के स्वरूप का निर्दशन करेंगे। कवि कहता है कि ब्रम्हज्योति से ही इस जीव का जन्म हुआ है और प्राकृतिक परिवर्तनों से ही मनुष्य ने ज्ञान प्राप्त किया है -

ज्योति से जीवन का जन्म,

प्रकृति से रूपाकृति-निर्माण

परिष्कृत परिवर्तन से सृष्टि

स्वतः प्रारम्भ प्राथमिक ज्ञान। (2)

इस जीव को ही सुख-दुख का बोध होता है।

चेतना-प्रेरित दुख-सुख-बोध,

आत्म-अभिव्यंजित प्राण-प्रवाह

तरंगित इच्छा तमस-स्वतंत्र,

रश्मि-रम्या राहों की आज!(3)

---

(1) महाभारती, पृ0 543

(2) महाभारती, पृ0 110

(3) महाभारती, पृ0 111

इसी जीव ने अपने स्वप्नावस्था में सुख दुख के साथ स्वर्ग नर्क की भी कल्पना करता है

दृष्टि ने ढूँढ़ लिया निज स्वर्ग,
नरक की हुई तिमिर-पहिचान
धरा पर भी अम्बर का ध्यान,
ध्यान का व्यर्थ नहीं अनुमान। (1)

ब्रम्ह सूत्र और वेदान्त दर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थों में जीव सम्बन्धी अनेंक सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है जिसका निष्कर्ष यह है कि जीव वस्तुतः न तो उत्पन्न होता है न मृत्यु को प्राप्त होता है वह तो नित्य है अपने शुभ-अशुभ कर्मो के कारण विभिन्न योनियों में जन्म लेता है यद्यपि उसका कर्तापन ईश्वर पर आधारित रहता है।

मनुज-मन से भू-देव-विकास,
मनुज-मन से भू-देव-विनाश
एक आती-सी आकुल ज्योति,
एक जाता-सा जीर्ण प्रकाश!
आत्म का कठिन प्राण-संघर्ष,
जीव का दुष्तर योनि-विकास
अंकुरित हुआ नयन-गत ज्ञान
प्राण में जब-जब प्रश्नाभास
खुले जब ज्ञानेन्द्रिय के द्वार,
मनुज को तब कर्माभा प्राप्त
निकल आया नर इतनी दूर
किन्तु जय यात्रा नहीं समाप्त! (2)

कवि ने जीव के इस स्वरूप के साथ ही साथ मन की अवस्था का भी बहुविधि वर्णन किया है। वस्तुतः मन के कारण ही जीव जागृत सम्बन्धों में आबद्ध होकर नानाविधि कार्य करता है।

---

(1) महाभारती, पृ0 111

(2) महाभारती, पृ0 119-120

अतिशय विवेक मानव ही धारण करता,

मन ही अन्तर में आत्मोच्चारण करता

फूटती त्रिलोचन-किरण मनोरम चिति से

उठती है अमृत-तरंग मनः झंकृति से!

मन के मंथन से ज्ञान रत्न मिलता है

मन के भीतर ही स्वर्ग कमल खिलता है

ज्ञानेन्द्रिय का कर्मेन्द्र समुन्नत मन है

मन ही जीवन का शोणित मन्त्र सुमन है। (1)

इस मन को संस्कार शील बनाने की बात प्रायः दार्शनिक ग्रन्थों में कहा गया है

संस्कार शील-सौरभ भर देता मन में,

भर देती विकसित बुद्धि चेतना तन में

आचार-संहिता से ही शक्ति-नियंत्रण

निज भाषा से ही जागृत होता जीवन। (2)

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, दोष मन में ही स्थित रहते हैं। जिनका संयमन कर ही आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

साधना का उन्नत कर्तव्य

शमित कर देता तन का ताप

क्षीण होता रहता संतृप्त

पुण्य के बल से मन का पाप

नियंत्रण से निर्मलता प्राप्त

किन्तु यह कठिन कर्म का योग(3)

इस मन के अन्दर से ही संकल्प, विकल्प जागृत होते हैं मन को संयमित कर निष्काम कर्म की प्रेरणा हमें महापुरूषों से मिलती है।

---

(1) महाभारती, पृ0 186

(2) महाभारती, पृ0 187

(3) महाभारती, पृ0 371-373

तपस्वी रोका करते श्वास,

मनस्वी मन को करते शान्त

किन्तु साधारण जन का हृदय

सिन्धु-जल-सा रह-रह उद्भ्रान्त

अभी दुख-सुख अनुशासन हीन

अभी दुर्बल मानव समुदाय। (1)

तात्पर्य यह है कि कवि ने आत्मतत्त्व निदर्शन करते समय ब्रम्हात्म मयिक वाद स्थापित किया है आत्मा, अजर, अविनश्वर, अविनाशी, आनन्दमय है। वही जीव शरीरध ारी कर्मो का कर्ता सुख-दुख का भोक्ता है। वह माया के आवरण से बंधकर अपने लिए एक नये संसार की रचना करता है इस संसार में किये गये कर्म, अकर्म, विकर्मो के फल का भोक्ता है। श्रेष्ठ जीव तप, ज्ञान, योग, मनोनिग्रह, के द्वारा निष्काम कर्म करते हुए आत्म स्वरुप को प्राप्त होते हैं। इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिफलन महाभारती में कहीं सैद्धान्तिक तो कहीं व्यवहारिक रूप में हुआ है। कहना नहीं होगा प्रलयकि अगस्त्य वशिष्ठ, विश्वामित्र की साधना के समय जिस ब्रह्म तत्व का निरूपण प्रत्यक्ष परोक्ष रूप में हुआ है। उसकी पृष्ठभूमि में दार्शनिक ग्रन्थ ही रहे हैं। क्योंकि वह ब्रह्म सगुण निर्गुण दोनों रूपों से परे सृष्टि का नियामक और कर्त्ता आत्मामय है। भरत, लोपामुद्रा और विश्वामित्र के ही सन्दर्भ में शान्त जीव की अशान्त प्रवृत्तियों कर्मो का निरूपण किया गया है। यहीं आत्मा और जीव के पार्थक्य का भी कवि ने सांकेतिक किया है। और यत्र-तत्र जीवात्मा की गति का उल्लेख भी इस पृष्ठभूमि में हुआ है। ब्रह्म जीव का यह निरूपण किसी सैद्धान्तिक दार्शनिक ग्रन्थों का लक्षणानुभाव नहीं है। अपितु कवि की दृष्टि से इस स्वरूप का भाव सम्वलित निरुपण मात्र है। यह निरूपण रुक्ष, कठोर शैली की अपेक्षा कथाभाव सम्वलित होकर अभिव्यंजित हुआ है।

जगत

सृष्टि उत्पत्ति स्थित विकास आदि प्रक्रिया का चिन्तन जगत् तत्व के अन्तर्गत आता है। दार्शनिक ग्रन्थों में जगत् को ब्रह्म का ही नाम रुपात्मक कहा गया है। यह नाम

---

(1) महाभारती, पृ0 376-377

रूपात्मक जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा लय सत्यमय है, ब्रह्ममय है। इसी जगत् में ब्रह्म की अभिव्यक्ति होती है।

वैदिक परम्परा में सृष्टि की उत्पत्ति अग्नि, सोम, कहीं इन्द्र और कहीं विश्वकर्मा एवं वरूण कहे गये हैं।(1)

ऋग्वेद का नास्तिीय सूत्र अधमर्षण सूत्र अथर्ववेद के व्रातसूत्र में शिक्षा के स्वरूप विकास की यत्किंचित चर्चा है। औपनिषद् साहित्य में ब्रह्म के संकल्प को ही जगत् का कारण माना गया है। तैत्तिरीय उपनिषद में ब्रह्म से आकाश वायु, अग्नि इत्यादि की उत्पत्ति कही गयी है।(2)

वेदान्त दर्शन में औपनिषद सिद्धान्तों का समन्वय किया गया है। इसी प्रकार न्याय तैयेविक सिद्धान्तों में जगत् की सृष्टि ब्रय से अनुवासित कही गयी है। जबकि बौद्ध दर्शन में जगत शब्द को स्वतंत्र और परिवर्तनशील कहा गया है।

निष्कर्ष यह है कि यह जगत् ब्रह्म की सृष्टि का स्वरूप है। आगे चलकर जीव और माया के संयोग से जगत को मिथ्या मान लिया गया है।

महाभारती में दैवी सृष्टि और मानवीय सृष्टि की विस्तृत चर्चा की गयी है साथ ही सृष्टि के लय के रूप में ईश्वरेच्छा एवं और उसके विकास के रूप में अनेंक तत्वों का उल्लेख हुआ है।

सबसे पहले हम ईश्वरेच्छा का स्वरूप देखेंगे। महाभारती कार ने परमब्रह्म शिव द्वारा लय की गयी समष्टि सृष्टि को उसके पुर्ननिर्माण में महाइच्छा का संकेत किया है।-

समय-शिव से सृजित फिर-फिर ध्वस्त कृति-सौन्दर्य
आत्म-रचना-शक्ति से परमात्म को आश्चर्य
नित्य ऋत-चैतन्य विधि से विविध जग-निर्माण
महा इच्छा से अलंकृत सृष्टि-तुन-परिधान (3)

देव सृष्टि के बाद मूल में ब्रह्मात्म इच्छा और इन्द्र के सौजन्य का उल्लेख कवि

---

(1) भारतीय दर्शन, डॉ0 उमेश मिश्र, पृ0 34-35

(2) तैत्तिरीय उपनिषद्, 2/1

(3) महाभारती, पृ0 37

ने इस प्रकार किया है –

पर कहूँ किससे कि मर्त्य मही तुम्हें स्वीकार?
कौन देगी साथ? किस पर आहरण-अधिकार?
शारदे! तुमने कहा था भूमि मानव-हेतु
किन्तु मैं कैसे रचूँ ब्रह्मात्म-इच्छा सेतु?
स्वयंसिद्धा शक्ति हे! देवेन्द्र भू प्रतिकूल
किन्तु मेरी चेतना पर व्याप्त धूल-दुकूल
एक-केवल एक यदि रूक जाय इन्द्र-तरंग
प्राप्त हो इस मृत्तिका को प्राण-प्रगति-प्रसंग। (1)

इस मानवीय सृष्टि के मूल में कवि ने प्रलयोपरान्त प्रकृति और पुरूष की चर्चा भी कवि ने की है। मिट्टी में पडा हुआ यह बीज इन्द्र के संकेत से अपने वैभव को प्राप्त होता है।

मृत्तिका में बीज-वैभव का अमिट अवदान
इन्द्र! भावी मनुज में पशु-सा न सीमित ज्ञान।(2)

प्रकृति और पुरूष के संयोग से ही मानवीय सृष्टि का विस्तार हुआ है –

प्रकृति हे! मैं पुरूष, पकडो स्वयं मेरी बाँह
दो अकिंचन मनः तनु को चेतना की छाँह
धरा पर मैं ही अकेला प्रथम द्युति-सन्तान
करो निज सामीप्य से नभ-अतिथि का सम्मान। (3)

कवि ने इस प्रकृति को विविध तत्वों का परिमाण कहा है। विधि के मन में सृष्टि विषयक जो अन्तर्द्वन्द्व था उसका निरूपण करते हुए पृथ्वी, आकाश, को सत्य रूप में स्वीकार किया है।

इस सृष्टि के मूल में त्रिगुणमयी तत्वों का भी उल्लेख कवि ने इस प्रकार किया है।

---

(1) महाभारती, पृ0 29

(2) महाभारती, पृ0 31

(3) महाभारती, पृ0 34

त्रिगुण-अन्वित प्राण का संशय-श्वसित अभियान

शक्ति के अनुकूल लक्षित कर्ममय उत्थान।(1)

यह माम रूपात्मक प्रकृति आगे चलकर जगत संज्ञा से अभिगृहीत हुआ। यह जगत नश्वरवान होकर भी अभिनश्वर में समाहित हो जाता है। इस अवस्था के मूल में ब्रह्म के तीव्र आकर्षण का उल्लेख कवि ने किया है।

चुम्बक रहस्य-रंजित चक्रित ब्रह्माण्ड-पुंज

द्युतिदला सृष्टि में स्वयंप्रभा का शक्ति-कुंज

अव्यय प्रकाश से व्यय-विकास प्रतिपल नवीन

नश्वर में अविनश्वर अम्बर-स्वर आत्म-लीन! (2)

तात्पर्य यह है कि कवि ने जगत् तत्व का निरूपण करते हुए यह कहने का प्रयास किया है कि जगत् के पूर्व एक तत्व तेज शक्ति थी जिसकी आकांक्षा से सृष्टि निर्माता ब्रह्मा के मन मे सृजन का भाव उत्पन्न हुआ और दैवीय शक्ति उत्पन्न हुई किन्तु प्राकृतिक नियमों की अवहेलना के कारण यह जगत विलीन हो गया और उसी व्रह्म के संकेत से मानवीय सृष्टि का विकास संख्य दर्शन के अनुसार कहा गया है। यह तंत्र त्रिशंकु प्रकरण में विश्वामित्र की स्कृत्य सृष्टि एवं पौराणिक पात्रों के क्रियाकलापों आचार-विचार के अनुकूल जगत तत्वों का निरूपण इस प्रकार किया गया है जिससे यह प्रतिभासित होता है कि यह जगत एक ओर सत्य स्वरूप है। शिव और सुन्दर है तो दूसरी तरफ दार्शनिक गुणों के अनुसार माया तत्व के प्रबलता के कारण यह मिथ्या माना गया है।

महाभारती में माया का स्वरूप

दार्शनिक ग्रन्थों में जीव और ब्रह्म में अभेद भावना का वर्णन है। परन्तु व्यावहारिक रूप में विषमद का भेद सत्य जान पड़ता है। इस प्रकार आत्मा परमात्मा के बीच अन्तर डालकर दोनों की पृथक प्रतीति कराने वाली शक्ति माया है। कोश ग्रन्थों में माया के अनेक पर्यायवाची शब्द है। अविधा, अज्ञान, प्रकृति, अव्यक्त, अक्षर, अध्याय, शक्ति, उपाधि।

---

(1) महाभारती, पृ0 30

(2) महाभारती, पृ0 80

वैदिक साहित्य में माया तथा इससे निष्पन्न अनेक शब्द प्रयुक्त है। निघुष्ट ने माया के कर्ता हैं केतु, चेता, चिंतन, असु, घी, शचि, माया अभिख्या इत्यादि शब्द प्रयुक्त किये हैं।(1)

भाष्यकार सायण ने कपट विशेष प्रज्ञा के ज्ञान को माया कहा है। उपनिषद माया के शास्त्रीय रूप की व्याख्या करते हैं। कठोपनिषद में कहा गया है – आत्मा स्वरूप परम रूप सब प्राणियों में रहता हुआ माया के परदे में छिपा सबको प्रत्यक्ष नहीं दिखता है।(2)

तात्पर्य यह है कि उपनिषदों में नाम रूपात्मक जगत् को अविद्या का भ्रम तथा प्रकृति को माया कहा गया है। गीता में माया को कृष्ण की शक्ति माना गया है। जो ज्ञान को नष्ट करती है। यह अविद्या तथा भ्रम रूपा है।(3)

मायावाद में से प्रभावित हैं वस्तुतः माया का शास्त्रीय विवेचन शंकराचार्य ने ही किया है। जिसे संक्षिप्त रूप में इस प्रकार कहा जा सकता है। चेतन स्वयं अधिषम्पन्न और अधृस्य के दृष्टि से माना जाता है। यही मायावाद है। शंकराचार्य से अज्ञान और भ्रम नाम रूपात्मक जगत् को माया कहा है। वस्तुतः माया का अर्थ है ईश्वर की विचित्र अर्थ सत्यकारी शक्ति।(4)

हिन्दी के आधुनिक काल में माया का वैरत चिन्तन और विवरण तथा काव्य में उसका प्रयोग भक्ति काल की तरह नहीं हुआ क्योंकि वैज्ञानिक विकास के कारण मायावाद उतना प्रभावी नहीं रहा। महाभारती में माया अनेक रूपों की चर्चा है। कुछ स्थानों पर विशुद्ध ब्रह्म को प्रकट करने वाली सत्तगुण प्रधान कहीं अविद्या के रूप में कहीं माया उपाधि मायोपाधि के संयुक्त जीव के अकरणीय कार्यो के माध्यम से माया की ही व्याख्या की गयी है।

कवि ने सृष्टि निर्माणकर्ता के रूप में माया का वर्णन पूरा प्रकट किया है –

---

(1) निघण्टु, 5/9 सीताराम शास्त्री

(2) कठोपनिषद, 1/3/12

(3) गीता, 7/14-15

(4) भारतीय दर्शन, सतीश चन्द्र चटोपाध्याय

व्योम-बीज-विमन्त्र सा मैं पुरूष-प्राण अनाम
सुन्दरी सहचरी! अर्पित तुम्हें भूमि-प्रणाम
आदि जननि तुम्हें अकेला जानता है काल
किरण-कुंकुम से प्रथम पूजित तुम्हारा भाल।

सहन की तुमने प्रसव की प्रथम प्रातिभ पीर
सम्भाला-पाला तुम्हीं ने शिशु-प्रसून-शरीर
प्रथम पूजा-पुष्प सा अर्पित मही को पुत्र
तुम्हीं तुन-सम्पर्कमय सप्राण शोभा-सूत्र।

स्वयं में तुम सृष्टि, सर्जन-शारदा अम्लान
जगमगाती नित तुम्हारी ज्योति स्नेह प्रधान
किसे अवगत, किया तुमने कहाँ, क्या संघर्ष
आदि अर्द्धांगिनि! तुम्हारा श्वसित यज्ञोत्कर्ष।

तुम्हारे क्रम-दान से मनु-रूप का उत्थान
तुम प्रथम इतिहास की पहली अमृत-मुस्कान
प्रलय में भी बह रही थी प्रिय, तुम्हारी शक्ति
तुम्हीं प्राणाराधना की उन्मना अनुरक्ति। (1)

युवराज भरत के मन में माया जनित आकर्षण कितने प्रबल हो उठे हैं कि उनका अपना मन अपने वंश में नहीं रह सका स्मरण किया है जिसमें कुछ अध्याय और कुछ कपट ज्ञान का संयोग है।

पागलमन! तू क्यों अधीर, तू क्यों रे चंचल?
पकड़ रहा तू क्यों सुगन्ध का उड़ता अंचल?
निद्राहीन नयन पर स्वप्न-सुज्जिता माया

(1) महाभारती, द्वितीय सर्ग, पृ0 55

प्राण-भूमि पर खिली धूप की पुष्पित छाया! (1)

इसी प्रकार विश्वामित्र वशिष्ठ द्वेष प्रकरण पर कवि ने माया के अद्भुत सर्ग निर्माण सौन्दर्य का वर्णन किया है। स्वप्न लोक में उर्वशी, मेनका, रम्भा, अप्सरायें मायानवी है। तो धरती में वशिष्ठ की इच्छा से कामधेनु ने जिस सुविधा सम्भार की रचना की हो वो भी माया का ही एक रूप है।

तपोनिरत कौशिक साधना के मार्ग में जैसे ही आगे बढ़ते हैं तभी तारूण्य ज्वार, मनोवस्था, मायावी रूप धारण कर उसे विचलित कर देती है।

अभ्यास मार्ग पर कभी-कभी आनन्द-मोह

स्वातन्त्र्य-चेतना-हेतु कभी संघर्ष-द्रोह

अन्तर्लोचन-द्युति-द्वन्द्व कभी उत्थित मन में

तारूण्य-ज्वर भी यदाकदा तन्द्रिल तन में।

तिरती आत्मा पर घिरती-सी कुछ मनोव्यथा

इन्द्रोदित उर पर कभी चारु चन्द्रमा-लता

सस्मित समाधि-शतदल पर इच्छा-शक्ति कभी

प्रज्जवलित मनोरथ पर कुसुमित अनुरक्ति कभी! (2)

इसी सन्दर्भ में साधनारत आत्मा जिस क्षण परमात्मा का दर्शन करती है। यह माया विश्वामित्र के अचेतन में गायत्री स्वरूप होकर ब्रह्म दर्शन से सहायिका बनती है।

कर्म-समर्पित मर्ममयी आनन्द-तरंग हृदय में

चेतन और अचेतन आभा एक चिरन्तन लय में

आत्म-ज्योति-पद्मासन पर किस स्वप्न शक्ति की सुषमा?

शान्ति-कान्तिवासना विधि-श्री की नहीं नयन में उपमा !

ध्यानमयी वह मन्त्र-पूर्ति अन्तःस्मिति छिटकाती-सी

अमृतकंठ-रश्मियाँ विभा की वाणी बिखराती सी

---

(1) महाभारती, पृ0 446

(2) महाभारती, पृ0 197

गायत्री-गन्धिता ज्योति विश्वास-सुरभि बरसाती

दीप्तिदायिनी दिव्य चेतना-वीणा स्वयम् बजाती! (1)

यदि माया का यह रूप सात्विक है तो उसके राजस और तामसिक रूप का भी वर्णन कवि ने किया हो अहंकार जन्य क्रोध अधिकार लिप्सा युक्ति नीव किस प्रकार माया ग्रस्त होकर चिन्तन करता है। विश्वामित्र प्रकरण इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं।

मैं हूँ विश्वामित्र : व्योम तारा-प्रतिरूप नरोत्तम, -

अहम्-ध्वस्त होकर भी जिसका मिटा नहीं अन्तिम भ्रम

नीलाकाश-ग्रन्थ का मैं गायत्री-मन्त्र-प्रणेता

क्यों अगस्त्य-विद्या से मैं अब तक न वसिष्ठ-विजेता?

मैं वैदिक विज्ञान-ज्ञानमय कर्म-प्रदीप धरा का

उड़ती है सूर्येन्द्रशिखर पर मेरी किरण-पताका

मनःशक्ति-स्रष्टा मैं, जीवनतन्त्र-दृष्टि का द्रष्टा -

रश्मि-अप्सराएँ जिसके तप से होती पथ-भ्रष्टा! (2)

इसी तारतम्य में माया की अनन्त आकर्षण शक्ति का वर्णन कवि ने अत्यन्त भावुक शब्दों में किया है :

मन प्राण के इच्छाधिकार पर किस चुम्बक की छाया

क्यों आया वह क्षण कि हृदय सहसा इतना अकुलाया

वज्र-कठोर धारणा किसकी अमृत-ज्योति से पिघली

अनायास घिर आई लोचन-लीला में क्यों बदली? (3)

माया के आवरण हट जाने पर जीव किस प्रकार प्रकार चैतन्य स्वरूप हो जाता है वह अन्य माया ग्रस्त जीवों पर करूणा कर उनके लिए व्यथित होता है।

अंधकार में भटक-भटक कर अनगिन जन अज्ञानी, -

नगारण्य में लगे भूलने अपनी आदि कहानी

---

(1) महाभारती, पृ0 534

(2) महाभारती, पृ0 536

(3) महाभारती, पृ0 542

पशुवत् जीवन-यापन कर वे जीवित रहे जगत में

निद्रित ज्योति-प्रवास युगों तक तिमिर-तरंगित पथ में।(1)

वेद विभा से रहे अपरिचित युग-युग तक तम-मानव

तामस बुद्धि-गर्व से जन्मा वसुधा पर जन-दानव

संस्कारों के बिना न कोई मानव बन सकता है

ज्योति-योग उच्चता-सिद्धि के कारण ही लगता है! (2)

कवि की स्पष्ट धारणा है कि इस स्वसित तन में स्वर्ग सुख और नर्क का दुःख एक साथ रहता है। अपने दुष्कर्मों से वह अमृतत्व को छोड़कर गरल रूप जगत् को स्वीकार करता है। यह माया के छल से ही सम्भव है।

मनुज के श्वसित तन में स्वर्ग-सुख तो नरक-दुख भी

प्रकाशित प्राण-पग दुष्कर्म से तम-भ्रष्ट होता

भला इतनी विषम माया कि छाया ज्योति कैसी?

न मानव अमृत ही केवल, गरल-छल भी सँजोता।

न आँखे गिन सकीं अब तक कि कितनी भूम मन की,

तिमिर के ताल में भी पाप-पंकज खिलखिलाते

अँधेरे की उषा जब ओढ़ लेती कृष्ण कम्बल

निशा के भी तिमिर-नक्षत्र मन में झिलमिलाते। (3)

स्वार्थ दृष्टि, ईर्ष्या, कपटाचरण कुटिलता ये माया के ही परिणाम है।

कराती स्वार्थ-ईर्ष्या ही कपट से सत्य-हत्या

करा कर व्यक्ति-बध, शासक चतुरता-व्यूह रचता

सुरा-मद से असुर की आँख इतनी लाल होती

कि दूषित दृष्टि से तम-पुष्प कोई नहीं बचता!

कुटिल काया किसी की छिप नहीं सकती छिपाएं,

---

(1) महाभारती, पृ0 545

(2) महाभारती, पृ0 545

(3) महाभारती, पृ0 493

कुटिलता-कालिमा पर एक उजला वस्त्र उड़ता

अनल के मन्त्र-सी ही कौंधती यह वाक्य-विद्युत

अधम सत्ता बढ़ाती नित प्रपंची छल-कुटिलता! (1)

माया जन्य जीव तुरन्त आत्म विवेक खो देता है। इसी कारण संसार में आशक्ति है।

बुद्धि में एकरूपता नहीं

भिन्नता ही इसकी द्युति-क्रान्ति

एक-सा कहीं न आत्म-विवेक

इसी कारण ही विविध अशान्ति। (2)

इस प्रकार कवि ने युगानुकूल माया के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। उसकी मान्यता है कि यह माया ब्रह्म के अभिन्न सहचर्य उसकी शक्ति है। माया के विकारों से प्रस्तुत जीव अहमन्न बनकर प्रकृति से छेड़छाड करता है। जिसके कारण प्रकृति में प्रलय सा दृश्य उपस्थित हो जाता है यही माया एक ओर साधकों में ब्रह्म दर्शन की लालसा जगाती है तो दूसरी ओर दैहिक या सांसारिक आकर्षक के कारण काम, लोभ इत्यादि विकार उत्पन्न करती है। अगस्त्य, वशिष्ठ माया के प्रथम रूप के निदर्शक है। तो विश्वामित्र, पुरूरवा, भरत उसके दूसरे रूप के प्रकाशक हैं। कवि ने प्रकृति के माध्यम से यह कहने का भी प्रयास किया है कि जो वस्तु न होने पर भी अस्तित्वमय जैसी प्रतीति होती हो यह माया का ही स्वरूप है। सद्विचार बुद्धि विवेक आदि से माया के इस आवरण को दूर कर जीव जहाँ एक ओर संसार की वास्तविकता का अनुभव कर लेता है वहीं दूसरी ओर इस आकर्षण से मुक्त होकर अपने स्वरूप की प्राप्ति भी करता है। यहाँ पर यह कहना समीचीन होगा कि कवि में इस वैज्ञानिक प्रगति के युग में माया के उस स्वरूप का वर्णन यहाँ किया जो हमें भाग्यवाद के पथ पर ले जाता है। अपितु उन्होंने संसार की वास्तविक विषमतारा, आर्थिक विपन्नता दुःखदम्य आदि को समाप्त करने के लिए सत्कर्म ज्ञान विवेक सदाचार और शुभ संकल्प की आवश्यकता बताकर शंकराचार्य के मायावाद का विकास युगानुकूल परिस्थिति सापेक्ष किया है।

---

(1) महाभारती, पृ0 494

(2) महाभारती, पृ0 385

मोक्ष

मनुष्य जीवन में मोक्ष को चरम पुरुषार्थ माना गया है मुक्ति निर्वाण, परमगति उसके पर्यायवाची है। मोक्ष जीव की उस दशा को कहा गया है जहाँ उसे त्रिविध ताप से छुटकारा मिल जाता है और वह शुद्ध नित्य मुक्त स्वरूप में तल्लीन होकर जीवन मरण के रहस्य को जान जाता है।

भारतीय धार्मिक एवं दार्शनिक जगत में मोक्ष प्राप्त करने की कामना प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इस सन्दर्भ में डॉ0 उमेश मिश्र ने लिखा है कि "आरम्भ में दुःख से छुटकारा पाने को ही मुक्ति समझा कहा गया, उस समय मृत्यु भय से छुटकारा दीर्घ जीवन की प्राप्ति तथा लौकिक सुख ही प्रारब्ध थे। तत्कालीन विचारकों का विश्वास था कि देवताओं में यह सामर्थ्य है कि यदि वह प्रसन्न रहे तो अपने उपासकों को दीर्घजीवन लौकिक सुख तथा मृत्यु से छुटकारा दिला सकते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति को लिए उस समय विभिन्न प्रकार से देवताओं की उपासना का विधान था।(1)

उपनिषदों में कर्मकाण्ड की अपेक्षा अज्ञानबंधन से छुटकारा एवं ज्ञान द्वारा जीवन ब्रह्म में अभेद स्थापित करना ही मुक्ति माना गया है। मुण्डक उपनिषद में कहा गया है कि जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियाँ नाम रूप को त्यागकर समुद्र में अस्त हो जाती हैं। उसी प्रकार ज्ञानी नाम रूप से मुक्त होकर परस्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाता है।(2) कठोपनिषद तो अज्ञान ग्रन्थियों के छिन्नावस्था को ही मोक्ष कहता है।(3)

गीता में कहा गया है कि जिसने इन्द्रिय मन और बुद्धि पर संयम कर लिया है तथा जिसके भय इच्छा और क्रोध छूट गये हैं वह मोक्ष परायण मुनि सदा सर्वदा मुक्त ही है। (4)

न्याय वैशेषिक दर्शक के अनुसार पदार्थो के तत्वज्ञ ज्ञान से मोक्ष मिलता है। इसके अपवर्ग कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि शरीर और इन्द्रियों के बंधन से आत्मा का विमुक्त होना सांख्यतारिका में मोक्ष के विषय में कहा गया है कि जब पुरुष प्रकृति

---

(1) भारतीय दर्शन, डॉ0 उमेश मिश्र, पृ0 32

(2) मुण्डक उपनिषद्, 3/2/8

(3) कठोपनिषद्, 2/3/15

(4) गीता 5/28

को देखता है और जब साक्षात्कार करता है तब वह स्वरूप को पहचान लेता है। यही मोक्ष है।(1)

पांतजलि योग सूत्र में कहा गया है कि विवेक ज्ञान प्राप्त होने पर बुद्धि सत्व तथा पुरुष की जो शुद्धि होती है यही मुक्ति है।(2)

तात्पर्य यह है कि चित्र में विकार होते रहते हैं। विवेक ज्ञान के आभाव में आत्मा उन्हीं में अपने को देखने लगती है। यही आत्म बन्धन है योग साधना से इस बन्धन से मुक्ति ही मोक्ष है।

वेदान्त दर्शन के अनुसार भ्रम के कारण जीव और ब्रह्म को पृथक-पृथक मान लिया जाती है। तत्व ज्ञान होने पर अमोत्यातन हो जाता है। जबकि ब्रह्म जीव की ऐक्य ही मोक्ष है। तात्पर्य यह है कि मोक्ष का स्वरूप निर्धारण करते हुए दार्शनिक ग्रन्थों में उसे ऐसी स्थिति का संकेत किया है जिसमें जीव कुछ साधनायें कर सांसारिक कष्टों को भूल जाता है। दुःख संताप से परे होकर वह ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है जिसे मोक्ष कहा गया है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए भारतीय साधना में अनेंक सोपानों या भागों का उल्लेख किया गया है। यह सोपान बिना अभ्यास और अनुभव के कोश का जाल है। वस्तुतः मोक्ष ब्रह्म साक्षात्कार अथवा आत्मा को शुद्ध स्वरूपात्थान को कहते है, इसे पाने के लिए इन्द्रिय मन तथा वासनाओं पर विजय प्राप्त की जाती है। इस हेतु कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग, योग मार्ग और भक्ति मार्ग का प्रचलन हुआ है।

महाभारती वैदिक पौराणिक आख्यानों का समन्वित रूप है जिसमें एक और वैदिक कालीन तपस्या और उससे सिद्ध की प्राप्ति का उल्लेख तो दूसरी तरफ औपनिषद ज्ञान की प्राप्ति उसकी साधना तो तीसरी तरफ पौराणिक युगीन भक्ति साधना का उल्लेख है कवि ने हिंसा परित्याग मनुजता हित विवेक और महामुक्ति की चाह की कामना इस प्रकार की हैं।

प्राथमिक शत्रुता-शुद्धि : बुद्धि का स्नेह-कार्य
अर्पित अनार्य-मैत्री सदैव ही शिरोधार्य

---

(1) सांख्य कारिका, पृ0 65

(2) मतांजलि योगसूत्र, 3/55

चेतना चाहती महामुक्ति की विश्व-विजय

अनिवार्य मनुजता-हित विवेक का विष्णु-प्रलय। (1)

कवि ने मन के पूर्ण विराम को मोक्षावस्था निरूपित करते हुए कहा है

आत्म-परिदर्शन की कृति-सिद्धि

साधना की स्तर-सुन्दर प्राप्ति

उन्नयन-पथ का कहीं न अन्त

ज्ञान का कहीं न गर्व समाप्ति!

मनुज का वर्तमान अस्तित्व,-

पूर्व का प्रतिबिम्बित परिणाम

नियति-निर्णय में फलित रहस्य,

मोक्ष ही मन का पूर्ण विराम! (2)

रामावतार पोद्दार ने अपनी महाभारती में सभी दर्शनों में प्राप्त मोक्ष के स्वरूप पर कथा के अनुरूप टिप्पणी की है। यह मोक्ष कहीं योग मार्ग से तो कहीं कर्ममार्ग से प्राप्त है इसे कवि ने सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष के ज्ञान के अनुसार इस प्रकार अभिवादित किया है -

ज्योति से ही जीवन का जन्म

प्रकृति से रूपाकृति-निर्माण

परिष्कृत परिवर्तन से सृष्टि

स्वतः प्रारम्भ प्राथमिक ज्ञान। (3)

विश्वामित्र और वशिष्ठ प्रकरण में साधना और उसकी सिद्धि के स्वरूप का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा है आत्मतप से वैयक्तिक सिद्धि एवं कर्म से लोक का विकास होता है -

आत्म-तप से वैयक्ति सिद्धि,

कर्म के तप से लोक-विकास

---

(1) महाभारती, पृ0 199

(2) महाभारती, पृ0 111

(3) महाभारती, पृ0 110

एक से अमृतकिरण उपलब्ध,

एक से अर्जित भू-विश्वास।(1)

अगस्त्य लोपामुदा एवं अख्य जीवन यापन पद्धति का वर्णन कर कवि ने औपनिषद का उल्लेख किया है जिसमें ऋषि स्वाध्याय कर्तव्य, सात्विक जीवन बिताकर ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति करते थे। यह मोक्ष का स्वरूप ज्ञान मार्ग पर आधारित था।

कर्तव्य-आचरित आश्रमवासी आत्म-तुष्ट

सीमित सात्त्विक आहार-उत्पलित देह पुष्ट

प्रिय पुष्प-गुच्छ पर गाते खग-सा ऋषि-विचार

घाटी में बहती सलिला-सी स्मृति-शब्द-धार (2)

इसी परिप्रेक्ष्य में योग साधना द्वारा स्वरुपास्थापन का वर्णन कर हठयोग के साधना का कवि ने उल्लेख किया है।

सीखी गुरुकुल में प्राणायाम-कठिन मुद्रा

कानन में कभी नहीं उभरी इच्छा क्षुद्रा

अनिवार्य योग-अभ्यास अर्थवर्ण-आश्रम में

भटका न कभी भी यौवन-मन अति तम भ्रम में।(3)

इस प्रकार योगमार्ग में चेतना का चेतना में विलीनीकरण ही मोक्ष है। इसका उदाहरण देते हुए कवि ने लिखा है -

महाभारती वैदिक और पौराणिक युगीन कथा का संग्रह है। जिसमें वैदिक युगीन कर्मकाण्ड के पश्चात् अतीन्द्रीय सत्ता का सानिध्य गीतोक्त कर्म सन्यास में लिप्त पात्र का आत्मश्रत्थ ब्रह्म ज्ञान की अनुभूति में मोक्ष का स्वरूप वर्णित मिलता है।

अगस्त्य, विश्वामित्र, लोपामुद्रा, वशिष्ठ, आदि पात्र पौराणिक होने के पूर्व वैदिक युगीन पात्र हैं जिनके जीवन में कर्म सौन्दर्य की महत्ता आत्मसत्व होना मोक्ष तुल्य माना गया है।

---

(1) महाभारती, पृ0 110

(2) महाभारती, पृ0 139

(3) महाभारती, पृ0 138

महाभारती काव्य वैदिक ऋषियों द्वारा प्राकृतिक शक्तियों का आवाहन कर स्वर्ग प्राप्ति की कामना का वर्णन कर मोक्ष के प्रारम्भिक रूप का ऐतिहासिक रूप प्रदर्शित किया है।

मृत्यु-सीमा में असीमित मनोरथ-संवेग
उर-नियंत्रित बुद्धि से निर्णीत तम द्युति भेद
दैत्य-गुरू-इंगित कि नर-हित प्राप्य नभ-देवत्व
व्याप्त भाश्वर भाव में औदात्य-स्वर्गिक सत्व।(1)

स्वर्ग के आभास से चेतना के उल्लास, नर्तन का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है -

दिव्य ज्योतिष पथ-विलासी, तीव्र दृष्टि तरंग,
उगलता नक्षत्र मणि नभ में उमंग भुजंग
स्वर्ग के आभास में भी चेतना उल्लास
भावना के धूम्र-पथ में भी प्रसन्न प्रकाश।(2)

यह ब्रह्म का लोक कल्पना का लोक है। जहाँ जरा-मृत्यु-विमुक्त, यौवन, अबाध रूप से प्राप्त होता है।

ब्रह्म निर्वासित सुरों का एक अपना देश
कल्पना के भुवन में बस कुसुम-कोमल क्लेश
जरा-मृत्यु-विमुक्त-यौवन-कल्प-ज्योति-प्रधान
दीप्ति तृप्ति तरंग का प्राप्तव्य दृग प्रतिमान।(3)

महाभारतीकार ने भारतीय दार्शनिक परम्परा के अनुरूप प्रकृति और पुरुष के मिलन को मोक्ष की संज्ञा प्रदान की है।

पुरुरवा कहता है -
प्रियतमे! इस विश्व में अब स्वर्ग की संसिद्धि
यहाँ अब संभाव्य अन्तश्चेतना की वृद्धि

---

(1) महाभारती, पृ0 32

(2) महाभारती, पृ0 48

(3) महाभारती, पृ0 51

देह से ही हो सकेगी देह की उत्पत्ति

सहे हम दोनों सदा निर्भय निसर्ग विपत्ति। (1)

कवि ने अन्तःकरण में उत्पन्न आत्मिक आनन्द को मोक्ष के समान बताया है

सरल अन्तःकरण में आनन्द का अधिवास

ऊष्ण मानस के लिए अनिवार्य हिम की प्यास।(2)

साधना के क्षेत्र में मन किसी अकाल्पनिक लोक की यात्रा करता हुआ आनन्दानुभूति से आप्यायित हो उठता है तब उसके गहन अन्तस्तल से इस प्रकार की अभिव्यक्ति होती है।

एक ही इच्छा यहाँ से वहाँ तक साकार।

कल्पना ही प्रथम करती गुह्य पथ को पार।

दृष्टि यायावरी छू देती अदृश्य-रहस्य

ज्ञान हित मन का महत् अभियान प्राण-नमस्य। (3)

इस दिव्य स्वर्गिक अलौकिक आनन्द के समक्ष, भौतिकता तुच्छ है। वहाँ तो सिर्फ मुक्तावस्था जन्य आनन्द ही आनन्द है।

स्वर्ग ज्योति पुष्प सुवास से आच्छन्न लोचन-लोक

स्वर्ग में किंचित कहीं भी, नहीं कोई शोक

व्याप्त चारों ओर बस आनन्द ही आनन्द

हेम पर्णा हँसी का विद्युत-विवाहित छन्द।(4)

कवि ने यत्र-तत्र सद्यः मुक्ति और क्रम मुक्ति का भी वर्णन करते हुए विदेह अवस्था का भी उल्लेख कर मोक्ष सम्बन्धी अपनी अवधारणा को पुष्ट किया है।

सौम्यनस्य विवेक से उर-उदित हो सम-स्नेह

सिद्धप्रद सुचि साधना से बने देह-विदेह।(5)

---

(1) महाभारती, पृ0 35

(2) महाभारती, पृ0 38

(3) महाभारती, पृ0 45

(4) महाभारती, पृ0 50

(5) महाभारती, पृ0 47

इसी प्रकार कवि ने पुरूरवा उर्वशी के प्रसंग में भी अपनी आत्मानन्द स्वरूप गम्य उपादि का वर्णन इस प्रकार किया है –

अव्यय प्रकाश से व्यय विकास प्रतिपल नवीन नश्वर में अविनश्वर अन्दर स्वर आत्मलीन तात्पर्य यह है कि जीव भौतिक सुख साधना को भोगता हुआ जब निरपेक्ष भाव से स्वरूप में अवस्थित हो जाता है तो उसे सर्वत्र क्षरण शील सांसारिक वस्तुओं के अज अविनाशी के दर्शन होने लगते हैं और वह कर्म फल की आसक्ति से मुक्त हो जाता है।

विश्वामित्र का जीवन बड़े ही संघर्षपूर्ण परिस्थितियों से गुजरा है। क्षात्र शक्ति के समान ब्रह्म शक्ति की विजय से अभिभूत हो उन्होंने जो कठोर तपस्या की और उसमें मिली वासना जन्य पराजय उनके आहत मन को और उत्तेजित करती है क्योंकि वे तो इस धरती में विभिन्न विषमताओं को महत्व समता, साश्वत आनन्द अचेतन में चेतन की व्याप्ति का स्वप्न देखते थे वे कहते हैं –

कर्म समर्पित मर्ममयी आनन्द-तरंग हृदय में
चेतन और अचेतन आभा एक चिरंतन लय में
आत्म ज्योति पद्मासन पर किस स्वप्नशक्ति की सुषमा?
शान्ति-कान्ति-वसना विधि श्री की नहीं नयन में उपमा।(1)

वस्तुतः मोक्ष के कारक तत्व कर्म, ज्ञान, भक्ति और योग के साधन होते हैं जिनसे ज्ञानमयी विश्वास की किरण से ब्रह्म ज्योति प्रसस्ति होती है। मोक्ष की यह अवधारणा सांख्य दर्शन के अनुरूप मनस्तत्व तथा वेदान्त दर्शन के अनुसार समाधि योग के समकक्ष रूप में वर्णित है।

मनस्तत्व से आत्मतत्व की सूक्ष्म साधना होती
ज्ञानमयी विश्वास किरण ही ब्रह्म चेतना ढ़ोती।
महाध्यात्म-साधना शिखर पर जाना नहीं सुलभ है
मन से बहुत दूर दिव्यात्मा का अभिनश्वर नभ है। (2)

महाभारतीकार की मान्यता यह है कि वैदिक युगीन ऋषियों के मन में तपस्चर्या ज्ञान प्राप्ति एकान्त साधना से जिस स्वरूप की प्राप्ति होती है वही अविनश्वर लोक है

---

(1) महाभारती, पृ0 534

(2) महाभारती, पृ0 539

जिसकी साधना अत्यन्त कठिन है।

ज्ञान विश्वास ब्रह्म चेतना की अनुभूति इसी शरीर में से ही सम्भव होती है। इसीलिए औपनिषद मोक्ष भावना सद्यः मुक्ति के रूप में अभिव्यक्त हुई है।

विश्वामित्र कहते हैं -

आत्मयोग तन्द्रा में आवृत्त व्योम-सोम उज्ज्वलता

मुद्रित दृग द्वन्द्व-रहित नक्षत्र-दीप दल जलता।(1)

जब-जब देह विदेह हुआ संतोष साधना जागी।

अनुरागी से अधिक दिव्य बन जाता साधक त्यागी।(2)

इसी प्रकार ज्ञान कर्मयोग साधनाओं के पश्चात् मन जिस समाधि अवस्था को पारकर जिस स्वरूप में अवस्थित होता है वही तो साक्षात् मोक्ष है। इसमें इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना को पार करती हुई आन्तरिक ज्योति नक्षत्र के समान टिमटिमाती हृदयस्थ ब्रह्म प्रकाश से मिलती है। ऐसी समाधि जन्य मोक्ष का भी वर्णन योग शास्त्र विशेष रूप से हठ योग साधना पद्धति में विकसित हुआ है। कवि ने लिखा है -

मनः क्षिति पर न उज्ज्वला ज्योति

आत्म सम्भाव्य सुषुम्ना-श्रोत

इड़ा में भी पिंगला प्रकान्ति

चन्द्रिका में भी ज्यों खद्योत।(3)

यही मोक्ष, ज्ञान और भक्ति योग की साधना से बड़ी आसानी से प्राप्त हो जाता है। मन की मानसिक ज्योति ज्ञान से अर्जित भक्ति साधना से सिंचित, त्याग से मायिक विघ्न बाधाओं को पार कर आनन्द समुद्र में आकण्ठ निमग्न होती है, इस अनुभूति का वर्णन ब्रह्मानन्द के समकक्ष भक्ति शास्त्रों में कहा गया है।

ज्ञान से अर्जित विधि-विज्ञान

साधना से संचित सुर-शक्ति

भक्ति से अभिसिंचित प्रभु-प्रीति

---

(1) महाभारती, पृ0 541

(2) महाभारती, पृ0 539

(3) महाभारती, पृ0 100

त्याग से ही तो तिमिर-विरक्ति

मनोगति ज्यों-ज्यों आत्म प्रसन्न

स्निग्ध आनन्द-प्रभा उत्पन्न

ज्योति-परित्यक्त विकल दुर्बुद्धि

तरंगित तम-क्रम से आच्छन्न।(1)

इसी स्थिति का वर्णन अगस्त्य लोपामुद्रा के माध्यम से हुआ है।

प्राण साधना कर्म विज्ञान

आत्म दर्शन रहस्य परिवेश

अमृतमय अमल अलौकिक शान्ति

अनल उद्दीप्ति भौतिक क्लेश।(2)

भक्ति और उसके सम्बन्धित माधुर्य परक ग्रन्थों में मधु मधुराभाव की भक्ति जिसमें इसी अलौकिक भक्ति गोलोक, माधुर्यलोक, दिव्यलोक, साक्षात् शक्ति और शक्तिमान की दिव्य हृदयावर्जक श्रृंगारिका लीलाएं चलती रहती हैं। जीव अपनी भक्ति के अनुरूप तटस्थ या दृष्टा भाव से मित्र, कतन्यत रूप में प्रविष्ट होता है। श्रीमद् भागवत्, हनुमन् संहिता तथा कृष्ण भक्ति की मधुर उपासना से सम्बन्धित उपारम्भा में मोक्ष का यह सर्वथा अलौकिक षट्विकारों से रहित आनुस्मिक लोक की प्राप्ति साधकों का चरम काम्य है। अगस्त्य और लोपामुद्रा के महाज्ञान से कवि ने इसी का संकेत कुछ इस प्रकार से किया है -

माधुर्य निनादित अन्तर में

आकाश-ज्योति इतराती सी

सौन्दर्यमयी शारदा-किरण

मन के द्युति-दिव्य बनाती-सी

श्रृंगार-मार्ग पर श्रुति-गति से

साकार कल्पना होती-सी

---

(1) महाभारती, पृ0 102-103

(2) महाभारती, पृ0 105

रमणीय सिद्ध के मिलते ही

लज्जित आँखे कुछ रोती सी।(1)

इस अनुभूति का शरीर में किस प्रकार प्रभाव पड़ता है कवि ने लिखा है -

अपरा -पथ में भी यश ज्योति!

ब्रह्मर्षि विभोर हुए तत्क्षण।(2)

कहना नहीं होगा कि पोद्दारं रामावतार अरूण ने भारतीय वाङ.मय में वैदिक साहित्य उपनिषद द्वारा योगज्ञान, कर्ममार्ग में साधना का चरम फल मोक्ष उल्लिखित किया है जिसका पूर्व रूप अलौकिक ऐन्द्रिय सुख तथा तत्पश्चात् अजर, अमर होकर अनन्त काल तक सुख भोग और उस लोक की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रस्थानों लोकों की चर्चा कर मोक्ष के सामीप्य सालोक्य के रूपों का बहुविधि उल्लेख वैदिक एवं पौराणिक ऋषियों की कथाओं के माध्यम से किया है। मन का विकार द्वन्द्व रहित होना स्थिति प्रज्ञ होना हार्दिक ग्रन्थि उच्छेद, जग गणवाल में अनाशक्ति ब्रह्म ज्योति का शरीर में दर्शन होना और इन सबके परिणामस्वरूप अन्तःस्थिति की प्राप्ति आकंण्ठ आनन्द, अलौकिक आनन्द में निमज्जित होना इसी मोक्ष के स्वरूप का वर्णन कवि ने संक्षेप विस्तार पद्धति से किया है।

मोक्ष के साधन

भारतीय दर्शन एवं भक्ति ग्रंथों में मोक्ष के स्वरूप का निदर्शन करते हुए कहा गया है कि पुनर्जन्म बाधित जीवात्मा परमात्मा में जब विलीन हो जाती है। उसे मोक्ष कहते हैं। यह उच्च अवस्था कभी विदेह और कभी सदेह अवस्था में भी प्राप्त होती है। इस अलौकिक अखण्ड आनन्द को प्राप्त करनें के लिए अनेक मार्ग या साधन कहे गये हैं, अध्यात्म रामायण में भागवत् उक्त त्रै सिद्धान्तों की इस प्रकार चर्चा है।

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता वृणां श्रेयो विधित्सया

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोडन्योडस्ति कुत्रचित्। (3)

---

(1) महाभारती, पृ0 463-464

(2) महाभारती, पृ0 463

(1) भागवत्, 11/20/6

मार्गास्त्रयो में व्याख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप।

कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम।। (1)

मार्गास्त्रयो मयाप्रोक्ताः पुरा मोक्षाप्तिसाधकाः।

कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वतः।।(2)

इसी तरह गीता में अष्टाँग योग को भी साधन माना गया है। सारतः यह कहा जा सकता है कि कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, अष्टाँग योग मोक्ष के मुख्य साधन स्वीकृत हैं। कर्मयोग के अन्तर्गत कर्म, अकर्म, विकर्म नित्य नैमित्तिक, काम्य कर्मो की चर्चा कर मोक्ष के साधन रूप बताए गए हैं। इसी प्रकार उपनिषद, गीता, भागवत, आदि में भक्ति के विविध साधन योग के यम्, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, हठ्योग साधना, कुण्डलिनी जागरण, ज्ञान के विविध स्वरूपों का सैद्धान्तिक विवेचन मिलता है।

महाभारती में अधुनिक युग की रचना है जिसमें मोक्ष को काम्य तो कहा गया है। किन्तु साधन रूप में प्राक्तनु ग्रंथों के अनुरूप साधनों का उल्लेख मात्र है यह काव्य दर्शन ग्रन्थ नहीं है। और न ही मोक्ष की प्राचीन परिकल्पना कवि को वांछित है। परिस्थितिवसात कुछ साधनों की चर्चा है। अगस्त्य, वशिष्ठ की कठोर तपश्चर्या वशिष्ठ का पद्म पत्र इव अम्भस जीवन मोक्ष के समकक्ष दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार विश्वामित्र की उग्र साधना तपश्चर्या योग ज्ञान मार्ग के समकक्ष वर्णित है।

विश्वामित्र की गणमंत्र साधना उसकी भावमयी व्याख्या में कर्ममार्ग सात साधन के रूप में वर्णित है। इस प्रकार महाभारती में उदाहरण रूप में कर्म, ज्ञान, योग, कुछ हठ योग को साधन रूप में स्वीकार किया गया है। जैसे कर्मोपरान्त काम्य सिद्धि जन्य आनन्द सिद्धि का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है -

कर्म समर्पित मर्ममयी आनन्द तरंग हृदय में

चेतन और अचेतन आभा एक चिरन्तन लय में,

आत्म ज्योति पद्मासन पर किस स्वप्न शक्ति की सुषमा,

---

(1) देवीभागवत्, 7/37/3

(1) आध्यात्म रामायण, 7/7/59

शान्ति कान्ति वसना विधि श्री की नहीं नयन में उपमा।(1)

इसी प्रकार

सत्य नहीं कल्पना मात्र आनन्द एक उर क्रीड़ा
महत कर्म ही तो हर पाता तृषा तरंगित पीड़ा। (2)

कवि ने ज्ञान और योग की कठिनता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि -

कठिन योग से ज्ञान कल्पना का श्रुति स्वर सुनता है।(3)

कवि पोद्दार कर्म और ज्ञान को पुरूषार्थ सिद्धि का मूल साधन मानता है। अगस्त्य की साधना में कर्म और ज्ञान का समन्वय दिखाई देता है। वशिष्ठ के आचरण से ज्ञान और विश्वामित्र की साधना कर्म साधना रूप में वर्णित है। कवि की दृष्टि तो सब मार्गों के बीच से ज्ञान मार्ग पर अधिक ठहरती है। क्योकि बिना ज्ञान के सम्यक कर्म या सम्यक योग था हठ साधना का आकाश कुसुम है कवि नें लिखा है -

सम्भव न ज्ञान के बिना सिद्धि,
वाणी विहीन सम्भव न क्रान्ति।(4)

तात्पर्य यह कि पोद्दार नें आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति को दृष्टि पथ में रख कर प्राक्तन मोक्ष स्वरूप और उसके साधनों का उल्लेख करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि वस्तुतः मोक्ष मन में दिव्य माधुर्य भाव की प्राप्ति मात्र ही है। जो सदाचार विवेक संतोष से सिद्ध होता है। जहाँ अधैर्य, अज्ञान, राग तृष्णाएं तिरोहित हो जाती हैं और मन में दिव्य माधुर्य का महारास चलनें लगता है। इस अवस्था की प्राप्ति हेतु किसी अवान्तर लोकगमन कवि को अभिप्रेत नहीं है। वह तो देह में ही इस अवस्था को प्राप्त करना चाहता है इसके लिए कर्मसाधना प्राथमिक अवस्था तत्पश्चात उग्र तपश्चर्या एवं मन को संयमित करनें के लिए हठ योग साधना की स्वीकृति कवि नें लिखी है और इन सब के मूल में ज्ञान साधना को मूलाधार रूप में बताया है। अगस्त्य का जीवन दर्शन, वशिष्ठ का व्यवहार और विश्वामित्र की उदात्त परिकल्पना जन्य कर्म इस मोक्ष के स्वरूप को साधन रूप में

---

(1) महाभारती, पृ0 534
(2) महाभारती, पृ0 543
(3) महाभारती, पृ0 543
(4) महाभारती

दिग्दर्शित करते हैं। कवि नें महाभारती में वैदिक और पौराणिक युगीन जिस मान्यता का जिस उदात्त श्रेष्ठ जीवन का जिस तपश्चर्या पूर्ण साधना का संस्कृति का चित्राँकन किया है। वह आज के भैतिकता वादी युग में भी अपेक्षित है। मोक्ष और उसके साधन इन्हीं ज्ञान, कर्म समन्वित रूप में आगे भी अपनी महत्ता बनाए रखेंगे ऐसा कवि का विश्वास है।

सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची

संस्कृत

हिन्दी

अंग्रेजी

आलोच्य काव्य महाभारती : पोद्दार रामावतार अरूण
प्रकाशक - किरण कुंज, समस्तीपुर, बिहार (भारत)
प्रकाशन तिथि : 2 अक्टूबर, 1968 गाँधी शताब्दी शुभारम्भ

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

संस्कृत ग्रन्थ

1. नाट्य शास्त्र - आचार्य भरत
2. काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट
3. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ
4. रामायण - वाल्मीकि
5. काव्यालंकार - आचार्य भामह
6. भागवत पुराण
7. मत्स्य पुराण
8. मनुस्मृति - मनु
9. उपनिषद्
10. पुराण
11. भागवत्
12. दशरूपक - धनंजय
13. निघण्टु - सीताराम शास्त्री

हिन्दी ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सम्पादक डॉ० नगेन्द्र
3. महाकाव्यों का विकास - डॉ० शम्भूनाथ सिंह
4. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य - डॉ० गोविन्द राम शर्मा
5. आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान - डॉ० श्याम नन्दन किशोर
6. हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण - डॉ० श्याम सुन्दर दास
7. हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का विकास - डॉ० रणवीर रांग्रा

8.	साहित्य में पात्र-प्रतिमान और परिरेखन	-	डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी
9.	चिन्तामणि	-	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
10.	काव्य के तत्त्व	-	डॉ0 गुलाब राय
11.	केशव काव्य का मनोवैज्ञानिक विवेचन	-	डॉ0 धर्मस्वरूप गुप्त
12.	रस सिद्धान्त, स्वरुप एवं विश्लेषण	-	डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित
13.	हिन्दू संस्कार	-	डॉ0 राजबली पाण्डेय
14.	हिन्दू धर्म और दर्शन	-	डॉ0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी
15.	समीक्षा शास्त्र	-	पं0 सीताराम चतुर्वेदी
16.	हिन्दी उपन्यास कला	-	डॉ0 प्रताप नारायण टंडन
17.	हिन्दी साहित्य कोष	-	डॉ0 देवराज
18.	साकेत एक अध्ययन	-	डॉ0 नगेन्द्र
19.	शब्द साधना	-	श्री रामचन्द्र वर्मा
20.	सामयिक जीवन और साहित्य	-	डॉ0 रामरतन भटनागर
21.	मिट्टी की ओर	-	दिनकर
22.	पल्लव	-	सुमित्रानन्दन पंत
23.	हिन्दी महाकाव्य स्वरूप एवं विकास	-	डॉ0 शम्भूनाथ
24.	छन्द प्रभाकर	-	जगन्नाथ दास भानु
25.	वैदिक संस्कृति और सभ्यता	-	डॉ0 मुंशीराम शर्मा
26.	वैदिक संस्कृति	-	डॉ0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी
27.	भारतीय संस्कृति की रुपरेखा	-	बाबू गुलाबराय
28.	भारतीय संस्कृति एवं साहित्य	-	डॉ0 मनमोहन शर्मा
29.	भारतीय संस्कृति	-	डॉ0 बल्देव प्रसाद मिश्र
30.	भारतीय संस्कृति का विकास	-	डॉ0 मंगलदेव शास्त्री
31.	कल्पवृक्ष; संस्कृति का स्वरुप	-	डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल

32. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन - डॉ0 देवराज
33. भारतीय संस्कृति का उत्थान - डॉ0 राम जी उपाध्याय
34. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - डॉ0 कमला प्रसाद पाण्डेय
35. आधुनिक काव्य धारा के सांस्कृतिक स्रोत - डॉ0 केशरी नारायण शुक्ल
36. भारत की संस्कृति और कला - डॉ0 राधाकमल मुखर्जी
37. मध्यकालीन हिन्दी काव्यों में भारतीय संस्कृति - मदन लाल गोपाल गुप्त

अंग्रेजी ग्रन्थ

Psychology - Fried
A Outline of Psychology - A Jagdeesh Sahay Kaushik
Problem of Personality - Dr. Roabak
A Outline of Psychology - M.C. Daugall
Emotions in man and Animal - P.T. Young
A Outline of human Psychology - Allis Habilock
The Structural of the Novel - Edwin Muir
Priniciple of literary criticism - Richards